एक सौम्य व्यक्तित्व

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कमल दिन में खिलता है और रात में उसकी पंखुड़ियां मुंद जाती हैं और कुछ ऐसा ही है कई और फूलों के सम्बन्ध में भी जो कभी सूरज को लक्षित होकर खिलते-फूलते हैं और कभी रात की रानी बन-कर महमहाते हैं। लेकिन गुलाब दिन में खिलता है और रात में भी खिला रहता है। खिला तो मुंदता नहीं और एकसाथ कभी नहीं मुरझाता, भले एक-एक कर उसकी पंखुड़ियां झरती चली जायें···। डा० कर्णसिंह का जीवन भी उसी गुलाब का प्रतीक है—सदाबहार हंसमुख चेहरा, कांतियुक्त देहयष्टि, खिला हुआ रूप-यौवन, वाक्यों में माधुर्य युक्ति···आंखों में संस्कार की अद्भुत धूप तथा मिलने वालों पर सदा के लिए छोड़ती-सी स्मृति···

डा० कर्णसिंह ने राजनीति में अपना गुरु पं० जवाहरलाल नेहरू को माना और दर्शन-साहित्य में मार्गदर्शक श्रीअरविन्द को। जीवन के सौन्दर्य को कभी भी उन्होंने म्लान नहीं होने दिया। महाराजा होते हुए भी उसके विचारों से अपने को दूर रखा और राजनीति में रहकर भी उसके छल-छद्मों के शिकार नहीं हुए···

(शेष अगले फ्लैप पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्री मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
2 6 4 सीरीज
आगत क्रमांक.....
दिनांक.....

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

डा० कर्णसिंह
एक सौम्य व्यक्तित्व

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

डा॰ कर्णसिंह

एक सौम्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्यक्तित्व

संपादन-संयोजन

जैनेन्द्र कुमार—अध्यक्ष	डा० शिवमंगल सिंह सुमन
डा० प्रभाकर माचवे	यशपाल जैन
डा० कामिल बुल्के	डा० श्यामनन्दन किशोर
अक्षय कुमार जैन	लल्लन-प्रसाद व्यास
श्रीमती कमला रत्नम्	बशीर अहमद मयूख

संपादक

शंकरदयाल सिंह

आलेख प्रकाशन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
वा रा ण सी ।
आगत क्रमांक....2677.....
दिनांक .....

प्रकाशक :
आलेख प्रकाशन
बी-८, नवीन शाहदरा
दिल्ली-११००३२

●

प्रथम संस्करण : १९८१

●

मुद्रक : रूपाभ प्रिंटर्स, दिल्ली-११००३२

DR. KARN SINGH : EK SAUMYA VYAKTITVA.
Ed. Shankar Dayal Singh

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

डॉ० कर्ण सिंह : एक सौम्य व्यक्तित्व

भारतीय संस्कृति के अग्रदूत
राष्ट्रीय चेतना के प्रतीक
व्यक्तित्व, कृतित्व, नेतृत्व और वक्तृत्व
के सम्मिलित पुंज
डा० कर्णसिंह
को

एक सौम्य व्यक्तित्व

अर्धशती की इस मांगलिक वेला में
९ मार्च, १९८१ को
सादर
सप्रेम
समर्पित !

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हर जीवन पदार्थ पर चेतना की विजय का एक चरण है। यह तब तक चलता रहेगा जब तक पदार्थ को अनुशासित करके चेतना उसे पूर्ण आत्मा की अभिव्यक्ति का सीधा साधन और माध्यम नहीं बना देती।

योगी अरविन्द
द डिवाइन लाइफ, पृ० १९४

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥

मुण्डकोपनिषद् ३-१-६

सत्य ही जय को प्राप्त होता है, मिथ्या नहीं। सत्य से देवयान मार्ग का विस्तार होता है, जिसके द्वारा आप्त काम ऋषि लोग उस पद को प्राप्त होते हैं, जहां वह सत्य का परम निधान वर्तमान है।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न काम कामी॥

गीता २/७०

जैसे सब ओर से परिपूर्ण, अचल प्रतिष्ठावाले समुद्र के प्रति नाना नदियों के जल उसको चलायमान न करते हुए भी उसमें समा जाते हैं, वैसे ही स्थिरबुद्धि पुरुष के प्रति संपूर्ण भोग उसमें बिना किसी प्रकार का विकार उत्पन्न किए हुए ही समा जाते हैं। ऐसा धीर पुरुष ही परम शान्ति को प्राप्त करता है, भोगों के पीछे दौड़ने वाला नहीं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विनयपूर्वक

आज डा० कर्णसिंह अपने जीवन के पचास वर्ष पूरे कर रहे हैं और इन पचास वर्षों को उन्होंने हर प्रकार से जिया है। युवराज के रूप में, महाराज के रूप में, सदरे-रियासत के रूप में, राज्यपाल के रूप में, केंद्रीय मंत्री के रूप में और संसद् सदस्य के रूप में। राजनीति कभी भी उनकी पहचान नहीं रही। एक बुद्धिजीवी के रूप में वे देश में तथा उसके बाहर भी जाते हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय से एम०ए० में राजनीति शास्त्र में प्रथम श्रेणी में प्रथम होकर उन्होंने जो कीर्तिमान स्थापित किया, वह अभी तक टूटा नहीं है। अरविंद के दर्शन पर और पं० जवाहरलाल की राजनीति पर उन्होंने महत्त्वपूर्ण लेखन कार्य किया है।

और व्यक्तित्व का जो आदर्श प्रतिमान होता है, उसपर वे अच्छी तरह से प्रतिबिंबित होते हैं। यानी कर्तृत्व, नेतृत्व और वक्तृत्व की त्रिवेणी उन्हें प्राप्त है।

उनके संबंध में जब कभी मैं सोचता हूं तो एक घटना याद हो आती है। यह बात १९६७ की है। डा० कर्णसिंह भारत सरकार के पर्यटन-मंत्री और कांग्रेस के वरिष्ठ नेता थे और विधान सभा चुनावों के अवसर पर बिहार का दौरा कर रहे थे। दौरे के क्रम में पटना के पास बाढ नामक स्थान पर वे गये, जहां उन दिनों आचार्य विनोबा पदयात्रा के क्रम में ठहरे हुए थे। डा० साहब को जब इसकी जानकारी मिली तो उन्होंने कहा कि पहले मैं विनोबा जी का दर्शन करूंगा, उसके बाद कोई सभा। और वे विनोबा जी के पास गए। एक संत और एक महाराजा का मिलन ही मैं उसे कहूंगा, क्योंकि विनोबा जी ने डा० साहब को इसी शब्द के साथ ग्रहण किया—"मेरा सौभाग्य है कि कश्मीर के महाराजा हमारे पास आये।"

और उसके बाद करीब आधे घंटे तक दोनों के बीच तरह-तरह की बातें होती रहीं, जहां मैं एक श्रोता या दर्शक की हैसियत से बैठा बहुत लुब्ध दृष्टि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से इस दृश्य को देख रहा था। कभी किसी जमाने में इसी भांति महाराज जनक और महर्षि याज्ञवल्क्य की बातें हुई होंगी अथवा इसी भूमि पर कभी भगवान बुद्ध और महाराज बिंबिसार का मिलन हुआ होगा।

कि तभी आचार्य विनोबा ने डा० कर्णसिंह से एक अप्रत्याशित प्रश्न पूछ दिया, "महाराजा साहब, आप एक बात बताएं। लोग कहते हैं कि राजनीति भले आदमियों की जगह नहीं है और किसी विद्वान के लिए तो यह और भी नहीं है। और आपको भगवान ने जितनी समृद्धि दी है, उससे अधिक विद्वत्ता, नम्रता। किसी बात की कमी नहीं है, फिर आप क्यों राजनीति में आए ?"

"बाबा, बात यह है कि आज जो व्यवस्था है, उसमें सारा कार्य राजनीति के माध्यम से ही होना है। और यदि भले लोग राजनीति में न रहेंगे, तो इस विशाल देश का क्या होगा ?" डा० कर्णसिंह ने विनोबा जी के प्रश्न का तत्काल उत्तर दिया और इस बात पर दोनों हंस दिए।

यह बात मेरे मन में घर कर गयी। माना मैंने कि राजनीति में अच्छे लोग न रहेंगे तो देश का क्या होगा। लेकिन आज ? यही प्रश्न और उत्तर रह-रहकर मुझे खाये जा रहा है। कहां गया वह बोध-वाक्य, जिसे वर्षों तक मैंने स्वयं संजोया था ? क्या आज की राजनीति अच्छे लोगों की राजनीति है ? क्या राजनीति में और निष्ठावान व्यक्ति में कोई तालमेल है ? क्या देश को अच्छे लोग चला रहे हैं ? या क्या जनता अच्छे लोगों के सहारे देश को चलाना चाहती है ?

उस दिन से आचार्य विनोबा का यह सवाल और डा० कर्णसिंह का यह जवाब मेरे मानस में कई बार आया है, गया है, टकराया है और उसके औचित्य पर सोचने के लिए मैं अपने-आपमें मजबूर हुआ हूं। क्या अब भी विनोबा यह सवाल पूछ सकते हैं ? क्या अब भी डा० कर्णसिंह यह जवाब दे सकते हैं ? क्या अब भी मैं दोनों के औचित्य बोधों पर मुग्ध हो सकता हूं ?

डा० कर्णसिंह स्वयं एक भले आदमी हैं, बौद्धिक हैं, सांस्कृतिक हैं, गरिमामय हैं, चेतनायुक्त हैं, हंसमुख हैं, समझदार हैं और भारतीयता से ओत-प्रोत हैं, लेकिन क्या आज की राजनीति में ऐसे व्यक्ति की गुंजायश है ? सीधा-सा सवाल है मेरा, जो डा० कर्णसिंह से भी हो सकता है और उन सारे लोगों से भी जो राजनीति में हों या पृथक्, लेकिन इसी देश में रहते हैं और कभी-कभी अपने-आपको गिरवी से छुड़ाकर सोचते हैं।

पिछले दिनों डा० कर्णसिंह ने जब (अर्स) कांग्रेस से इस्तीफा दिया तो मैंने उनसे सीधा सवाल किया, "अब आप क्या करेंगे ? किसी पार्टी में जाएंगे या कि···"

उन्होंने मेरे प्रश्न को छीनते हुए जवाब दिया, "मैं फिलहाल किसी दल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में नहीं जाऊंगा। साहित्यिक-सांस्कृतिक और बौद्धिक कार्यों में अपने को लगाऊंगा और कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक देश में घूमूंगा, एक बार, दो बार, चार बार, जिससे इस देश की आत्मा को पहचान सकूं और साक्षात्कार कर सकूं।"

आखिर बात कहां से कहां आ गयी। जिन मान्यताओं को लेकर डा० साहब राजनीति में आये थे. वे मान्यताएं खुद-ब-खुद डगमगा गयीं। आदमी ज्यों का त्यों रहा, नीचे की धरती खिसक गयी। राजनीति, डा० कर्णसिंह, आचार्य विनोवा, अच्छाई, विशाल देश भारत, भले लोगों की जरूरत— क्या अव भी इनका कोई संदर्भ है?

एक बात जरूर है कि डा० कर्णसिंह की मान्यता या मर्यादा औरों से भिन्न है। राजनीति में वे कभी तिरस्कृत नहीं हुए। उनकी अपनी अलग पहचान वनी रही। १९६७ में उत्तर भारत में कांग्रेस के सभी दिग्गज आसमान के तारे गिनने लगे, हर जगह जनता पार्टी और उस दौर में भी डा० कर्णसिंह साठ-सत्तर हजार वोटों से चुनकर आये और इसी भांति १९८० में इंदिरा कांग्रेस का जब वोलवाला हो गया, उसमें भी डा० कर्णसिंह ६०-७० हजार वोटों से चुनकर आये। और विजय कोई ऐसी-वैसी नहीं थी, इंदिरा जी और शेख अब्दुल्ला दोनों संयुक्त रूप से इन्हें हराने के लिए कटि-बद्ध थे, साथ-साथ सभाएं कर रहे थे और शेख सरकार की पूरी ताकत लग गयी थी, लेकिन वाह रे जम्मू-कश्मीर की वहादुर जनता, उसने भी अपने शौर्य का परिचय दिया कि डा० कर्णसिंह हारे तो कश्मीर का माथा झुक जाएगा। यह डा० कर्णसिंह की राजनीति में अपनी पहचान है, जो राजनीति से अलग व्यक्तिगत है।

सवके वावजूद सच्चाई यह है कि डा० कर्णसिंह राजनीति में होकर भी राजनीति के नहीं हैं अथवा यों कह सकते हैं कि राजनीति उनके लिए नहीं है। तभी तो उनकी पहचान आम आदमी भी बौद्धिक या सांस्कृतिक या आध्यात्मिक रूप में करता है। संस्कृत, हिंदी, अंग्रेजी, फ्रेंच, पंजाबी तथा उर्दू के साथ ही अपनी मातृभाषा डोगरी में एक कवि, एक साहित्यकार, एक वक्ता और एक सहृदय मित्र के रूप में उन्होंने अपनी जगह बना ली है।

कमल दिन में खिलता है और रात में उसकी पंखुड़ियां मुंद जाती हैं और कुछ ऐसा ही है कई और फूलों के संवंध में भी, जो कभी सूरज को लक्षित होकर खिलते-फूलते हैं, तो कभी रात की रानी बनकर महमहाते हैं। लेकिन गुलाब दिन में खिलता है और रात में भी खिला रहता है। खिला तो मुंदता नहीं और एकसाथ कभी नहीं मुरझाता, भले एक-एक कर उसकी पंखुड़ियां झरती चली जाएं और मिट्टी को उनका सुवास मिलता जाये। डा०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर्णसिंह का जीवन भी उसी गुलाब का प्रतीक है—सदाबहार-हंसमुख चेहरा, कांतियुक्त देहयष्टि, खिला हुआ रूप-यौवन, वाक्यों में माधुर्य, युक्ति, आंखों-भौंहों बरौनियों पर संस्कार की अद्‌भुत धूप तथा मिलने वालों पर सदा के लिए छोड़ती-सी स्मृति।

डा० कर्णसिंह ने राजनीति में अपना गुरु पं० जवाहरलाल नेहरू को माना और दर्शन-साहित्य में मार्गदर्शक अरविंद को। जीवन के सौंदर्य को कभी भी उन्होंने म्लान नहीं होने दिया। महाराज़ा होते हुए भी उसके विकारों से अपने को दूर रखा और राजनीति में रहकर भी उसके छल-छद्मों के शिकार नहीं हुए। आज भी उनके मुंह पर एक अबोध कांति विराजती है—किसी कश्मीरी अल्हड़ युवती की सेबनुमा मुस्कराहट या फिर तवी नदी की कल-कल ध्वनि के समान जो अपनी मर्मरता से यात्रियों का मन मोह लेती है।

'मानसरोवर' हमारे हाथ से चला गया, यह तथ्य डा० राममनोहर लोहिया ने पहली बार लोकसभा में रखा था, लेकिन अभी भी एक 'मानसरोवर' बरकरार है और वह है न्याय मार्ग, चाणक्यपुरी, दिल्ली में जहां डा० कर्णसिंह रहते हैं। उनका छोटा-सा, प्यारा, बौद्धिक परिवेश लिए बंगला है, जिसका नाम उन्होंने रखा है—मानसरोवर। और एक बड़ी कृपा उनके ऊपर भगवान की और भी है, राज गया और सभी राजाओं से लक्ष्मी बिछुड़ गयी, लेकिन डा० कर्णसिंह के साथ हर समय यश, राज्य और लक्ष्मी तीनों एकजुट होकर यशोराज्यलक्ष्मी के रूप में रहती हैं।

डा० कर्णसिंह ९ मार्च, १९८१ को अपने जीवन की अर्धशती पूरी कर रहे हैं। क्या माना जाये इसे ? मोहन राकेश के शब्दों में—'आधे-अधूरे' या फिर संतों-महर्षियों की वाणी में 'भरे-पूरे' ? हम तो यही मानकर चलते हैं कि उनके जीवन का यह बीच का पड़ाव है, जहां से अभी उन्हें कोसों दूर जाना है।

आभार प्रदर्शित कर ऋण-भार कम करने की परंपरा चली आ रही है, जिससे मैं अपने-आपको मुक्त रखना चाहता हूं। 'डा० कर्णसिंह : एक सौम्य व्यक्तित्व' की कल्पना साकार रूप ग्रहण नहीं करती, यदि आप सबों का सहयोग इसे नहीं मिलता। और यह सहयोग डा० कर्णसिंह के प्रति स्नेह, आदर और अपनापन का प्रतीक है, जिसके वे हर दृष्टि से हकदार हैं।

शंकरदयाल सिंह
संपादक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुक्रम

व्यक्तित्व के विविध पहलू

शिष्ट और उदारमना	श्री जैनेन्द्र कुमार	१५
कलारसज्ञ और विद्याप्रेमी	डा० प्रभाकर माचवे	१७
एक आदर्श भारतीय	डा० कामिल बुल्के	२२
स्रष्टा और द्रष्टा	डा० शिवमंगल सिंह सुमन	२५
हमारे युवराज : आपके डा० कर्णसिंह	श्रीमती पद्मा सचदेव	३१
व्यक्ति और मानस	डा० श्यामनन्दन किशोर	३६
वे जिनकी कल तलाश होगी	श्री ओंकार लाल बोहरा	४०
जैसा मैंने उन्हें देखा	प्रो० नीलाम्बर देव शर्मा	४४
डा० कर्णसिंह : मेरी नजर में	श्री गुलाम नबी शैदा	४८
पहली मुलाकात से आज नक	श्री अक्षयकुमार जैन	५२
एक लोकप्रिय व्यक्तित्व	श्री रामभक्त कपीन्द्र जी	५४
आधुनिक भारत के एक महापुरुष	डा० एवा अरादी	५६
विरल व्यक्तित्व के धनी	श्री यशपाल जैन	५८
राजनीति और संस्कृति के सेतु	डा० लक्ष्मीमल सिंघवी	६२
प्रज्ञा-पुत्र	श्री बशीर अहमद मयूख	६४
एक ही चेहरे वाला व्यक्तित्व	श्री राजेन्द्र अवस्थी	६६
एक सौम्य व्यक्तित्व	श्री शंकरदयाल सिंह	६९

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपनी परिधि में

अणु युग में धर्म		७७
श्री अरविन्द का सन्देश : राजनीतिक और दार्शनिक		८२
मुण्डकोपनिषद् का सन्देश		१०३
अमरनाथ की महिमा		११३
मेरा चुनाव-अभियान : एक आध्यात्मिक अनुभव		१२९
हिन्दी का विश्वदर्शन		१३२

बहुमुखी चिंतन के रंग

बहुमुखी चिंतन के रंग		१३९

कला और जीवन

देवी : भारतीय चिंतन में	श्रीमती कमला रत्नम्	१६१
बसोहली शैली के कतिपय चित्रों का रसास्वादन	डा० आनन्द कृष्ण	१६७
सोवियत संघ में संस्कृत साहित्य	प्रो० ई० पी० चेलीशेव	१७७
अमर महल का ऐतिहासिक संग्रहालय	प्रो० सोमनाथ वखलू	१८५

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्यक्तित्व के विभिन्न पहलू

किसी भी व्यक्ति की समग्रता का दिग्दर्शन उसका व्यक्तित्व होता है। डा० कर्णसिंह राष्ट्रीय संस्कृति की धरोहर और उन्मुक्तचेता व्यक्ति हैं, जिनके विभिन्न पहलुओं को देश के मान्य विद्वानों ने आंका है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

□ श्री जैनेन्द्र कुमार

शिष्ट और उदारमना

डा० कर्णसिंह के विशेष निकट आने का सद्भाग्य तो मुझे अभी नहीं प्राप्त हुआ पर पहले ही दर्शन में मैं उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना न रह सका। यह भी लगा कि मुझे अपनेको उनसे दूर मानने का अवसर नहीं है। वे इतने खुले, सहज और निश्छल प्रतीत हुए। उस समय वे मंत्री पद पर थे और सत्ता के अंग थे। किंतु स्पष्ट था कि कुर्सी का मान उनके व्यक्तित्व से नीचे रह जाता है और उस कारण किसीके लिए वे दुर्लभ नहीं बन जाते। एक आभिजात्य है व्यक्तित्व में और भव्य-सौम्य प्रसन्नता। प्रतीत हुआ कि जो राजनीति उनके अनुकूल हो सकती है, उसको हार्दिक और मानवोचित होना होगा। प्रतिस्पर्द्धामूलक राजनीति जिसमें कुटिलता के लिए अवकाश है और उसका उपयोग भी है, उन जैसे शिष्ट और उदारमना व्यक्ति के लिए अनुकूल न पड़ सकेगी। यों वे राजकुमार हैं और क्षत्रियोचित गुणों की उनमें कमी नहीं है। पर अध्ययन-मनन से योग्यता को ऐसा परिष्कार प्राप्त हो गया है कि व्यक्तित्व जैसे सर्वथा सात्त्विक और सांस्कृतिक रूप ले लेता है। उनकी क्रियाशीलता बहुआयामी रही है। वे विद्वान हैं, अध्येता हैं, साहित्यकार हैं, प्रवक्ता हैं। शिक्षा-संस्कृति के क्षेत्र में उनका पर्याप्त योगदान है और एक तत्पर कर्त्तव्यपरायण नागरिक के रूप में ख्यात हैं। साथ विश्वसनीय मित्र और बहुत ही अच्छे आतिथेय भी हैं।

मुझे गर्व और प्रसन्नता है कि उनके अभिनंदन में मुझे सहयोग का अवसर मिल रहा है। अत्यंत शुभ है यह अनुष्ठान और समयोपयुक्त भी। लोकजीवन में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तरह-तरह के तनाव हैं और ऐसे व्यक्तियों की परम आवश्यकता है जिनमें मूल्य-निष्ठा हो, चरित्रशीलता हो और प्रकृति की स्निग्धता भी हो। डा० साहब की आयु अभी अधिक नहीं है और देश को उनसे बहुत आशाएं हैं। वह भारत जिसपर हमको गर्व है और दुनिया भी जिसका गौरव करती है राजनीतिक नहीं प्रत्युत सांस्कृतिक और आध्यात्मिक है। डा० कर्णसिंह को इन दोनों दिशाओं में गहरी व्युत्पन्नता प्राप्त है। उनका अध्ययन विशाल है और धार्मिक अभिरुचि उनके ज्ञान को अनोखी उपादेयता प्रदान करती है।

हम अभिनंदन करके ही अपने को कर्त्तव्य से उऋण नहीं मान ले सकते। हमारी चेष्टा होनी चाहिए कि उनके जैसे व्यक्तित्व का पूरा लाभ समाज और देश को प्राप्त हो और वे उत्तरोत्तर गौरवान्वित होकर समाज, विशेषकर युवजन के लिए स्मरणीय और उदाहरणीय रूप में प्रस्तुत हो सकें।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

□ डा० प्रभाकर माचवे

कला-रसज्ञ और विद्या-प्रेमी

डा० कर्णसिंह का नाम यद्यपि राजनीति में आता रहा है और कुछ समय के लिए वे भारत के केन्द्रीय शिक्षा-मंत्री भी रहे, फिर भी हम लिखने-पढ़ने वालों की जमात में उनका आदर उनके पद से नहीं है। वे युवराज रहे, सदरे-रियासत रहे या जम्मू-कश्मीर की कांग्रेसी राजनीति के एक महत्त्वपूर्ण कर्णधार रहे—ये सब बातें गौण या दोयम हैं। अव्वल बात यह है कि वे एक उत्तम वक्ता हैं। मैंने उन्हें हिन्दी, डोगरी, अंग्रेजी में धारा-प्रवाह बोलते हुए देखा-सुना है—बिना किसी पूर्व सूचना या तैयारी के, जिसमें उनके प्रत्युत्पन्नमतित्व से मैं चकित हुआ हूं। और तैयारी के साथ, औपचारिक समारोहों में भी। उनके बोलने के बाद, बाकी सब वक्ता फीके लगने लगते हैं। ऐसा कुछ जादू डा० राधाकृष्णन की वाणी में था, जब वे अंग्रेजी बोलते थे। ऐसा जादू हिन्दी में माखनलाल चतुर्वेदी और डा० हजारी-प्रसाद द्विवेदी की वक्तृत्व-कला में था। उनके यहां संस्कृत पाण्डित्य, विश्व का दार्शनिक ज्ञान सब करतलामलकवत्, सहज रूप से अवतरित हो जाता था। प्रोफेसर लोग अच्छा बोलें, तो समझ में आता है; वह उनका पेशा ही है। राजनीतिक नेता 'सभाजीतसिंह' हों, यह भी समझ में आता है; रात-दिन वे जनता की आंखों में शब्दों की सुनहली धूल फेंकते ही रहते हैं। पर जो पेशे से 'लेक्चरार' या 'प्रोफेसर' न हो; और मंच गुंजाना और 'हैरैंगिंग' जिनकी 'वृत्ति' न हो, ऐसे व्यक्ति के पास वाग्मिता का ऐसा नाना-वर्णीय चमत्कार हो, तो यह ईश्वरीय देन ही है। वे कभी भी अपने भाषण में नाटकीयता या वृथा भावुकता का प्रश्रय नहीं लेते;

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कभी विवेक और संयम के किनारे नहीं छोड़ते और फिर भी श्रोताओं को मंत्र-मुग्ध कर दे सकते हैं। शब्दों पर उन्हें विलक्षण अधिकार प्राप्त है।

उनका पाठान्तर बहुत अच्छा है। एक बार नई दिल्ली के रामकृष्ण मिशन आश्रम में स्वामी रंगनाथानन्द की किसी पुस्तक का विमोचन था, श्रीमती इन्दिरा गांधी के हाथों। तत्कालीन एक मंत्री सी० सुब्रह्मण्यम भी बोले। पर डा० कर्ण-सिंह ने आकर उपनिषद का पाठ शुरू किया, और जनता उनकी वाणी का अमृत ग्रहण करती गई। शुद्ध सस्वर काव्य-पाठ, संस्कृत हो या अंग्रेजी, हिन्दी हो या डोगरी, वे बहुत प्रभावशाली ढंग से घंटों तक कर सकते हैं। उनकी स्मृति बहुत अच्छी है, उच्चारण भावानुसारी, स्पष्ट और स्वराघात-युक्त। अतः उनकी बात का प्रभाव भी उतना ही अच्छा पड़ता है। रामचरितमानस-चतुःशती का विशाल समारोह था। डा० कर्णसिंह ने धन्यवाद का पांच मिनट का भाषण क्या दिया—सारी सभा को हिलाकर रख दिया। ऐसा ही संस्मरणीय भाषण श्री अरविन्द-शताब्दी पर उन्होंने एक संगोष्ठी में दिया। मैंने उन्हें दिल्ली के डोगरी-भाषियों के साहित्य-सम्मेलन का उद्घाटन-भाषण देते भी सुना है। और कुमारन आसान शताब्दी-महोत्सव में अध्यक्षीय भाषण भी। वे सदा मौलिक, औरों से एकदम भिन्न, सबमें अलग से चमक उठने वाले वक्ता हैं।

उनके व्यक्तित्व की यह विशेषता इस बात से आती है कि वे केवल एक कवि, निबन्धकार, शोधकर्ता और साहित्यप्रेमी ही नहीं हैं, संस्कृत-प्रेमी, आस्तिक साधक हैं। दिल्ली के कालीबाड़ी के मंदिर में वे अपने रचे गीत और भजन डोगरी में गाते हैं। उनका श्री अरविन्द की कविताओं के पाठ का एक 'एल०पी०' रिकार्ड अरविंद-शताब्दी के अवसर पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में इण्डिया इण्टरनेशनल सेण्टर में विमोचित हुआ।

मुझे जम्मू में उनके पुश्तैनी राज प्रासाद में उनका आतिथ्य ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मेरे साथ में पं० विष्णुकान्त शास्त्री थे, जो डुग्गर-देश के जामाता हैं। स्वयं डा० कर्णसिंह ने अपना दुर्लभ मध्ययुगीन चित्रकला-संग्रह दिखलाया। वे जम्मू के रघुनाथ मंदिर ट्रस्ट के केवल ट्रस्टी नहीं हैं, वहां की दुर्लभ हस्तलिखित संस्कृत पोथियों के संरक्षक भी हैं। कश्मीर में शैव-मत के दर्शन-संबंधी शोधकार्य को प्रोत्साहन देने के लिए उन्होंने विशेष अनुदान भी दिये हैं।

डा० कर्णसिंह अपने आपको हिन्दी-भाषी नहीं कहते। वे अपनी मातृभाषा डोगरी बताते हैं। उन्हींके प्रयत्नों से (स्व०) डा० सुनीतिकुमार चटर्जी के अध्यक्षता-काल में केन्द्रीय साहित्य अकादेमी ने डोगरी भाषा को साहित्यिक मान्यता दी। गरीब बेचारी अकादेमी माता का कुनबा बढ़ता गया। पहले संविधान-सम्मत पंद्रह भाषाओं में ही वह काम करती थी, अब बाईस बच्चे हो गये। जब तक मैं मंत्री था (१९७५ तक), अकादेमी के बजट की सीमा वही थी। अतः सभी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बिलखते थे कि हमें समान हिस्सा नहीं मिला। अब शायद स्थिति बदल गई है। देश से 'गरीबी हटाओ' जिस मात्रा में अधिक कारगर होती जाती है, बेचारे भाषाई लेखकों की भी आर्थिक दशा शायद सुधरती जायेगी। पर मुझे अपने जीते-जी भारतीय लेखक विदेशी लेखक की तरह—चाहे पूंजीवादी देशों का हो या साम्यवादी—आराम से रह सकेगा, इसका इमकान या भरोसा नहीं है। डा० कर्णसिंह नौजवान, उत्साह से भरे, आशावादी लेखक हैं। वे अपने सामने श्री अरविन्द के ऊर्ध्व-मानस का अवतरण जन-जन में अवश्य देखेंगे, परन्तु सुमित्रानन्दन पन्त तो वह सपना देखते-देखते ही स्वर्ग सिधार गये। यह कुछ विषयांतर हो गया।

लेखक का आर्थिक पक्ष ही प्रधान नहीं होता। लेखन भी तो सार्थक बनता जाना चाहिए। पी० लाल ने डा० कर्णसिंह की अंग्रेजी कविताएं अपनी 'विश्व'-(?) विख्यात 'ऐथोलॉजी' में छापी हैं। हिन्दी में डाक्टर साहब के एक संग्रह का अनुवाद हुआ है। डोगरी में और भी सशक्त कवि-कवयित्रियां हैं। वे सब हिन्दी में आने चाहिए। पर मुझे कश्मीरी-विरुद्ध डोगरी, या डोगरी-विरुद्ध पहाड़ी भाषाओं का विवाद बहुत कम समझ में आता है। मैं सब भाषाओं को समान आदर और स्नेह से देखता हूं। अतः डा० कर्णसिंह के संस्कृत, हिन्दी, डोगरी और अंग्रेजी के साहित्यों और साहित्यकारों के, भारतीय परिप्रेक्ष्य में, प्रोत्साहन, विकास, उन्नयन और सहयोग के सब सद्प्रयत्नों की सराहना करता हूं। इन्हीं प्रयत्नों में एक डा० कर्णसिंह नेहरू-फेलोशिप के एक प्रमुख न्यासी के नाते, भारत के विभिन्न चिंतकों, वैज्ञानिकों, कलाकारों, साहित्यकारों का जो चुनाव करते रहे हैं, उसके प्रति भी लेखक-बिरादरी की ओर से मैं उन्हें आभार देता हूं।

डा० कर्णसिंह आधुनिक राजनीति-दर्शन के पण्डित हैं। उनका शोध-प्रबंध श्री अरविन्द के राजनैतिक दर्शन पर है, जो अंग्रेजी में प्रकाशित हो चुका है। मैंने उसे मनोयोगपूर्वक पढ़ा है। अरविन्द-शताब्दी वर्ष (१९७२) में मुझे डाक्टर साहब की कृपा से देश-भर में चार सेमिनार, अरविन्द-साहित्य पर, देश के चार क्षेत्रों में आयोजित करने का सौभाग्य मिला। तब मैंने जाना कि श्री अरविन्द ने बहुत वर्षों पहले, लोकमान्य तिलक की ही तरह, इस देश की मूल समस्या को जान लिया था। आत्म-शक्ति और आत्म-ज्ञान का अभाव वह मूल समस्या थी। डा० कर्णसिंह ने तत्कालीन भारत के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में श्री अरविन्द के राजनैतिक दर्शन के क्षेत्र में अवदान पर बहुत गहरा और दूरगामी विचार प्रस्तुत किया है।

इन सब बातों के अलावा डा० कर्णसिंह के व्यक्तित्व का एक और विशिष्ट पहलू है, जिससे वे मेरे निकट स्नेह और आदर के पात्र हैं। वे कलाकारों और साहित्यकारों की कद्र करना जानते हैं। उनके आवास में उत्तम चित्रों का संग्रह है। जब वे उड्डयन-मंत्रालय में थे, तब सारे विमान-तल के कार्यालय अत्यन्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुरुचिपूर्ण ढंग से भित्ति-चित्रों से सुसज्जित हो गये थे। मैंने उनके घर में कवि-गोष्ठियां सुनी हैं। वे मुशायरे और 'पोएट्री रीडिंग्ज़' में भी उतनी ही दिलचस्पी रखते हैं, जितनी डोगरी लोककवि-सम्मेलन में। वे सच्चे अर्थ में 'रसिक' और 'कद्रदान', 'कौनाईशूर' और कला-प्रेमी व्यक्ति हैं। यह सुरुचि उन्होंने अध्ययन और साधना से, भारतीय इतिहास और दर्शन के गहरे स्वाध्याय और मनन से अर्जित की है। इसी विद्या-प्रेम ने उन्हें विजयी बनाया है। उन्हें कहीं भी अहंकार छू भी नहीं गया है। जिस किसी व्यक्ति के प्रति उनकी एक धारणा बन जाती है, उसे वे बराबर निभाते हैं। राजनैतिक या सामाजिक पद-प्रतिष्ठा का माप-दण्ड उनके लिए प्रधान नहीं—वे व्यक्ति की सहृदयता के सहारे सम्बंधों को बनाते हैं। इसीलिए अवसरवादिता-प्रधान चंचला राजनीति की ऊंच-नीच में भटक नहीं गये। अपने आदर्शों को वे बराबर बनाये रखते चले गये। चाहे स्वास्थ्य-मंत्रालय हो या यातायात, शिक्षा हो या उड्डयन, वे एक-सी लगन और पूरी निष्ठा से अपने कार्य में दत्त-चित्त रहे। उनके बारे में विरोधियों को भी आलोचना करने या आक्षेप करने का कोई अवसर नहीं मिला। वे छोटी-छोटी बातों, ईर्ष्या-द्वेष और गोटी बिठाने-जमाने की सियासत से सदा दूर रहे। जो उन्हें नापसंद था, वह साफ-साफ कहा। उन्होंने कभी भी किसी की अनावश्यक स्तुति नहीं की, न अनावश्यक निंदा। सिद्धांत को लेकर आलोचना की, व्यक्तिगत राग-द्वेष से प्रेरित होकर नहीं। जबकि कश्मीर और जम्मू की काफी चक्करदार और उलझी हुई राजनीति में क्या दक्षिणपंथी और क्या हिन्दू और क्या मुस्लिम—उनके अनेक आलोचक बराबर दुष्प्रचार करते रहे। पर डा० कर्णसिंह की प्रतिमा धूमिल नहीं हुई।

डा० कर्णसिंह मनुष्य के नाते बहुत ऊंचे हैं। उनका पारवारिक, वैवाहिक एवं दाम्पत्य जीवन बहुत निर्मल है। एक भारतीय आदर्श गृहस्थ की तरह से वे हैं। वे देश-विदेश घूम चुके हैं। दीन-दुनिया का बहुत तजुरबा उन्होंने छोटी उम्र में हासिल किया है। पर वे मुक्त विचारों के स्वतंत्र व्यक्ति हैं। वे किसी दल, खेमे या गुट के अनुगत नहीं हैं। वे अपने ढंग के, अपना रास्ता खुद बनाने वाले चिंतक हैं। भावी भारत को उनसे बड़ी आशाएं हैं। मैंने सुना है कि वे अपनी आत्मकथा लिख रहे हैं—अवश्य ही वह एक बड़ा ही मूल्यवान दस्तावेज होगा अपने युग का, और आशा करूं कि उसमें हम जैसे पाठकों के लिए भी कुछ सामग्री होगी, जो 'युग' से अधिक 'युग-युग' की बात खोजते हैं। जिन वरेण्य महान ग्रंथों का अध्ययन उन्होंने मूल संस्कृत में किया है, उनकी छाप उनके मानस पर अवश्य पड़ी होगी। इसलिए वे क्षण से अधिक अनन्त, खण्ड से अधिक अखण्ड, और मृण्मय से अधिक चिन्मय के चिरंतन शोध में अपनी लेखनी और वाणी का उपयोग करेंगे, ऐसी मेरी मंगल-कामना है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वे शतायु हों, यह तो सभी आशीर्वाद देते हैं। पर वे इस शताब्दी के भारत के एक शलाका-पुरुष बनें, ऐसी मेरी हार्दिक अभिलाषा है। यह शताब्दी भारत के लिए बहुत निर्णायक है, और डा० कर्णसिंह जैसे विचारक नेता कम हैं जिनके पास परम्परा और विद्या का ऐसा संतुलित समन्वय और साथ ही स्पष्टवादिता और सत्यनिष्ठा का साहसमय संकल्प हो।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

□ डा० कामिल बुल्के

एक आदर्श भारतीय

मोरिशस में आयोजित द्वितीय विश्व हिंदी-सम्मेलन के दौरान डा० कर्णसिंह से मेरा प्रथम परिचय हुआ था। बाद में उनके घर पर एकाध बार 'विश्व-हिंदी-दर्शन' पत्रिका के संपादक-मण्डल की बैठक हुई, जहां मुझे डा० कर्णसिंह को और निकट से जानने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

डा० कर्णसिंह के विषय में सोचते समय सबसे पहले उनकी सौजन्यपूर्ण प्रसन्नता, सहज स्वाभाविक मुस्कराहट और उन्मुक्त हंसी याद आती है। उनकी यह विशेषता उनके व्यक्तित्व के आकर्षण का एक प्रमुख कारण है। प्रथम शताब्दी के यूनानी इतिहासकार प्लिनी ने अपने युग में प्रचलित एक दंत-कथा का उल्लेख किया है, जिसके अनुसार प्राचीन ईरान के पैगंबर जरथुस्त्र एकमात्र मानव हैं, जो जन्म के दिन ही हंसे थे। मैं डा० कर्णसिंह के जन्म के दिन के विषय में तो नहीं जानता, किंतु इतना अवश्य कहना चाहूंगा कि वह उन इने-गिने सौभाग्यशाली लोगों में से हैं, जो दिन-प्रतिदिन हंसते हैं। प्लिनी ने उस दंत-कथा का इसलिए उल्लेख किया था कि यूनानी लोग हंसी को देवताओं की विशेषता मानते थे। यूनानियों का यह विश्वास भारतीय संस्कृति से मेल खाता है, क्योंकि भारत में 'सच्चिदानंद' परमात्मा की सर्वोत्तम परिभाषा माना जाता है।

प्राचीन संस्कृत-साहित्य में जीवन के प्रति उत्साह, चिकीर्षा और आशावाद चित्रित किया गया है। ऋग्वेदीय आर्य देवताओं से सौ वर्ष तक जीवित रहने की प्रार्थना करते थे—**पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम्** (७, ६६, १६)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किंतु जो जीवन वे चाहते थे, वह कर्ममय जीवन था, जैसा कि ईशोपनिषद् के प्रारंभ में कहा गया है कि मनुष्य को 'कर्म करते हुए' एक सौ वर्ष तक जीवित रहने की इच्छा करनी चाहिए—कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः।

ईशोपनिषद् कर्ममय जीवन पर बल देती है और गीता के अनुसार 'लोकसंग्रह ही उस कर्ममय जीवन का उद्देश्य होना चाहिए, ऐसा करने पर जनक आदि संसिद्धि प्राप्त कर सके—

कर्मणैव ही संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोक संग्रहमेवापि सम्पश्यन् कर्तुमर्हसि॥ (३,२०)

वाल्मीकि रामायण में जीवन के प्रति उदासीनता ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलेगी। जब सीता का कहीं भी पता नहीं चल सका, तो हनुमान के मन में एक क्षण के लिए आत्महत्या का विचार आया, किंतु उन्होंने तुरंत संभलकर यह कहा कि विनाश में बहुत-से दोष हैं, जो जीवित रहता है, वह कभी-न-कभी कल्याण का भागी हो जाता है—

विनाशे बहवो दोषा जीवन् प्राप्नोति भद्रकम्

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन आर्य भाग्यवादी नहीं थे; वे आत्मविश्वास की उमंग में 'देव' पर अवलंबित रहने वालों का इस प्रकार निन्दा करते थे—

विहाय पौरुषं यो हि देवमेवावलम्बते।
प्रासादसिंहवत्तस्य मूर्ध्नि तिष्ठन्ति वायसाः॥

इन उद्धरणों में जो आशावाद, पौरुष, कर्मशीलता और जीवन के प्रति उत्साह परिलक्षित होता है, वह सब डा० कर्णसिंह के ओजस्वी व्यक्तित्व में भी प्रतिबिंबित है और इस दृष्टि से हमें डा० कर्णसिंह को भारतीय संस्कृति के सच्चे प्रतिनिधि की उपाधि प्रदान करने में संकोच नहीं होना चाहिए।

संस्कृति मानव-जीवन की एक ऐसी विशेषता है, जो इस संसार में मनुष्य को छोड़कर और किसी की नहीं होती। संस्कृति मनुष्य को भौतिकता और पाशविकता के ऊपर उठाकर उसे मानवोचित जीवन बिताने के योग्य बनाती और सम्पूर्ण सत्य एवं अनंत सौंदर्य की ओर निरन्तर आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान करती है। संस्कृति की अब तक कोई सर्वसम्मत परिभाषा नहीं बन पायी है, फिर भी इसे निश्चय ही मानवता की श्रेष्ठ उपलब्धियों का समूह कहा जा सकता है। हर मानव-समाज, हर देश की संस्कृति उसकी सर्वोत्तम उपलब्धि है। भारतीय प्रतिभा को साहित्य, दर्शन, धर्म और कला आदि संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों में जो सफलता मिली है, उस पर प्रत्येक भारतीय को गौरव करना चाहिए। दुर्भाग्यवश आजकल अधिकांश भारतीय न केवल संस्कृत से अनभिज्ञ हैं, बल्कि वे अपनी प्राचीन संस्कृति में भी रुचि नहीं रखते। इसके विपरीत डा० कर्णसिंह संस्कृत और भारतीय संस्कृति, दोनों में पूर्ण निष्ठा रखने वाले भारतीय हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वह संस्कृत भाषा और साहित्य के अधिकारी विद्वान् और भारतीय संस्कृति के प्रेमी हैं।

आधुनिक शिक्षित वर्ग के बहुत-से लोग संस्कृत और भारतीय संस्कृति की बात सुनकर नाक चढ़ाते हैं, क्योंकि वे भारतीय संस्कृति और संस्कृत के प्रेम को रूढ़िवाद का पर्याय समझते हैं। उनकी यह धारणा नितांत निराधार नहीं है, क्योंकि प्राचीनता के पुजारियों का एक वर्ग विद्यमान है, जो भारतीय संस्कृति के नाम पर निर्जीव रूढ़ियों को बनाये रखने के पक्ष में है और अन्य देशों की संस्कृति की निंदा भी करता है। ऐसी मनोवृत्ति उत्तर मध्यकाल की उपज है और वास्तविक भारतीय संस्कृति के विरुद्ध है।

प्राचीन भारत के लोग अपने अतीत के गौरव से मुग्ध होकर निष्क्रिय नहीं बने, अपितु अपने हृदय में जीवन के प्रति उत्साह भरकर आगे बढ़ते रहे। 'मालविकाग्निमित्र' की प्रस्तावना में कालिदास ने कहा है कि 'पुराना होने से ही न तो कोई काव्य उत्कृष्ट हो जाता है और न नया होने से निकृष्ट। ज्ञानी लोग दोनों को परखकर उनमें से एक को अपनाते हैं (परीक्ष्य—अंतरद्—भजंते), मूर्ख ही दूसरों के कहने पर चलता है। (मूढ़: परप्रत्ययनेयबुद्धिः)।

काव्य के विषय में कालिदास की यह उक्ति संस्कृति के अन्य अंगों पर भी लागू है। भारत में उन लोगों की कभी कमी नहीं हुई थी, जो निर्जीव रूढ़ियों की बेड़ियां फेंककर प्राचीन आदर्शों को नयी परिस्थितियों के अनुकूल बनाने के पक्ष में थे और नवीन विचारों को अपने देश की संस्कृति के सांचे में ढालकर निर्भीकतापूर्वक अपनाते थे।

किसी भी देश की वास्तविक संस्कृति उदार और अविरोधी होती है। वह अन्य देशों के मानवीय मूल्यों और उनकी सांस्कृतिक उपलब्धियों की उपेक्षा नहीं करती। **उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्**—प्राचीन भारत का यह आदर्श इस बात का प्रमाण है कि यहां के मनीषियों में कोई संकीर्णता नहीं थी। भारत में यह उदार परंपरा आजकल भी जीवित है। शेक्सपियर-प्रेमी डा० कर्णसिंह इसके प्रमाण हैं।

ईश्वर से मेरी प्रार्थना है कि डा० कर्णसिंह, जो जीवन की अर्धशती पूर्ण कर रहे हैं, लोकसंग्रह का ध्यान रखकर कार्य करते हुए सौ वर्ष तक जीवित रहें—

लोकसंग्रह मेवापि सम्पश्यन्
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जीवेत् शतं समाः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

□ डा० शिवमंगलसिंह 'सुमन'

स्रष्टा और द्रष्टा

डा० कर्णसिंह से मेरा प्रथम साक्षात्कार नेपाल की नैसर्गिक पृष्ठभूमि पोखरा-उपत्यका में हुआ था। काठमाण्डू से लगभग डेढ़ सौ मील उत्तर-पश्चिम पोखरा नाम की बड़ी ही रमणीय उपत्यका है, जहां माछापुछर चोटी तथा फेवाताल नामक विशाल झील को देखने के लिए देश-विदेश के यात्रियों का तांता लगा रहता है। काठमाण्डू से भैरहवा, भगवान बुद्ध के जन्म-स्थान, लुम्बिनी वन को जाने वाला वायुयान इस उपत्यका से होकर ही गुजरता है। यहां की श्वेत हिमाच्छादित चोटी हूबहू मछली की पूंछ-सी दिखाई पड़ती है। माछापुछर के चारों ओर भूरी-भूरी पहाड़ियों से घिरी हुई इस उपत्यका में मानसरोवर की प्रतिकृति-सी स्फटिक-निर्मल झील पर्यटकों का प्रमुख केन्द्र बन गई है। आज से लगभग २० वर्ष पूर्व पहली अप्रैल, १९६० को मैं भारतीय राजदूतावास के सांस्कृतिक सचिव के रूप में पश्चिमी नेपाल के दौरे पर प्रातः १०-३० बजे डकोटा वायुयान से पोखरा के लिए रवाना हुआ। वायुयान से उतरने पर यह देखकर सुखद कौतूहल लगा कि इसी यान से महाराजा कर्णसिंह और महारानी यशोराज्यलक्ष्मी देवी भी उपत्यका-भ्रमण के लिए पधारे हैं। अभी हमारी जिज्ञासा सुगबुगा ही रही थी कि डा० कर्णसिंह बिना किसी औपचारिकता के मेरी ओर बढ़े और पूछा, क्या मैं ही सुमन हूं? जब तक हड़बड़ी में प्रणाम कर मैं प्रकृतिस्थ होने का प्रयत्न करूं तब तक उन्होंने कैमरा निकाला और मेरा चित्र खींचने का आग्रह किया। उनके यश-सी ही समुज्ज्वल महारानी भी पार्श्व में खड़ी-खड़ी मुस्करा रही थीं। मैं विस्मित-विमुग्ध-सा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चित्रवत् जहां का तहां खड़ा रह गया। पहचान तो मैंने पहले ही लिया था, क्योंकि दो दिवस पूर्व ही तत्कालीन महाराजाधिराज श्री ५ महेन्द्र वीर विक्रम शाह की वर्ष-गांठ के परेड में, टुण्डी खेल में—जिसे नेपाली जनता एशिया का सबसे बड़ा मैदान मानती है—उन्हें राजपरिवार के साथ राजनयिक दीर्घा से देखा था। बंद गले के लम्बे कोट और कश्मीरी पगड़ी में केसरिया आभा से प्रदीप्त उनकी तराशी हुई आकृति, शुक-नासिका, आयतनयन, वृषभस्कंध, विशद वक्षस्थल और मन्द-मन्द मुस्कराती अंतर्भेदी दृष्टि सबके आकर्षण का केन्द्र बनी हुई थी। उस समय लग-भग २९-३० वर्ष की आयु में, उनकी सिंहध्वनि में विम्बित क्षात्रधर्म की छटा देख-कर कालिदास द्वारा वर्णित दिलीप की अनुहार अनायास साकार हो उठी थी :

व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः।
आत्मकर्मक्षमं देहं क्षात्रो धर्म इवाश्रितः॥

(रघुवंश, १/१३)

अर्थात् विशाल वक्ष, वृषभ-स्कंध और शाल जैसी लम्बी भुजाओं से शोभित वह आकृति ऐसी मालूम पड़ती थी जैसे शौर्य और उत्सर्ग को चरितार्थ करने वाला क्षात्रधर्म स्वयं मूर्तिमान् हो उठा हो।

ज्यों-ज्यों उनसे सम्पर्क बढ़ता गया, त्यों-त्यों कालिदास के रूपक की सांगो-पांगता और भी सार्थक प्रतीत होने लगी :

आकारसदृशप्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः।
आगमैः सदृशारम्भ आरम्भे सदृशोदयः॥

(रघुवंश, १/१५)

जैसा भव्य उनका आकार था (है), वैसी ही कुशाग्र बुद्धि भी थी और जैसी प्रज्ञा थी (है), वैसा ही गहन अध्ययन भी था (है)। और उस अध्ययन के सदृश ही उदात्त उनका उत्कर्ष भी था (है)।

उस दिन उनके साथ पोखरा-पर्यटन का सुयोग मेरे लिए बहुमूल्य स्मृति बन गया। प्रथम चरण में ही पोखरा के प्राचीन मन्दिर में उनके दुर्गासप्तशती के शुद्ध-बुद्ध-उदात्त पाठ पर मैं चकित रह गया। तब तक मुझे पता नहीं था कि वे संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी, पंजाबी तथा डोगरी में समान रूप से पारंगत हैं, और इन सभी भाषाओं में धाराप्रवाह भाषण भी दे सकते हैं। यह तो मुझे मालूम था कि यशोराज्यलक्ष्मी जी भी नेपाल के भू० पू० प्रधानमंत्री महाराजा मोहन शमशेर जंग बहादुर राणा की पौत्री और उनके कनिष्ठ पुत्र जनरल शारदा शमशेर की पुत्री हैं; पर साहित्य, संगीत और कला में, विशेषकर नेपाली और हिन्दी साहित्य के प्रति रुचि जाग्रत् करने में अपने पति की प्रेरणा-भूमि भी हैं, यह रहस्य बहुत बाद में उद्घाटित हुआ। इंदुमती के प्रति अज की उक्ति, 'गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ' इन दोनों पर भी सटीक घटित होती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुशल गृहिणी के रूप में उनके आतिथ्य-सत्कार से जो उपकृत हुए हैं, वे ही गूंगे के गुड़ के समान उसका आनन्द जानते हैं। उस दिन फेवाताल में नौका-विहार के समय डाक्टर साहब के तनिक-से आग्रह पर मैंने कई कविताएं सुना डालीं जो वे पूर्ण तन्मयता से सुनते और सराहते रहे, पर इसकी उन्होंने हवा तक नं लगने दी कि वे स्वयं डोगरी के शीर्षस्थ कवियों में हैं जिनके भक्तिगीत आकाशवाणी से प्रसारित होने के अतिरिक्त जम्मू-कश्मीर के जनपदों और ग्रामों में लोकगीतों के समान घर-घर में गाये जाते हैं। शांति-निकेतन के आस-पास संथालगृहों में जैसे रवीन्द्र के गीत दैनंदिन कार्यों में अनुगुंजित होते रहते हैं, वहुत कुछ वैसा ही माहौल जम्मू-कश्मीर के लोक-जीवन में डा० कर्णसिंह के डोगरी गीतों का है। मुझे ज्ञात नहीं कि रवीन्द्र-संगीत की भांति इनकी भी स्वर-मूर्च्छनाएं उनके द्वारा रची गई हैं अथवा नहीं। लगभग चार वर्ष पूर्व २९ अगस्त, १९७६ को मोरिशस में विश्व हिंदी सम्मेलन में डोगरी के स्वरचित लोकगीतों का सस्वर-पाठ करके उन्होंने समस्त श्रोताओं को मंत्र-मुग्ध कर दिया था। वाद में तो उनकी अंग्रेजी रचनाओं को भी सुनने का सुयोग मिला। पोखरा-परिभ्रमण के पश्चात् जब मैं हवाई अड्डे पर उन्हें विदा करने आया तो सहज हंसी-मजाक के दौर में यान पर बैठते-बैठते उन्होंने मेरी एक रचना—'मैं तुम्हें पहचानता हूं'—पूरी-की-पूरी दुहरा दी और 'अच्छा सुमनजी, अलविदा' कहकर अट्टहास की तरलता के साथ-साथ यान में तिरोहित हो गए। उनके इस कौतुक पर चकित मैं वायुयान के आंखों से ओझल हो जाने पर कुछ क्षण इस प्रथम भेंट की स्वप्निल कुहेलिका में खोया-सा खड़ा रहा। सुना था कि राजा भोज के दरबार में ऐसे पण्डित होते थे जिनमें से कोई एक बार, कोई दो वार और कोई तीन वार सुनकर किसी भी रचना को शब्द-प्रतिशब्द दुहरा देते थे। पर यह करिश्मा किसी सुख-सुविधा-सम्पन्न श्रीमान् के मुख से घटित हो जायगा, इसकी तो मैंने कल्पना भी नहीं की थी। आज से लगभग पांच वर्ष पूर्व नेहरू पुण्य-तिथि के अवसर पर जव मैं त्रिमूर्ति में श्रीमती इन्दिरा गांधी से किसी चर्चा में लीन था, तो डाक्टर साहब ने दूर से ही मुझे देखकर 'मैं तुम्हें पहचानता हूं' का पाठ करते हुए प्रवेश किया। डा० साहव के मुख से मेरी कविता का पाठ सुनकर इंदुजी कुछ विस्मित और कुछ विनोदित भी हुईं। इस प्रकार प्रथम परिचय में ही डाक्टर साहव ने अपने स्नेह-सद्भाव से सदा-सदा के लिए मुझे ऐसा सिक्त कर दिया कि उनकी याद आने पर पद्माकर की ये पंक्तियां बरबस मानस में उमड़ उठती हैं कि—'हौं तो स्याम रंग में चोराई चित चोरा-चोरी, बोरत तो बोरयों पै निचोरत बने नहीं।'

इसके पश्चात् लगभग साढ़े छह वर्ष बाद २३ नवम्बर, १९६६ को उज्जैन के कालिदास-समारोह में, कालिदास के सौंदर्य-तत्त्व पर उनका मार्मिक भाषण सुनने का सुयोग मिला। संस्कृत-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वानों का कहना है कि कालिदास के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कलात्मक वैभव का ऐसा सरस, सम्मोहक और मनोवैज्ञानिक तत्त्व-निरूपण उन्होंने इसके पहले नहीं सुना। उज्जयिनी में उदयन-कथा के समान गोष्ठों और गोष्ठियों में आज भी इसकी चर्चा चलती रहती है। यहीं से उनके अध्ययन-अध्यवसाय से परिचित होने और उनकी मेधावी उपलब्धियों से उपकृत होने का सिलसिला चला। कुशाग्र विद्यार्थी के रूप में दिल्ली-विश्वविद्यालय से राजनीति-विज्ञान में एम० ए० में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त कर आपने जो कीर्तिमान स्थापित किया, वह आज तक अतिक्रमित नहीं हो सका। पी-एच० डी० के शोध-प्रबन्ध के रूप में महर्षि अरविन्द की दार्शनिक एवं राजनैतिक विचारसरणि के मूलभूत चिंतन को उद्घाटित करने में आपने विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है। पण्डित जवाहरलाल नेहरू स्वयं विस्मित थे कि राजपरिवार का एक युवक अरविन्द-दर्शन की रहस्यात्मक गुत्थियों को ऐसे सहजभाव से कैसे सुलझा सका। 'भारतीय राष्ट्रीयता का पैगम्बर' नाम से प्रकाशित ग्रन्थ की भूमिका में उन्होंने लिखा है :

> यह विशेष महत्त्व की बात है कि वे भारतीय राजकुमारों के सामान्य व्यसनों पोलो, शिकार और उच्चवर्गीय मनोरंजनों के बजाय, इतिहास के इस संकट-काल में स्वाध्याय के प्रति, विशेषकर श्री अरविन्द के राजनैतिक विचारों के विश्लेषण-विवेचन के प्रति इस प्रकार समर्पित हों।

किशोरावस्था से ही युवक कर्णसिंह के मानस में पण्डित नेहरू के प्रति अगाध श्रद्धा का भाव रहा है। जब १९५२ में कश्मीर में शेख अब्दुल्ला के मुख्य मंत्रित्व में प्रथम उत्तरदायी सरकार की स्थापना हुई, तो अपने पिताश्री के विरोध और नाराजगी के बावजूद केवल पण्डितजी के आदेश के प्रति समर्पित भाव के कारण २१ वर्ष की आयु में उन्होंने सदरे-रियासत बनना स्वीकार कर लिया और तेरह वर्ष तक वे पूर्ण निष्ठा से इस उत्तरदायित्व को निभाते रहे। प्रारम्भ से ही उन्हें सामंती आडंबर और भोगविलासपूर्ण जीवन से वितृष्णा रही है। बातों-बातों में एक दिन उन्होंने बतलाया कि महलों में तो मेरा दम घुटता है, छोटा कुटियानुमा निवास मुझे अधिक आह्लादित करता है। सम्भवतः इसीलिए अपने जम्मू-स्थित अमर-महल को संग्रहालय और पुस्तकालय के रूप में सन् १९०५ में प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के हाथों राष्ट्र को समर्पित कर दिया। लोक-सभा में देशी नरेशों के विशेषाधिकार और प्रिवी पर्स समाप्त करने का प्रस्ताव आया, तो आपने ही सर्वप्रथम स्वेच्छया अपनी प्रिवी पर्स (राजसत्ता) समर्पित कर दी और अपनी संपत्ति के अधिकांश भाग को अपने माता-पिता की पुण्य-स्मृति में न्यास का रूप दे दिया। जिसके अन्तर्गत दातव्य नेत्र-चिकित्सालय, संस्थानों तथा सुयोग्य व्यक्तियों को समुचित आर्थिक सहायता की व्यवस्था है।

यद्यपि धार्मिक, राजनैतिक, शैक्षणिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

डा० कर्णसिंह ने कीर्तिमान स्थापित किये हैं, पर विश्व में राष्ट्रभाषा हिन्दी की प्रतिष्ठा उनका युगांतरकारी कार्य कहा जायगा। विश्व हिन्दी सम्मेलन, नागपुर १९७५ और मोरिशस १९७६ के मूल प्रेरक वही रहे हैं। मोरिशस विश्व हिन्दी सम्मेलन में उनका अध्यक्षीय भाषण एक ऐतिहासिक दस्तावेज बन गया है। इस सांस्कृतिक अनुष्ठान को स्थायित्व प्रदान करने के लिए विश्व की तीसरी भाषा के रूप में हिन्दी का विकास, प्रचार-प्रसार तथा विश्व के अन्य देशों से आदान-प्रदान के उद्देश्य से आपने विश्व हिन्दी प्रतिष्ठान की स्थापना की है और उसके मुख-पत्र के रूप में 'विश्व हिन्दी-दर्शन' नामक त्रैमासिक अंतर्राष्ट्रीय पत्र का प्रकाशन भी प्रारम्भ कराया है, जिसके सलाहकार-मण्डल में रूस, अमेरिका, कनाडा, फ्रांस, ब्रिटेन, पोलैण्ड, चेकोस्लोवाकिया, हंगरी, इटली, पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी, जापान, थाईलैंड, मोरिशस, फिजी, गुयाना, सूरिनाम, ट्रिनिडाड, बर्मा, सिंगापुर, मलयेशिया, इण्डोनेशिया, अफगानिस्तान, हांगकांग, कीनिया, जांबिया, स्विट्जरलैण्ड, रूमानिया, स्वीडन, नीदरलैण्ड, डेनमार्क और आस्ट्रेलिया के प्रबुद्ध हिन्दी-प्रेमी हैं। प्रथम दो-तीन अंकों में ही इस पत्रिका ने विदेशों में लोकप्रियता प्राप्त कर ली है और निकट भविष्य में ही विश्व के अन्य राष्ट्रों का प्रतिनिधित्व इसमें सुलभ होने की आशा है।

डा० कर्णसिंह के नवोन्मेषी व्यक्तित्व के कारण शुक्रवार २७ अगस्त, १९७६ को भारतीय प्रतिनिधियों की मोरिशस-यात्रा अविस्मरणीय बन गई थी। एअर इण्डिया का यान जब विश्व हिन्दी सम्मेलन की सांस्कृतिक यात्रा का लगभग आधा मार्ग पार कर चुका था और प्रतिनिधि-गण राष्ट्रभाषा के इस आस्थापूर्ण संचरण से समुल्लसित हो रहे थे तो अचानक डा० साहब को कवि-सम्मेलन करने की सूझी। संयोजन-हेतु उनका आदेश प्राप्त कर जैसे ही मैं काकपिट में पहुंचा और चालक लाउडस्पीकर से इसकी घोषणा की कि समस्त यान करतल-ध्वनि से गूंज उठा। कवि-सम्मेलन श्रीमती कमलारत्नम द्वारा संस्कृत में मंगलाचरण से प्रारम्भ हुआ और सुश्री रमासिंह, बशीर अहमद मयूख, बालकवि बैरागी, विनयदेव, डा० कर्णसिंह आदि की भावभीनी स्वरलहरियों से आकाशवाणी नाम सार्थक करता प्रतीत हुआ। अन्त में मेरी आभार की अभिव्यक्ति के साथ ही डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के मेघमंद्र अट्टहास ने सम्पूर्ण यान को मेघदूत का पर्याय बना डाला। ऐसा लगा जैसे राष्ट्र के मानस का अपनी भाषा से शापित बिछोह सदा के लिए समाप्त हो गया—मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः। अपनी मधुर मुस्कान, शालीन व्यवहार और अगाध आत्मीयता से डा० कर्णसिंह मोरिशस में ऐसे लोकप्रिय हो गए कि वे जिस ओर जाते, उनको देखने की ललक से लोग उसी ओर दौड़ पड़ते, जैसे उनके व्यक्तित्व में हिमालय की शुभ्रता और कश्मीर की कमनीयता प्रतिबिम्बित हो उठी हो।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अब तो दिल्ली-स्थित उनका निवास 'मानसरोवर' सांस्कृतिक तीर्थ-सा बनता जा रहा है, जहां देश-विदेश के साहित्य, संगीत, कला और संस्कृति के आराधकों का आवागमन होता रहता है। मुख्य द्वार से प्रवेश करते ही तरण-ताल और बरामदे से बैठक तक पहुंचने में एक ओर दीवार पर चित्रावली और दूसरी ओर पाषाण और धातु की मूर्तियों को देखते हुए प्रत्येक अतिथि कुछ ऐसा अभिभूत हो जाता है जैसे वह किसी कला-वीथी में विहर रहा हो। अध्ययन-कक्ष के पार्श्व में संगीत-साधना के साज किसी गंधर्व-लोक का आभास देते प्रतीत होते हैं। इस समस्त वैभव के बीच डा० कर्णसिंह जिस अनासक्त-भाव से विचरते हैं—तेन-त्यक्तेन भुञ्जीथा:—उससे बरबस राजर्षि जनक की याद आ जाती है। यद्यपि उनकी ब्रह्मसभा और याज्ञवल्क्यपीठ की जानकारी मुझे नहीं है, पर दर्शन, साहित्य और संस्कृत के प्रति उनके अनन्य समर्पण को देखकर लगता है कि पुराणों में राजर्षियों का वर्णन मात्र कपोलकल्पित नहीं था। निश्चय ही इस सहज सात्त्विक परिवेश का रहस्य उनकी निश्छल मानवीयता में अंतर्निहित है। चण्डीदास की उक्ति—**सुनो हे मानुष भाई, सबार उपरे मानुष सत्य ताहार उपरे नाई**—उनपर पूर्णतया चरितार्थ होती है। डा० कर्णसिंह का व्यक्तित्व इसी मानुष-सत्य का जीवित आख्यान है। इसी अप्रतिहत साधना की शिला पर वे जीवन की प्रत्येक बाधा, विरोध और वैमनस्य को तुच्छ करते रहते हैं। जीवन की अर्धशताब्दी की मंगलमय समाप्ति के इस पुण्य प्रहर में हम अगले शताब्दी-महोत्सव की प्रतीक्षा में उनके यशस्वी और ज्योतिर्मय जीवन का अभिनन्दन करते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

□ श्रीमती पद्मा सचदेव

हमारे युवराज : आपके डा० कर्णसिंह

डा० कर्णसिंह जी की पहली स्मृति बड़ी धूमिल-सी है। बरसों पहले की बात है, कश्मीर की एक ठंडी सलेटी रंग की सुबह थी। मटियाले रंग के बादल आसमान के मस्तक को छूते देवदारों के गले लग-लगकर आगे बढ़ते जा रहे थे। मैं पिताजी की गोद में थी। उन्होंने चलते-चलते रुककर उंगली के इशारे से मुझे बताया था, "वो दूर पोलो-ग्राउंड में जो घोड़े पर चढ़ रहे हैं, उन्हें देख रही हो, वे हमारे युवराज हैं!" मैंने जो दृश्य देखा था आज भी याद है। तीन-चार आदमी थे, कुछ घोड़े थे, एक सुंदर-से लड़के को कोई घोड़े पर बिठा रहा था। बैठते ही सवार और घोड़ा दोनों उछलते-कूदते दरख्तों में विलीन हो गए थे। और उतनी ही तेजी के साथ चाकी के लोग भी घोड़ों पर बैठकर हवा हो गए थे। देखते-देखते उस सारे मंजर को ठंड से थोड़ा-थोड़ा कांपती, थोड़ा-थोड़ा सहमती सूरज की किरणों ने आकर बदल दिया था। और जिस जगह युवराज का घोड़ा खड़ा था, वह जगह हल्की-पीली रोशनी में उजागर हो उठी थी। हम घर की तरफ चल पड़े थे। मैं कितनी रोमांचित थी कि मैंने युवराज को देखा है। घर आने के बाद शाम को अपने सभी बालमित्रों को मैंने बताया था कि मैंने युवराज देखे। और सब बाल-सुलभ नजरें मुझमें युवराज की पड़ी परछाईं का उजाला विस्फारित होकर ढूंढ़ने लगी थीं।

फिर कितनी देर बाद औरतों को बातें करते सुना था कि युवराज की शादी हो गयी। पता नहीं, उनकी शादी के नाम से मुझे सड़क पर बहुत-से फौजी जाते हुए क्यों दिखाई देने लगे हैं। या तो यह युवराज को दहेज में मिली गोरखा-पलटन है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

या १९४७ के बाद पाकिस्तान द्वारा छोड़े गए जंगी कैदियों के जत्थे। पर इनका कोई न कोई संबंध युवराज से जरूर है। ये फौजी मुझे उसी सड़क पर दिखाई दे रहे हैं जहां पंजतीथी मुहल्ले में राजाओं का मंदिर है। यहां उनके कुलदेवता हैं। यहां पर शादी के बाद युवराज अपनी नववधू को लेकर मत्था टेकने आए थे। कभी-कभी उसी सड़क से होकर राजा की मंडी, यानी पुराने महलों में भी जाया करते थे। मुझे याद है हम कितनी-कितनी देर बरामदे में खड़े रहते थे। राह तकते थे। और जब शूं-ऊं-ऊं-ऊं करते युवराज की कार निकल जाती, तब न युवराज दिखाई देते न युवरानी सिर्फ जल्दी से गुजरता कार का एक हवाई हिस्सा ही दिखता। तो, भी कितना अच्छा लगता। और लोगों को नहीं जानती, पर जिन लोगों में मेरा बचपन बीता है वे सब युवराज को बहुत प्यार करते थे।

महलों में जो स्त्रियां जाती थीं वे खबरें लातीं कि कितनी सुंदर कितनी छोटी-सी युवरानी है, कितनी नम्र, सरल और मृदुभाषिणी। हाथ लगाने से मैली होती है। मोटी-मोटी आंखें ऊपर उठाती है तो नजर नहीं ठहरती। फिर युवरानी के सितार सीखने, परीक्षाएं पास करने, गाना सीखने की खबरें मिलीं। शादी के बाद युवरानी ने डोगरी बोलनी भी सीखी और हर तरह से अपने-आपको युवराज की जिंदगी में ढालना भी। डा० साहब अपनी दुल्हिन को खूब सुशिक्षित करना चाहते थे। और परदे में रहने वाली डोगरी औरतों को इस बात का कितना ही अचंभा होता! पर डा० साहब की सभी बातें अचंभे की ही होती। जब आप जम्मू-कश्मीर यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर थे, तब हफ्ते-पंद्रह दिन में कभी एक बार पोलीटिकल साइंस की क्लास लिया करते थे। उन दिनों राजाओं का भूत जनता के सिर से पूरी तरह कहां उतरा था। लोग अचंभे में आकर कहते कि राजाओं के घर में यह विद्वान पंडित पैदा हुआ है।

मैंने सुना है, डा०साहब महाराजा हरिसिंह जी से बहुत डरते थे। बचपन में खेलते-खेलते पांव में मोच आ गयी थी। डर के मारे बापूजी को नहीं बताया, न किसीको बताने दिया और फिर पांव इतना खराब हो गया कि आपरेशन करवाना पड़ा। लेकिन अपनी जिंदगी में जो भी महत्त्वपूर्ण उन्होंने करना चाहा वह किया, जैसे जम्मू-कश्मीर का सदरे-रियासत होना। हो सकता है युवरानी का पर्दे से बाहर आकर जनता में घुलने-मिलने का प्रयास भी परदे में रहकर जिंदगी बिताने वाली घर की स्त्रियों ने न सराहा हो, परन्तु डा० साहब के आगे कोई बोलता न था। महाराजा हरिसिंह जी के लिए युवरानी बेटी भी थीं और बहू भी। किस्से ये भी प्रचलित हैं कि जब डा० साहब बंबई में बापूजी को मिलने आते थे तो उनके कमरे में युवरानी पहले जाकर पांव छूतीं, फिर युवराज। और जब भी युवराज बापूजी से मिलने आते, कोई-न-कोई नया, गीत नया राग सीखकर। हमारे महाराजा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साहब बड़े कलाप्रेमी थे। उनके समय में सब बड़े-बड़े गायक दरबार में नौकरी करते थे—बड़े गुलाम अली खां जिन्होंने अपनी अमर आवाज में पहाड़ी धुनों में डोगरी गीत गाये; मलिका पुखराज, बेगम अख्तर और कितने ही अन्य। बेगम अख्तर साहिबा ने एक बार मुझे बताया था—डा० साहब छोटे-से थे। महाराजा साहब कहते थे, इनसे कुछ सीखो तो शरमाकर भाग जाया करते। पर उस माहौल में रहने से ही संगीत के साथ डा० साहब का लगाव बढ़ता चला गया। आपने आगरा के विलायत हुसेन खां साहब से भी संगीत सीखा। पर जम्मू के पं० उमादत्त जी से आप हमेशा विधिवत् सीखते रहे। पं० उमादत्त जी के ख्याति प्राप्त संतूरवादक सुपुत्र पं० शिवकुमार शर्मा जी ने यह भी बताया कि जब डाक्टर साहब सदरे-रियासत थे एक बार अमरनाथ की यात्रा पर गए। शिवजी व पंडित जी भी साथ गए। पहला पड़ाव चंदनवाड़ी था, दूसरा शेषनाग। वहीं पर रात को संगीत का प्रोग्राम हुआ। हारमोनियम, तबला सब संग था। शिव की स्तुति में हिमालय की गोद में शेषनाग की छांव तले का यह संगीत सम्मेलन शायद पहला और अंतिम रहा होगा। डा० साहब तो डांडी में गए पर युवरानी पूरा रास्ता पैदल चढ़ीं। युवराज ने ऊपर गुफा में पहुंचकर कड़ाके की ठंड में बदन पर सिर्फ एक धोती जमाकर दो घंटे शिव की पूजा की। पूजा की उनकी वृत्ति बचपन से है। और यह उन्हें उनकी मां जी और हमारी महारानी जी से मिली है। मां जी के वह बड़े भक्त रहे हैं। जम्मू में अमर महल में ऊपर महारानी जी का कमरा ज्यों का त्यों है। एकतारा बजाते हुए उनकी तस्वीर, उनका पलंग, उनके गहने उस कमरे में सजे हैं। डा० साहब बताते हैं, 'ये मां जी पैरों में पहनती थी। मेरी बचपन की यह तस्वीर हमेशा सामने रहती थी।' अपनी मां जी से उन्होंने डोगरी लोकगीतों का खजाना भी प्राप्त किया है। डा० साहब के स्वरचित डोगरी भजन-पूजा में घर के सभी सदस्य गाया करते हैं। गाने का और वह भी डोगरी गीत गाने का डा० साहब को बड़ा ही शौक है। जब कभी मैं सुनती हूं कैसे डा० साहब ने अपने घर में रात्रि भोज के बाद डोगरी के गीत सुनाये तो गर्व से सर ऊंचा हो जाता है। हमारी भाषा कितनी खुशकिस्मत है जिसे वहां के भूतपूर्व महाराजा का संरक्षण प्राप्त है! डा० साहब मंच से भी कई बार डोगरी कवियों के साथ कविताएं पढ़ चुके हैं। महाकवि दिनकर जी को जब मैंने अपनी भाषा का परिचय करवाया था तब उन्होंने कहा था, 'तुम्हारी भाषा धन्य है जिसमें वहां के राजा ने भी कविताएं लिखी हैं।'

जब डा० साहब जम्मू में थे तब बैसाखी के दिन हर बरस अमर महल में कवि सम्मेलन हुआ करता था। शहर के गण्यमान्य व्यक्ति भी इस मौके पर बुलाये जाते थे। घंटों कवि सम्मेलन होता था। देर हो जाती तो भोजन का प्रबंध भी वहीं रहता। नीचे के हाल में बसोहली के नायाब चित्र। महाराजा साहब व महारानी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जी के डोगरी परिधानों में कद्देआदम चित्र। वहां बैठने से यूं लगा करता जैसे किसी पुराने युग में लौट गए हों। अब वह महल, सभी चित्र, कितनी ही किताबें, कितने ही नायाब अलबम, मां जी का कमरा, सिंहासन और उससे जुड़ी हुई कितनी ही चीजें डा० साहब ने ट्रस्ट को सौंप दी हैं।

डोगरी भाषा के जवान होने पर डा० साहब ने उसे कदम-कदम पर सहयोग दिया। संसद में डोगरी भाषा को सरकारी तौर पर मान्यता देने का उनका प्रस्ताव व यत्न सर्वविदित है। डोगरी भाषा की संस्थाओं व सांस्कृतिक गतिविधियों से आप हमेशा अवगत रहते हैं। दिल्ली जाने पर सबके बारे में पूछते हैं। मुझे याद है, एक बार उनके घर में दोपहर का खाना था। उसके बाद बम्बई के समाचार पूछते रहे—शिव जी कहां हैं? बेदराही क्या कर रहे हैं? मैंने कहा, 'उन्होंने अभी 'दरार' फिल्म बनाई है,' तब हंसकर बोले, 'मैंने फिल्म देखी है। पति-पत्नी की लड़ाई पर फिल्म बनाने की क्या जरूरत थी। दाल में पानी ज्यादा हो जाये तो पति-पत्नी की लड़ाई हो जाती है।' और फिर वे मुस्कराती हुई महारानी को देखकर ठहाका लगाकर हंस पड़े।

एक बार जम्मू में कवि सम्मेलन था। सब बैठे हुए थे। डा० साहब हमेशा हवा के खुशबूदार झोंके की तरह आते हैं। और जैसे हवा सबको एकसाथ छूती हो वैसे ही डा० साहब की नजरें भी हर चीज को झट से देख लेती हैं। मंच पर मैं भी थी। कहने लगे, 'अच्छा, तुस वी आई दियां,' ओ, करो शुरू,' यानी आप भी आई हैं। शुरू करिये। कवि सम्मेलन शुरू हुआ। मेरी बारी आई तो किसीने फरमाइश की, 'राजा के महल' कविता सुनाइये।' यह कविता मैंने राजशाही के खिलाफ लिखी है। मैं जड़ होकर बैठी रही, मुझे चुप देखकर उन्होंने कहा, 'हां-हां, सुनाइये।' मैंने कभी यह कविता उनके सामने सुनाई नहीं थी। कुछ झिझकते हुए जब मैंने कविता पढ़ी तो श्रोताओं में सबसे अधिक दाद देने वाले हमारे डा० साहब ही थे। राजा को तो लोग डर से भी चाहते रहे होंगे पर हमारे युवराज को लोगों ने मन से प्यार किया है। लोगों के साथ-साथ कदम-कदम पर चलने वाले हमारे युवराज मनीषी हैं, संत लगते हैं। सादा जिन्दगी बसर करते हैं। इसीलिए गांव से उठकर आये लोगों की बात, उनका दर्द समझने में उन्हें कोई समय नहीं लगता।

अपने प्रदेश के लोगों को प्रोत्साहन देने में हमेशा आगे रहते हैं। मुझे शिव जी ने बताया, सुरसिंगार संसद के डायरेक्टर श्री बृजनारायण जी को शिव जी का नाम हरिदास सम्मेलन में डा० साहब ने ही सुझाया था। फिर बृजनारायण जी ने बताया कि एक बार शबे गजल में डा० साहब को उन्होंने उद्घाटन के लिए बम्बई बुलाया था। रंग भवन में उस दिन बारिश रुकने का नाम ही न लेती थी। डा० साहब भीगते रहे और मंच पर डटे रहे। बाद में बृजनारायण जी से कहा,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'आपने इस प्रोग्राम में मुझे गाने के लिए क्यों नहीं बुलाया। मैं तो गाने वाला आदमी हूं।'

वृजनारायण जी ने ही बताया, 'मथुरा-वृन्दावन की स्वामी हरिदास समिति में डा० साहब को मुख्य अतिथि के रूप में बुलाया गया था। हस्बेमामूल जब वे समय पर आ गये तो देखा वहां कोई इन्तजाम न था। डा० साहब गाड़ी में आकर बैठ गये। चलने को हुए तो कार्यकर्त्ता दौड़े हुए आये और क्षमा मांगते हुए बोले, थोड़ी देर हो गई, चलिए अभी हुआ जाता है। डा० साहब गाड़ी से उतर गये और कार्यक्रम शुरू होने की प्रतीक्षा करते रहे।'

जम्मू में तो लोग डा० साहब के गुण बखान करते थकते नहीं पर बम्बई जैसी नगरी में भी डा० साहब के प्रशंसकों की कमी नहीं है। परन्तु जिसने भी महारानी यशोराज्यलक्ष्मी जी को देखा है वह अवश्य यह कहने पर मजबूर होगा कि आपमें बहुत गुण हैं। महारानी जी का जवाब नहीं। गुजराती गीत की यह पहली पंक्ति हमेशा मुझे याद आती है, 'पण रामजी तमें सीता ने तोले न आवो।' राम, तुम महान हो पर सीता के तोल में कम पड़ते हो।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

□ डा० श्यामनन्दन किशोर

व्यक्ति और मानस

ईश्वर जब किसी पर प्रसन्न होता है तब उसे सौंदर्य देता है; प्रसन्नता जब कुछ और अधिक बढ़ती है तब उसे ज्ञानी बनाता है; किंतु जब उससे भी उसकी प्रसन्नता को तोष नहीं होता, तो वह उसे धनवान भी बना देता है। सामान्यतः सरस्वती के लाड़ले लक्ष्मी के कृपा-पात्र नहीं होते, लेकिन कुछ दोनों के विशेष दुलारे होते हैं। भारतीय भाषाओं के प्रसिद्ध कवि, समीक्षक और अरविन्द-दर्शन के विशेषज्ञ और अध्ययनशील राजनेता डा० कर्णसिंह जी के संबंध में यह अपवाद कुछ अधिक सार्थक हुआ है। डा० साहब से मेरा परिचय दिल्ली की एक सांस्कृतिक गोष्ठी में हुआ था, जहां मैं उनके साहित्य-संबंधी व्यावहारिक दृष्टिकोण से प्रभावित हुआ था। उन्होंने मेरी कविताएं बहुत पसंद की थीं और तब से निकट से मैं उन्हें जानता रहा हूं। मंत्री होकर उन्होंने उस पद का गौरव बढ़ाया। मंत्री का अहं, उसकी औपचारिकताएं, उसके रोब, उसकी विवशताएं सब डा० साहब से दूर थीं। कभी मैंने उन्हें मलिन नहीं देखा चाहे वे लाख झंझटों में घिरे हुए हों। किसी भी साहित्यकार या कलाकार से प्यार से मिलते देखा, चाहे वे कितना ही व्यस्त हों।

जवाहरलाल नेहरू-फेलोशिप का काम करते हुए मैं उनके अधिक निकट आया, क्योंकि वे उसके ट्रस्ट के सचिव हैं और बड़ी निष्ठा तथा लगन से उसकी सेवा कर रहे हैं। किसी नेहरू-फेलो को कितनी सुविधाएं चाहिए, उसके प्रगति-पथ की बाधाओं को दूर करने में उनकी कितनी मदद चाहिए, फेलोशिप को पूरा करने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में बार-बार उनकी कितनी प्रेरणा चाहिए—इस सबका अद्‌भुत अन्दाज डाक्टर साहब को है। डा० सिंह एक ऐसे परिवार में जन्मे, जिसमें पैदा होने वाले राजा-महाराजा कहलाते रहे, लेकिन निर्धनों के लिए असीम ममता मैंने इनमें देखी है। जम्मू विश्वविद्यालय के भाषणों में जब कभी मैं गया, मैंने इनके पुरखों द्वारा बनाये गए मंदिरों को देखा है। इनके द्वारा संरक्षित डोगरी-इंस्टिच्यूट द्वारा प्रकाशित पुस्तकों का अध्ययन भी किया है। वहां की जनता में इनके नाम से जो उछाह पैदा होती है, वह इस बात का प्रमाण है कि सामान्य जन-समाज में इनकी कैसी पैठ है।

इनकी धर्मपत्नी पड़ोसी नेपाल के शाही परिवार की हैं। हिंदी में इनकी गति और पैठ गहरी है। अतः डाक्टर साहब के साथ ही हिंदी कवियों के प्रति उनका स्नेह बहुत अधिक है। संस्कृत श्लोक में जिन चार संपदाओं को पा लेने के बाद मनुष्य के पथ-विचलित हो जाने का संकेत दिया गया है, डाक्टर सिंह उससे परे हैं। वे रूपवान, गुणवान, धनवान और प्रभुतासंपन्न होकर भी एक आदर्श पति हैं। इनका पारिवारिक जीवन अत्यंत संतुलित, गरिमामय, अनुकरणीय एवं भारतीय आदर्शों से परिपूर्ण है। अपनी संतान से इन लोगों का लगाव ही अधिक नहीं है, उनके प्रति अपने दायित्वों का निर्वाह भी वे अच्छी तरह करते हैं। मुझे याद है—हम लोगों को एक बड़ी सभा में जाना था, लेकिन अपने वहां होने वाले रुझान को ठुकराकर वे नहीं गए, क्योंकि उन दिनों छुट्टियों में उनके बच्चे थोड़े दिनों के लिए घर लौटने वाले थे।

राष्ट्रभाषा हिंदी के विश्वव्यापी प्रचार-प्रसार और उन्नयन के लिए डाक्टर साहब ने ऐतिहासिक कार्य किये हैं। इसे विश्वव्यापी बनाने के लिए तरह-तरह के आयोजन किये हैं और एक अहिंदी-भाषी विद्वान होते हुए भी राष्ट्रभाषा हिंदी की अनुकरणीय सेवा की है—लिखकर, पढ़कर, बोलकर और पढ़ाकर, हिंदी-साहित्य और साहित्यकारों को उन्नति के शिखर पर चढ़ाकर। द्वितीय विश्व हिंदी-सम्मेलन में मोरिशस मैं भी गया था। श्रद्धेय डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी भी साथ थे। डाक्टर सिंह हमारे नेता थे। उन्होंने अपने मर्मस्पर्शी भाषणों के द्वारा मोरिशस के भारतीयों के हृदय पर अमिट छाप छोड़ दी—वहां सपत्नीक डाक्टर सिंह एक-एक प्रतिनिधि के सुख-दुःख का ध्यान एक सामान्य कार्यकर्त्ता के रूप में रखते थे। न वे प्रतिनिधि-मंडल के अध्यक्ष लगते थे, न अतुल वैभव के सम्राट् और न केंद्रीय मंत्री। एक सामान्य साहित्यकार की तरह वे प्रत्येक व्यक्ति को उसका उचित सम्मान दे रहे थे। कवि-सम्मेलन का वह भव्य दृश्य मुझे कभी नहीं भूलता। जब मैंने उनकी पसंद की कविता पढ़ी थी और उन्होंने तथा उनकी धर्मपत्नी ने विश्व हिंदी-सम्मेलन में उन्मुक्त भाव से उसकी प्रशंसा की थी। मेरे विशेष अनुरोध पर उन्होंने अपनी हिंदी कविता भी सुनायी, डोगरी में तो उन्होंने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कई कविताएं सुनायीं। उनकी कविताओं का बड़ा व्यापक प्रभाव विश्व हिंदी-सम्मेलन पर पड़ा था। मुझसे डाक्टर साहब प्रायः कहते थे कि "कभी घर पर आओ, तो तुम्हें संगीत सुनाऊं।" जमकर बैठने का कोई अवसर नहीं मिल पाया था, लेकिन मोरिशस की एक सुबह हजारों श्रोताओं को आश्चर्य में डालने वाली थी, जब अपने आध्यात्मिक, ओजस्वी भाषण के बाद डाक्टर सिंह ने मित्रों के अनुरोध पर राम, कृष्ण, शिव आदि अनेक देवी-देवताओं से संबद्ध स्वरचित पद बड़ी ही प्रभावशाली स्वरलहरी में सुनाये। शास्त्रीय संगीत पर आधारित उनकी पदावली सुनकर सभी झूम उठे। संस्कृत में इनका धाराप्रवाह मौखिक भाषण सुनकर मैं एक बार आश्चर्यचकित हुआ था। यह मेरे आश्चर्य का दूसरा समय था।

डा० सिंह का शोध-प्रबंध अरविंद की अंतश्चेतना के स्पंदन की पकड़ रखता है। महर्षि को जिस दृष्टिकोण से इन्होंने देखा है, वह अपने-आपमें पूर्ण है। यद्यपि यह शोध-प्रबंध उपाधि के लिए लिखा गया है, तथापि उसमें उसकी सीमाएं परिलक्षित नहीं होतीं। डाक्टर सिंह के संस्मरण बड़े जीवंत हैं और उनके यात्रा-वृत्त हर पल, हर क्षण को उजागर कर भौगोलिक, प्राकृतिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक ज्ञान देने वाले हैं। उन्होंने दीक्षांत-समारोहों में जो भाषण दिये हैं, वे शिक्षा की तात्त्विक दृष्टियों के परिचायक हैं और उनमें प्राच्य एवं पाश्चात्य दृष्टिकोणों का समन्वय है। डोगरी, हिंदी और अंग्रेजी में रचित इनकी कविताएं पुरुष और प्रकृति को एक रूप देने वाली हैं तथा उनमें मानव की गहन चेतना को पकड़ने की शक्ति है। कश्मीर की घाटियों का यह राजकुमार प्रकृति के चित्रण में एक चित्रकार से भी ज्यादा सजग है। शब्दों ने तूलिका की जगह ले ली है।

जब वे स्वास्थ्य-मंत्री थे, तब मैं अक्सर यह उलाहना देता था कि आपको शिक्षा-मंत्री होना चाहिए। जब वे भारत के शिक्षा-मंत्री हुए, तब दिल्ली में गले मिलते हुए बोले, "देखो किशोर, तुम्हारी बात मुझे याद थी और वह मैंने मान ली।" निरभिमान डाक्टर साहब का बच्चों जैसा यह स्वभाव मन को छू लेता है। जब कभी मिले, पढ़ने-लिखने की चर्चा होती रही। समय के पाबंद डाक्टर साहब वचन के भी पाबंद हैं। जो कहते हैं वही करते हैं। सिद्धांत के पक्के हैं और मित्रों को कभी भूलते नहीं हैं। डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी कहा करते थे कि डाक्टर कर्णसिंह जैसे लोग ही हिंदी को सही दिशा में ले जा सकते हैं।

डाक्टर साहब की आस्तिकता मुझे भाती है। एक छोटा-सा संस्मरण याद आता है। मंगलवार का दिन था और मैं दिल्ली में था। ऐसे भी दिल्ली जाने पर हनुमान-मंदिर जाता हूं। उस दिन भी गया तो अपार भीड़ देखकर समय का अभाव और खटकने लगा। टैक्सी रोककर मैं लंबी कतार छोड़कर किसी शॉर्टकट की तलाश में था कि मेरी नजर कतार में खड़े टोपी वाले लंबे डाक्टर सिंह पर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पड़ी। उस समय भी वे केंद्रीय मंत्री थे। मैं दूर तक उन्हें देखने लगा कि वे आंखें मूंदे आहिस्ता-आहिस्ता क्यू में लगे बढ़ रहे हैं और पसीने से तरबतर हैं। मैं ऐसे अनेक मंत्रियों को जानता हूं जो ऐसे स्थानों पर भी अपने प्रभाव से प्राथमिकता पा लेते हैं। मुझे अपनी भूल का अहसास हुआ और मैं भी टैक्सी छोड़कर बहुत पीछे कतार में खड़ा हो गया। डाक्टर साहब का यह रूप इस बात का प्रमाण है कि ईश्वर के प्रति उनकी आस्था आत्मीय है। वह बनावट या दिखावट की चीज नहीं, वह उनकी आत्मा का गुण है।

मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि भारतीय संस्कृति और साहित्य एवं चिंतन के क्षेत्र में अग्रदूत बनकर काम करने के लिए वे हमारे बीच तुलसीदास की आयु लेकर जीवित रहें। वे राजनेता होकर भी राजनीति से दूर हैं; धनवान होकर भी निर्धनों के निकट हैं और उनका अंतरंग-बहिरंग एक-समान सौम्य है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

□ श्री ओंकार लाल बोहरा

वे जिनकी कल तलाश होगी

१९६७ का हंगामी आम चुनाव। नई दिल्ली में चौथी लोकसभा सत्र का आरम्भ। भावी नेता यानी प्रधानमंत्री कौन होगा? पुराने और नये सभी सदस्यों के बीच गरमागरम गतिविधियों, कानाफूंसी, जोड़-तोड़ और दावतों का दौर। इस बार अपेक्षाकृत नये युवा चेहरे निर्वाचित होकर आये थे कि अचानक एक रात्रि भोज के दौरान मधुर आवाज आई, 'कहां से आये हैं?' सोचा, किसी अन्य सदस्य के लिए पूछ रहे हैं। निकट आये तो सहसा मैंने दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया, 'चित्तौड़गढ़, राजस्थान से।' 'वीर भूमि चित्तौड़ (मेवाड़) से? वह तो हमारा तीर्थ-स्थान है।' सौम्य, प्रियदर्शी, सरलमना डा० कर्णसिंह से यह मेरा पहला ही साक्षात्कार था।

स्व० प्रधानमंत्री पं० नेहरू के बाद देश की संपूर्ण राजनीति विशेषकर कांग्रेस संगठन में बड़े उतार-चढ़ाव शुरू होने लगे थे। प्रथम बार जब श्रीमती इंदिरा गांधी प्रधानमंत्री निर्वाचित हुई थीं सर्वत्र एक नया उत्साह, आकांक्षा और परिवर्तन का वातावरण बनने लगा। कई नये प्रगतिशील युवा चेहरे उनके नेतृत्व एवं मार्गदर्शन में बुनियादी परिवर्तन के सपने संजोने लगे थे। स्वयं इंदिरा जी भी देश में सर्वत्र व्याप्त जड़ता, कुण्ठा और यथास्थिति को बदलने और अवरुद्ध प्रवाह को गतिमान करने को कृतसंकल्प लगती थीं। फलतः चौथी लोकसभा के बाद सर्वसम्मति से नेता बनते ही श्रीमती इंदिरा गांधी के मंत्रिमण्डल में नये युवा चेहरे सामने आये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

डा० साहब को पर्यटन एवं नागरिक उड्डयन मंत्रालय का दायित्व सौंपा गया। प्राकृतिक और प्राचीन सांस्कृतिक संपदा से ओतप्रोत कश्मीर के गौरवशाली प्रतिनिधि को देश के पर्यटन विकास का अवसर मिले। स्वाभाविक ही था कि मैं राजस्थान जैसे ऐतिहासिक प्रांत का प्रतिनिधि होने के नाते पर्यटन-संबंधी कई समस्याओं को लेकर निकट संपर्क में आता।

त्याग एवं बलिदान के शानदार अतीत एवं ऐतिहासिक गौरव के अलावा राजस्थान के किले, भव्य राजप्रासाद, धार्मिक एवं ऐतिहासिक तीर्थ, झीलें, सरोवर, अभयारण्य, प्राचीन शिलालेख, कलात्मक मंदिर, रंगीले त्यौहार—क्या नहीं है राजस्थान में जो राष्ट्रीय गौरव के प्रतीक न हों!

पर्यटन मंत्रालय की सलाहकार समिति में बजट के अनुदान लेखों में निरंतर सक्रिय और गतिशील सदस्य के रूप में संपर्क ही बढ़ता रहा। यों हम एक-दूसरे के विचारों और भावनाओं से प्रभावित होते रहे।

कला, संगीत एवं भारतीय वाङ्मय के मर्मज्ञ, प्रगतिशील चिंतक, मिलनसार, निरभिमानी व्यक्तित्व, मधुर वाणी और व्यवहार के धनी डा० साहब के जो भी संपर्क में आया इनका होता चला गया।

राजा वहां संसद में और भी थे और बाहर भी हैं। देववाणी संस्कृत साहित्य एवं प्रकृति की सुरम्य गोद में पले डा० साहब विशिष्ट होते हुए भी यह आभास नहीं होने देते कि वे विशिष्ट हैं। साधारण से साधारण सदस्यों में घुल-मिलकर हंसना, बातचीत करना, साथियों को संबोधित कर बातें करना इन्हीं सब मानवीय गुणों से मुझे निरंतर लगता रहा कि देश को ऐसे व्यक्तित्व की आगे चलकर बड़ी उपयोगिता और तलाश रहेगी। जब तक चौथी लोकसभा के कार्यालय में रहे संसद में मेरा हिंदी में ही धारा-प्रवाह बोलने का मोह, साहित्य एवं सांस्कृतिक विषयों में दिलचस्पी, अपनी राष्ट्रीय संस्कृति के शाश्वत मूल्यों के प्रति आस्था आदि समान विचारों के कारण मुझे डा० साहब के विश्वासपात्र और स्नेहभाजन होने का सौभाग्य मिला।

सन् ४०-४१ में अपने विद्यार्थी जीवन से ही मेवाड़ प्रजामण्डल के संस्थापक श्री माणिक्यलाल जी वर्मा एवं अन्य वरिष्ठ साथियों के संपर्क में आते ही मुझपर राष्ट्रीय आन्दोलन का रंग चढ़ता गया। तभी खादी परिवेश में दीक्षा की शुरुआत की। अगस्त ४२ के आंदोलन में सक्रिय योग, बाद में साम्यवादी विचारधारा एवं आंदोलन से निकट संपर्क, कुल मिलाकर पिछले ४० वर्षों के राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेता रहा हूं। कई षड्यंत्रों और ईर्ष्या-द्वेष से मुझे ७१ के मध्यावधि चुनाव में टिकट से वंचित होना पड़ा। डा० साहब ने यथाशक्ति प्रयास किया कि मुझे सबकी भांति पुनः अवसर दिया जाये। पर दुर्भाग्य से मेरे सक्रिय राजनीतिक जीवन की योजनापूर्वक हत्या की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गई। डा० साहब को सचमुच ही उस समय बड़ी पीड़ा हुई।

तब से लेकर आज तक उनके सौम्य व्यक्तित्व के प्रति मेरी निष्ठा और सम्मान में और उनकी मेरे प्रति ममता में कहीं अंतर नहीं आया। यही कारण है कि मैं उन्हें आग्रहपूर्वक उदयपुर खींच लाया। राजस्थान विद्यापीठ (उदयपुर) देश की विशेषकर राजस्थान की ऐसी गतिशील रचनात्मक संस्था है जो पं० जनार्दनराय नागर द्वारा राष्ट्रीय शिक्षण, समाज कल्याण और नागरिक जागरण के लिए स्थापित आज एक जीवंत विश्वविद्यालय है। कार्यकर्ताओं द्वारा संचालित यह संस्था प्रायः पिछले ४० वर्षों से पिछड़े हुए मेवाड़ के गांव में समाज शिक्षा और जन शिक्षण का अभूतपूर्व शोध और प्रयोग करते हुए अनेकों प्रबुद्ध कार्यकर्ताओं का निर्माण करने में सफल रही है। स्व० श्रीमन्नारायण अग्रवाल के निधन के पश्चात् कुलपति कौन हो? संचालकों के सामने प्रश्न उठा। उदयपुर वैसे भी डा० मोहन सिंहजी मेहता, डा० कालूलाल जी श्रीमाली, डा० दौलत सिंह जी कोठारी जैसे ख्याति प्राप्त शिक्षाशास्त्रियों की जननी है। वहां डा० साहब जैसे धुरंधर प्रज्ञा पुरुष, कला, संगीत, साहित्य के मर्मज्ञ, भारतीय संस्कृति के प्रतीक कुलपति के रूप में विद्यापीठ को प्राप्त हो जाएं। पत्र द्वारा निवेदन किया और यह डा० साहब का मेरे प्रति अगाध विश्वास व प्रेम ही समझता हूं कि उन्हें स्वीकृति देने में कोई संकोच नहीं हुआ और उक्त त्रिवेणी के साथ वे उदयपुर की गौरव वृद्धि में संयुक्त हो गये। कुलपति अभिषेक समारोह के अवसर पर पूरा प्रबुद्ध उदयपुर डा० साहब की वाणी और व्यक्तित्व से अभिभूत हुआ और लगा कि ये पुण्य भूमि मेवाड़ के अपने हैं और संस्था के माध्यम से पुनः वीर भूमि राजस्थान में संयुक्त हो गये हैं। जोबनेर (जयपुर) से कभी आपके पूर्वज हिमालय (कश्मीर) पर झंडा फहराने निकले थे, पुनः अपनी पूर्वज भूमि को संभालने और सेवा करने पहुंच गये हैं।

डा० साहब का व्यक्तित्व किसी प्रांत, जाति या समाज से सीमित करके देखना बहुत बड़ी भूल होगी। चाहे मद्रास हो या कलकत्ता, बंबई हो या बनारस, दिल्ली हो या नागपुर सर्वत्र अपनी मौलिक चिंतन शैली, राष्ट्र-भाषा हिंदी के अनन्य सेवक एवं राष्ट्र-प्रेम से ओत-प्रोत धारा-प्रवाह ओजस्वी वाणी से लोगों का दिल जीत लेते हैं। वे राष्ट्रीय स्तर के बहुश्रुत विद्वान, राजनीतिज्ञों में भी अराजनीतिज्ञ, साहित्यिकों में साहित्यिक और महान, सांस्कृतिक-विरासत की गरिमा लिए प्रबुद्ध भारत के तपोपूत मानस-पुत्र हैं जो आज नहीं कल की भी धरोहर हैं।

आज तो देश का राजनीतिक वातावरण ओछी एवं कुटिल राजनीति से धूमिल हो रहा है। शाश्वत मूल्यों का मखौल हो रहा है। राष्ट्रीय स्तर पर नैतिक और चारित्रिक पतन के कारण आम लोगों में गहरी मायूसी है। अवांछनीय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तत्त्वों, पदलोलुपता एवं चरित्रहीन राजनीति के कारण सार्वजनिक जीवन अस्वस्थ होता गया है। अच्छे और बुरे की पहचान नहीं रह गई है। खोटे सिक्कों का चलन तेजी पर है।

इस अंधकार और निराशाजनक स्थिति में ऐसे कुछ चरित्र संपन्न देश-भक्त और दूरदर्शी व्यक्तित्व आज भी हमारे बीच में हैं जो भारतीय आत्मा की आवाज को पहचानतें हैं, समझते हैं। सत्ता की चमक-दमक से अलग रहकर कल के भारत की तस्वीर को संवारने की साधना में सक्रिय हैं। कहना नहीं होगा कि डा० साहब उनमें से एक हैं। ये राष्ट्र की अनुपम निधि हैं, आशा हैं।

उनके सक्रिय गतिशील जीवन के ५० वसंत पूर्ण हो रहे हैं। हार्दिक अभि-नंदन! वे शतायु हों और भारतीय अस्मिता के संरक्षण एवं मानवीय शाश्वत मूल्यों के पुनः स्थापना के पवित्र प्रयास में सफल हों इन्हीं मंगल कामनाओं के साथ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

□ प्रो० नीलांबर देव शर्मा

जैसा मैंने उन्हें देखा

दिसंबर १९५९ का एक दिन, ठंडा, परंतु खिली-खिली धूप के कारण ठंडक में थोड़ी-सी कमी हो गयी है, धरती मुस्कराती-सी प्रतीत हो रही है, और मुस्कराती धरती के समान ही एक मुस्कराता चेहरा, बड़ी-बड़ी आंखें, भरा-भरा शरीर, लंबा कद, चौड़े कंधे और गोरा रंग, अचकन और चूड़ीदार पाजामा पहने और सिर पर तरबूजी रंग की पगड़ी बांधे, रियासत जम्मू-कश्मीर के पहले और अंतिम सदरे-रियासत युवराज कर्णसिंह।

उस दिन माननीय कर्णसिंह साइंस कालेज के दौरे पर आये थे, और यहीं मेरी उनसे पहली बार भेंट हुई थी। मैं भी दूसरे अध्यापकों की भांति उनके स्वागत के लिए खड़ा था। मेरे पास पहुंचकर उन्होंने अपना हाथ आगे बढ़ाया। मैंने भी अपना हाथ आगे बढ़ाया, उन्होंने मेरा हाथ थामकर कहा—'हाउ डू यू डू ?' और मैंने उत्तर दिया—'फाइन, थैंक यू वेरी मच, सर' 'और तुम्हारा नाम ?' मैंने उन्हें अपना नाम बताया और कहा, 'मैं यहां अंग्रेजी पढ़ाता हूं।' 'ओह' उनके बोलने के ढंग से मुझे लगा जैसे वह मन ही मन कह रहे हों 'अच्छा ? लेकिन इससे पहले तो तुम्हें कभी नहीं देखा।'

बात ठीक ही थी। तब मैं नया-नया लीड्ज (इंगलैंड) से बी० ए० आनर्ज करके लौटा था, और जी० जी० एम० साइंस कालेज में अंग्रेजी का प्राध्यापक था, इससे पहले मैंने उनको दो-एक बार मीटिंगों में देखा था, परंतु इतने पास से कभी नहीं। एक बार फिर जैसे हम एक-दूसरे के लिए अजनबी बन गये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अक्तूबर १९६१ की दोपहर जम्मू में कल्चरल अकेडमी के दफ्तर का विधिवत् उद्घाटन करने के लिए डाक बंगले में एक समारोह का उद्घाटन युवराज कर्णसिंह जी को ही करना था, उस समय बख्शी गुलाम मुहम्मद कश्मीर के मुख्यमंत्री और श्री ए० जे० जैदी अकेडमी के सेक्रेटरी थे। कुछ समय पहले ही अकेडमी में मेरी नियुक्ति जम्मू के असिस्टैंट सेक्रेटरी के तौर पर हुई थी। वहां पर ही मैं उनसे दूसरी बार मिला था, उन्होंने मुझसे पूछा, 'क्या कालेज छोड़ दिया है ?' 'जी, मेरी तबदीली यहां हो गयी है।' फिर उन्होंने जम्मू में कला और साहित्य के बारे में क्या किया जाना चाहिए इस बारे में कुछ अपने विचार बताये, जो मेरे लिए आदेश समान थे।

१९६३ में मैं तीसरी बार उनसे जम्मू में उनके सरकारी दफ्तर रणबीर महल में मिला, एक ढंग से यही हमारी पहली भेंट थी, क्योंकि उन्होंने बाकी सभी मिलने वालों से फारिग होकर मुझे बुलाया। बातचीत कल्चरल अकेडमी की जम्मू प्रांत में गतिविधियों से शुरू हुई और फिर जम्मू, उसके इतिहास, उसकी कला और संस्कृति के बारे में उन्होंने मुझे बहुत कुछ बताया। संगीत और विशेषतया पहाड़ी लोक-संगीत के बारे में उनकी रुचि और जानकारी से मैं बहुत प्रभावित हुआ। उन्हीं दिनों उनकी एक पुस्तक 'शेडो एंड सन लाइट' नाम से छपी थी जिसमें उन्होंने मुख्यतया जम्मू के लोक-गीतों का अंग्रेजी में अनुवाद किया था। मुझे लगा कि हमारे सोचने का ढंग बहुत कुछ मिलता-जुलता है। यह बात शायद उन्होंने भी अनुभव की हो, क्योंकि इस भेंट के बाद जब भी उनसे मिलने गया, वह खुलकर मुझसे बातें करते और अपने विचार प्रकट करते।

मैं डा० कर्णसिंह जी के बारे में आपको यह नहीं कहना चाहता कि वह विद्वान व्यक्ति हैं, उन्होंने पोलिटिकल साइंस में दिल्ली विश्वविद्यालय से एम० ए० की डिग्री प्रथम श्रेणी में प्रथम रहकर प्राप्त की, और उन्होंने नया कीर्तिमान स्थापित किया और बाद में उन्होंने अरविंद पर अनुसंधान करके पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। मैं आपको इस बारे में भी जानकारी नहीं देना चाहता कि वह अंग्रेजी, हिंदी और डोगरी के एक प्रसिद्ध लेखक हैं और अब तक उनकी कई पुस्तकें छप भी चुकी हैं। मैं यह भी नहीं कहना चाहता कि उनकी जिह्वा में सरस्वती का वास है, और जब वह अंग्रेजी, हिंदी, डोगरी अथवा संस्कृत में भाषण करते हैं तो सुनने वाले मुग्ध हो जाते हैं।

डा० कर्णसिंह जम्मू-कश्मीर रियासत के महाराजा रह चुके हैं। लेकिन मेरे मन में उनके लिए इसलिए आदर है कि वह महाराजा होते हुए भी दूसरों से बड़ी शिष्टता और हमदर्दी से पेश आते थे। मैंने उनको न कभी महाराजा कहा और न ही अनुभव किया कि मैं एक महाराजा से बातें कर रहा हूं। मुझे तो वह बहुत ही सहृदय लगे जो झट से दूसरों के दुख से द्रवित हो जाते हैं और हर दुखी और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जरूरतमंद की सहायता करना चाहते हैं और यथाशक्ति करते भी हैं। यही भावना शायद उन्हें शाही महलों से बाहर निकालकर राजनीति के खुले और खतरनाक वातावरण में खींच लाई।

मेरी नजर में डा० कर्णसिंह जी न ही देवता हैं और न ही वह अपने-आपको ऐसा समझते हैं। मेरे मन में उनके लिए इसीलिए आदर है कि वह अपने-आपको मनुष्य मानते हुए मानवी परिस्थितियों, बाधाओं और कठिनाइयों से ऊपर उठने का हर समय प्रयास करते रहते हैं। त्रुटियां उनमें भी हो सकती हैं और गलतियां वह भी करते हैं, पर वह उन त्रुटियों पर काबू पा लेने में सफल हो जाते हैं और यदि वह कभी कोई गलती करते हैं तो उसको दोहराते नहीं, यह गलती न करने के प्रयत्न ही उन्हें एक असाधारण व्यक्ति बनाने में सहायक सिद्ध हुए हैं।

डा० कर्णसिंह जी में एक बहुत ही प्यारी मासूमियत और भोलापन है। भोलापन शायद उनमें इसलिए है क्योंकि वह भोलानाथ शिव जी के भक्त हैं। उनमें बच्चों की-सी जिज्ञासा और दूसरों पर, यहां तक कि अपने शत्रुओं पर सहज ही विश्वास करने की प्रवृत्ति है। यह उनमें एक कमजोरी भी कही जा सकती है। परंतु जिज्ञासा के बिना वह सब ज्ञान न प्राप्त कर सकते जो उन्होंने इन वर्षों में प्राप्त किया है और दूसरों पर विश्वास कर लेना कोई अवगुण नहीं, सद्‌गुण है। परंतु आज के नैतिक मूल्यों से रहित समाज और राजनीति में इस गुण की अवहेलना ही की जाती है। डा० साहब में एक स्पष्टवादिता है, जो उनके मन में है, वही उनकी वाणी में है। वह अपने असली भावों को छुपाने में विश्वास नहीं करते। यदि उन्हें कोई व्यक्ति या चीज पसंद नहीं, तो वह ऐसा कहने में हिचकिचाएंगे नहीं, और वह अच्छी चीजों और व्यक्तियों की मुक्तकंठ से प्रशंसा भी करते हैं। परंतु हमारे समाज में, जहां राजनीति एक प्रकार की कला बन गई है अपने असली भावों को दूसरों से छुपाने की,झूठ को सत्य की भांति बोलने की और सीधे-सादे व्यक्तियों को अनुमान लगाते रहने देने की कि वास्तव में हमारे मन में क्या है, वहां डा० कर्णसिंह जी जैसा व्यक्ति प्रायः घाटे में रहेगा। राजनीति तो डा० कर्णसिंह जी के लिए प्रश्न है, नैतिक मूल्यों का, अपने देशवासियों और राष्ट्र में आस्था और विश्वास का और उनकी ईमानदारी से सेवा करने का, बिना कोई आर्थिक लाभ उठाने के, इसलिए साधारण राजनीतिज्ञ यदि उनसे ईर्ष्या और द्वेष करता है, तो इसमें हैरान होने की कोई बात नहीं। डा० साहब के लिए राजनीति एक माध्यम है लोक-सेवा का, वह उनके लिए एक साधन है देश-सेवा और मानव के कल्याण का, परंतु राजनीति उनके लिए एकमात्र साध्य नहीं। बहुत-से राजनीतिज्ञों के लिए राजनीति पूरे समय से भी ज्यादा वाला पेशा है, परंतु डा० कर्णसिंह जी के लिए ऐसा नहीं कहा जा सकता, उनके लिए राजनीति का बहुत ज्यादा महत्त्व है, पर वह उनके लिए सभी कुछ नहीं। पत्नी और बच्चों का प्यार, धर्म में दृढ़

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विश्वास, संगीत और कला-साहित्य में तीव्र रुचि—इनको भी तो डा० कर्णसिंह जी अपने लिए कम महत्त्वपूर्ण नहीं मानते। परंतु हमारे और देश के हित में यह बात होगी कि डा० कर्णसिंह जी राजनीति में अधिक सक्रिय रहें और वह इसमें सफल भी रहें। डा० साहब जैसे गुणी व्यक्ति के लिए हरेक क्षेत्र में अवसर हैं। वह जहां भी जाएंगे, उनकी कदर होगी। बुद्धिजीवी उन्हें अपनी तरफ खींचना चाहेंगे, साहित्यकार अपनी तरफ, शिक्षाशास्त्री अपनी तरफ और धार्मिक प्रवृत्ति वाले तो यही चाहेंगे कि वह राजनीति को त्यागकर केवल धर्म प्रचार में लग जाएं। इसमें हर एक व्यक्ति अथवा वर्ग का थोड़ा-बहुत निहित स्वार्थ है। परंतु क्या राजनीति में पहले से अधिक सक्रिय न रहकर और बाकी क्षेत्रों में अधिक रुचि लेकर वह सचमुच अपने देश, राष्ट्र अथवा मानवता की पहले से ज्यादा सेवा कर सकते हैं? दूसरे चाहे कुछ भी कहें, मेरा विश्वास है कि उनके राजनीति में रहते हुए नैतिक और मानवीय मूल्यों का ह्रास कभी नहीं हो सकता। इसलिए जो भी उनका मित्र, शुभचिंतक अथवा अनुयायी है, उसको अपनी भावनाओं को पीछे धकेल कर, डा० साहब की सफलता के लिए प्रयत्न और प्रार्थना करनी चाहिए ताकि जिस जन-कल्याण के ध्येय को लेकर वह महलों के आराम को छोड़कर लोगों के बीच आये थे, वह ध्येय पूरा हो, और हमारा देश राजनीति के क्षेत्र में एक बार फिर नैतिक मूल्यों को बढ़ावा देकर प्रगति के पथ पर अग्रसर हो और मानव समाज में और राष्ट्रों के बीच अपना यथेष्ट स्थान प्राप्त करे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

□ श्री गुलाम नबी शैदा

डा० कर्णसिंह : मेरी नजर में

बहुत-से लीडर महज उन कलीदी ओहदों (उच्च पदों) की वदौलत, जिन पर वे फायज (नियुक्त) होते हैं, शोहरत पाते हैं और उन ओहदों से हटने के वाद उनका दूर-दूर तक कोई अता-पता नहीं मिलता। लेकिन कुछ रहनुमा ऐसे भी हैं जिनके चर्चे हर हाल में होते रहते हैं, चाहे वे सरकार में हों या सरकार से बाहर। लोग उनके बारे में ज्यादा से ज्यादा जानने की खोज में लगे रहते हैं। सयासी उफक (आकाश) पर कितने ही इंक्लाब क्यों न आएं उन रहनुमाओं की अफादियत (उपयोगिता) कभी खत्म नहीं होती, बल्कि नामसायद (प्रतिकूल) हालात में भी लोगों की नजरें उन पर लगी रहती हैं।

डा० कर्णसिंह मेरी नजर में फरिश्ता नहीं, न भगवान हैं बल्कि मैं उनको एक बासलाहियत (योग्य) साहेवे किरदार (अच्छे चरित्र वाला) और वेदाग लीडर समझता हूं। आप जम्मू-कश्मीर के सदर या मरकज (केंद्र) में ग्यारह वर्ष तक मिनिस्टर न रहे होते तव भी आपकी कद्रोकीमत (मान) वही होती जो आज है। क्योंकि डा० साहब में वे औसाफ (खूबियां) बदरजा अतम मौजूद हैं जिनकी आज-कल के सयासतदानों में फुक्दान (कमी) है। आपका शुमार सफा-अव्वल (पहली पंक्ति) के दानिश्वरों में होता है। आप कलमकार (लेखक) भी हैं और शायर भी। आप मौसीकी (संगीत) के शैदायी (शौकीन) भी हैं और चोटी के आलिम भी। आप फिलास्फर भी हैं और पुजारी भी। आप बेहद खूबसूरत भी हैं और पीकर-ए-सादगी (सादगी की मूर्ति) और शराफत भी।

GC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'युवराज' जो सब आज भी बुजुर्गों की जबान पर है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

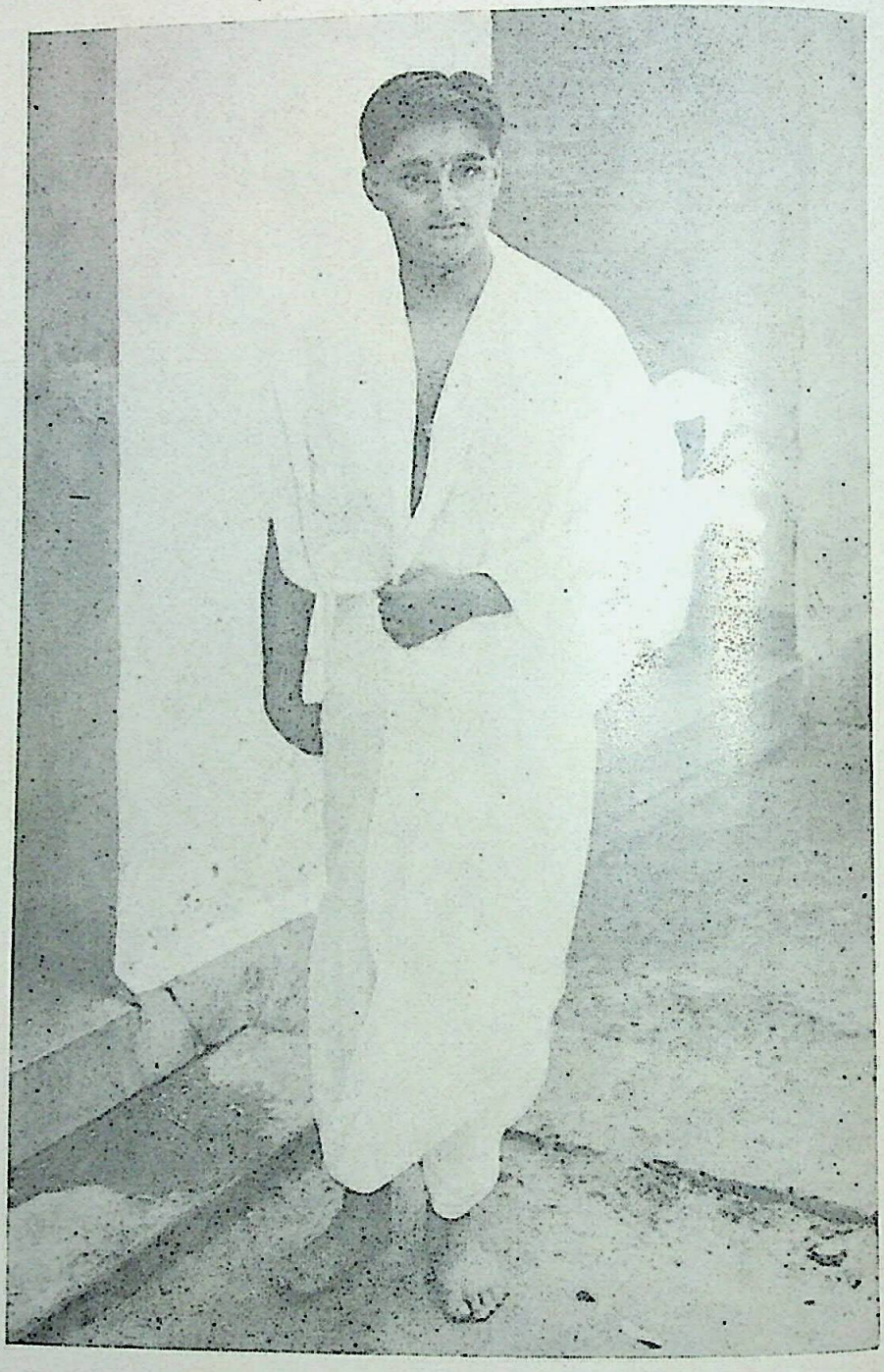

यज्ञोपवीत संस्कार के दिन युवराज

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

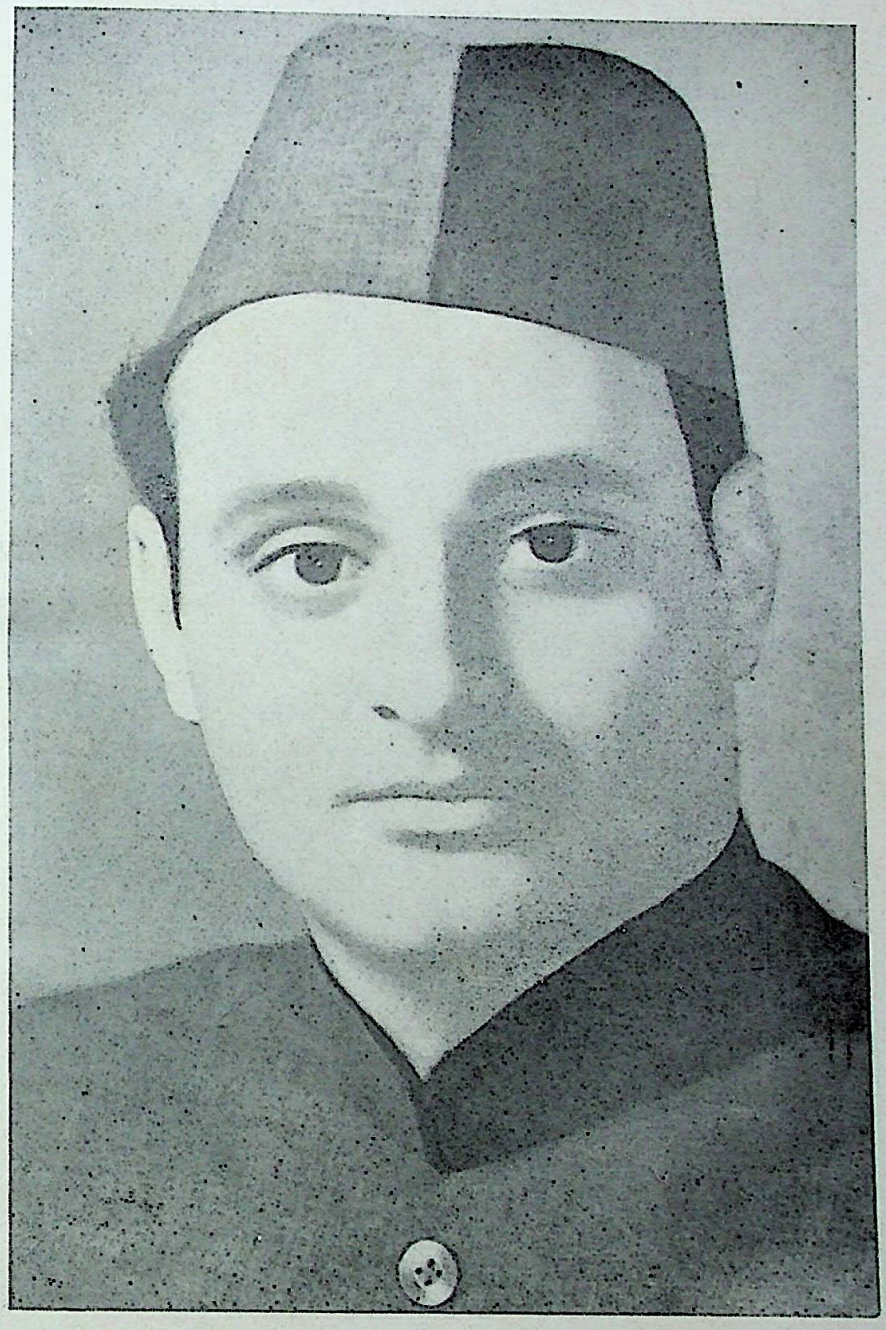

एक अबोध आकृति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

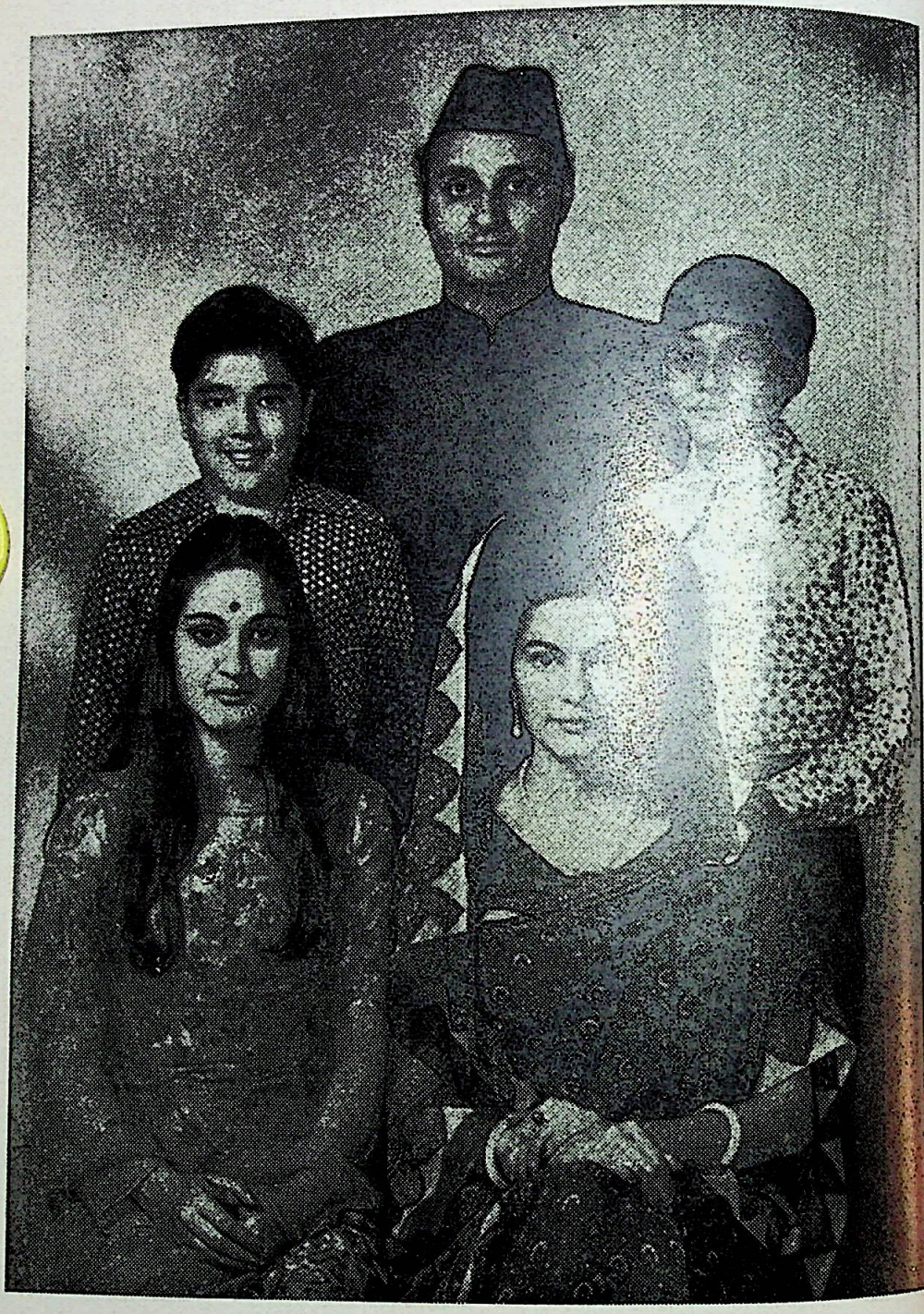

पारिवारिक परिवेश

श्रीमती यशोराज्यलक्ष्मी, सुपुत्री ज्योत्सना तथा सुपुत्र विक्रमादित्य और अजातशत्रु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

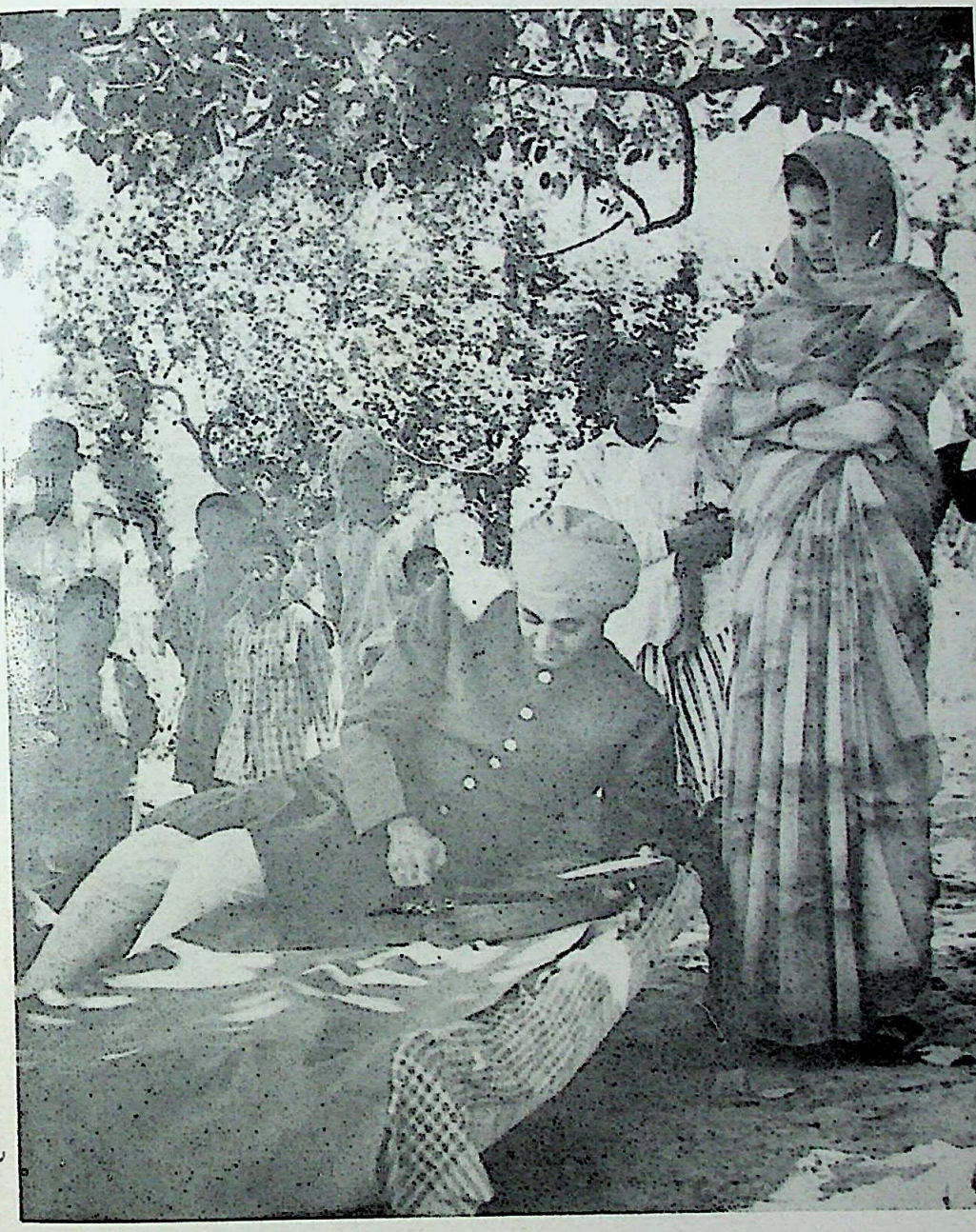

सदरे-रियासत और राज्यपाल के रूप में ग्रामीण क्षेत्रों का भ्रमण-मनन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

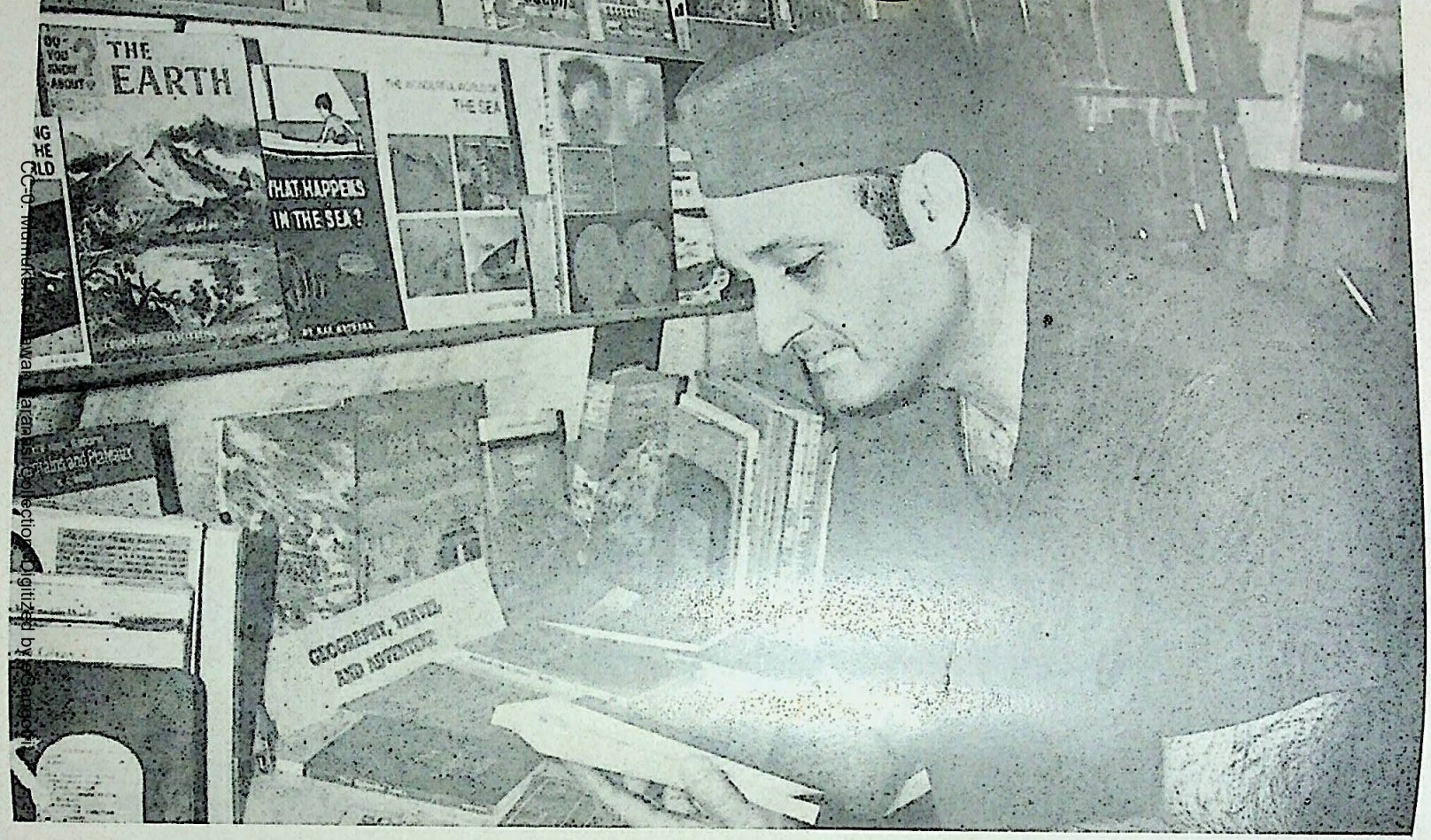

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बौद्धिकता इनकी पहचान है

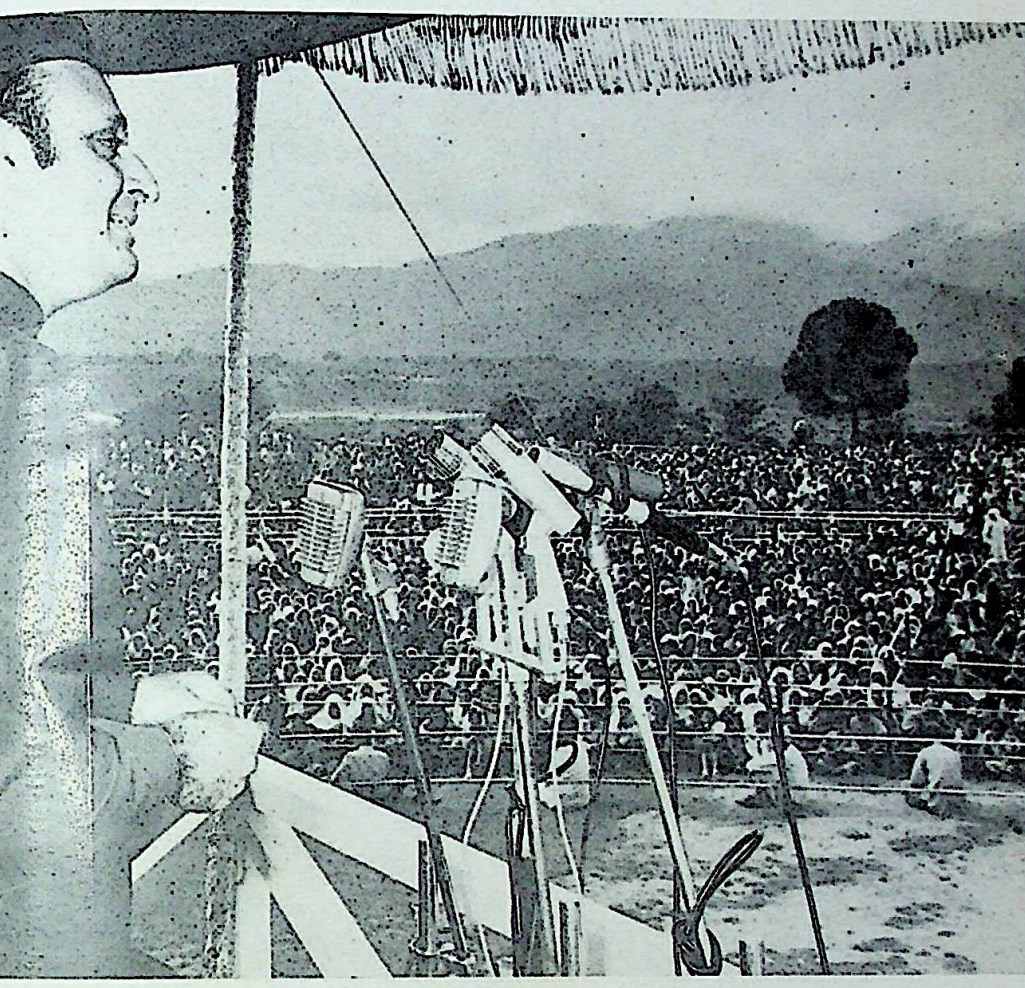

समुद्र-सी जनता और मोती-सा आबदार नेता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

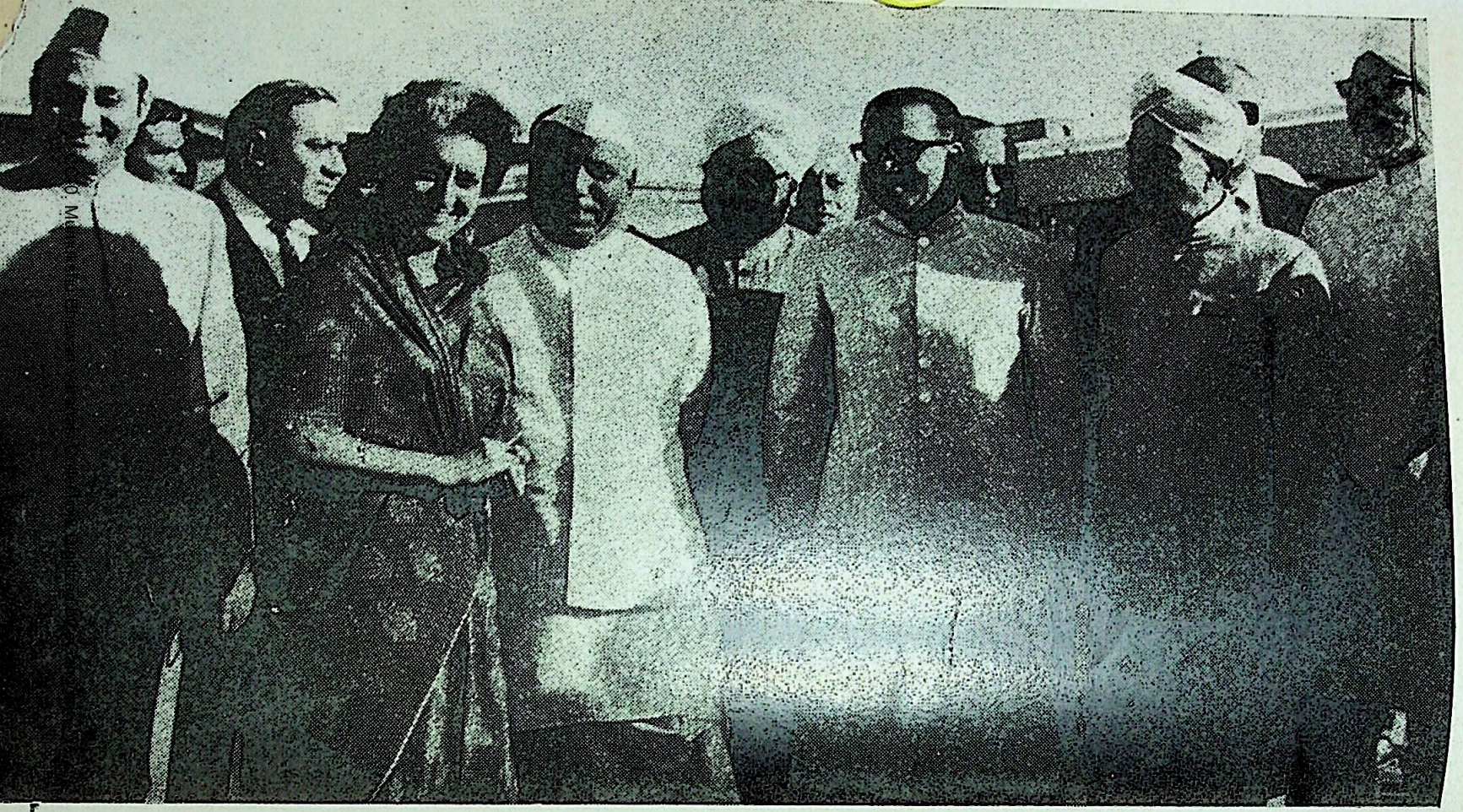

डा० कर्णसिंह, प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी तथा अन्य मंत्रिमंडलीय सहयोगियों के साथ

गरज यह कि डा० कर्णसिंह की शख्सीयत के कई एक पहलू हैं जिन पर इस मुख्तसर मजमून में रोशनी डालना नामुम्किन है और मुझे समुद्र को कूजे (थैला) में बंद करने का दावा भी नहीं। बहुत-से लोग डा० साहब को सिर्फ सयासतदान की हैसियत से जानते हैं मगर आप सयासतदान के अलावा और भी बहुत कुछ हैं।

मुझे डा० कर्णसिंह के करीब रहने और उन्हें बारीकी से देखने का शर्फ (मौका) हासिल रहा है। इसलिए अपने मुशहदात (जानकारियों) की बुनियाद पर (पाठकों) की जानकारी और दिलचस्पी के लिए इस मजमून में दो-एक बातें कलमबंद करने की कोशिश करूंगा जिनसे आपके खुलूस (प्यार) और ईसार (कुर्बानी) का अंदाजा हो सकता है।

चंद बरस पहले की बात है कि कुछ बहुरूपिये डा० साहब के पास आते, उनसे इम्दाद हासिल करते, आपकी गैरमामूल मकबूलियत (असामान्य विख्याति) का फायदा उठाकर इलेक्शन जीतते लेकिन दूसरे ही दिन यही लोग डा० साहब के मुखाल्फीन (विरोधियों) से जा मिलते और आपको बुरा-भला कहने में पेश-पैश रहते। कुछ लोग आपके सामने अपनी नादानी (दरिद्रता) का रोना रोते, इफलास (गरीबी) की कहानियां सुनाते, आपसे माली मदद हासिल करते और बाहर जाकर गालियां देते। यह सब बातें डा० साहब की नोटिस में लायी गयीं, फिर भी आपने उनकी मदद से हाथ नहीं रोका। एक रोज बहुरूपियों की एक टोली को मैंने डा० साहब के पास बैठे देखा, आप उनके साथ हंस-हंसकर बातें कर रहे थे। यह मंजर (दृश्य) देखकर मेरा खून खौलने लगा। उन लोगों के जाते ही मैंने पूछा, 'यह जानते हुए भी कि ये लोग बिच्छुओं से कम नहीं आप इनसे घुल-मिल जाते हैं और बार-बार इनकी मदद करते हैं।' डा० साहब के चेहरे पर एक दिल्फरेब मुस्कुराहट बिखर गयी, कहने लगे, 'बिच्छुओं का अपना काम है, सो वह अपना काम कर रहे हैं, मैं तो इंसान हूं, मेरा काम दूसरों की मदद करना है।' और थोड़े तवक्फ (ठहरने) के बाद कहने लगे, 'बकौल गालिब—वह अपनी खु (आदत) न छोड़ेंगे। हम अपनी वजअ (तौर-तरीके) क्यों बदलें?'

पिछले पार्लिमानी (संसदीय) इलेक्शन के दौरान डा० साहब को अपने हल्का-ए-इंतखाब (चुनाव क्षेत्र) के एक दूर-दराज इलाके गूल गुलाबगढ़ चुनाव मुहिम (अभियान) के सिलसिले में जाना था। आप सुबह नौ बजे के जहाज से देहली से जम्मू पहुंचे। तै यह पाया था कि उद्धमपुर में नाश्ता किया जायेगा। वहां पहुंचने पर मालूम हुआ कि नाश्ता तैयार होने में देर है, तो डा० साहब ने कहा, 'दूर जाना है, चलो चलते हैं।' और हम लोग बादिलनाखास्ता (बेदिली के साथ) कुछ खाये-पिये बगैर उनके पीछे-पीछे चल दिये। रास्ता-भर लोग डा० साहब को रोकते, उनसे तकरीर करवाते। भूखे-प्यासे दुश्वारतरीन रास्तों पर कठिन सफर से सबका बुरा हाल था। ज्यों-त्यों करके शाम पांच बजे हम लोग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गूल पहुंचे, सात बजे शाम को जलसा खत्म हुआ। बरफीली हवा से सबके दांत बज रहे थे। रैयास्ती हुकूमत (राज्य सरकार) की ईमा (आदेश) पर उस दिन गूल में बिजली बंद थी। खाना सामने आया मगर सर्दी और थकान की वजह से किसीसे पेट भर खाया नहीं गया। रात का कयाम रामबन डाक बंगले में था। हम पांच-छः आदमी डा० साहब के साथ ही रामबन लौट आये। गूल से रवाना होने के बाद गाड़ी में सन्नाटा था। सुकूत (खामोशी) को तोड़ते हुए डा० साहब ने मुझसे कहा, 'लगता है तुम बहुत ज्यादा थक गए। चलो, मैं सफर को हल्का किये देता हूं', और इसके साथ ही आपने गालिब और फैज़ की गजलें तरन्नुम(गाकर)के साथ शुरू कर दीं और हम लोग रास्ता-भर आपकी जादू-भरी आवाज से महफूज (आनंदित) होते रहे। उम्मीद थी कि रामबन पहुंचने के बाद दिन-भर की थकान के बाद आराम करने को मिलेगा मगर वहां सड़क से लेकर डाकबंगले तक लोगों का ठाठें मारता हुआ समुद्र था। एक बड़ी तायदाद दूरदराज देहातों से आयी हुई थी, जो डाकबंगले के सेहन में आग सेंकती और साथ के कुछ लोग नाच-गा रहे थे। रात के दो बज चुके थे और डा० साहब कमरे में जाने का नाम नहीं ले रहे थे। इसी दौरान जब आप किसी काम से कमरे में गए तो मैं भी पीछे-पीछे चला गया। दबी जुबान से मैंने कहा, 'इन लोगों ने तो खूब परेशान किया। सोने नहीं देंगे।' कहने लगे, 'अगर तुम सोना चाहते तो जाकर सो जाओ, यह लोग मेरी खातिर (मेरे लिए) पता नहीं कहां-कहां से आये हैं, इन्हें छोड़कर कैसे सो सकता हूं।'

डा० साहब का दो-टूक जवाब सुनकर मैं अपनी हरकत पर बहुत शरमिंदा हुआ। मैं सोचने लगा कि डा० कर्णसिंह जिन्होंने एक बादशाह के घर में जन्म लिया है, जिन्हें बचपन में सोने और चांदी के बर्तनों में खिलाया गया और जिनको हमारे कुछ करमफर्मा बादशाहजादा (बादशाह का बेटा) सयासतदां होने का ताना (उलाहना) देते हैं, गरीबों के लिए किस कदर खुलूस रखते हैं।

एक दफा मैंने डा० कर्णसिंह से कहा, 'आपने कश्मीर यूनिवरसिटी के लिए इतनी जमीन मुफ्त दी है। क्यों न इसकी कुछ पब्लिसिटी करायी जाये ताकि हमें कुछ सियासी फायदा मिले। सियासतदान तो कहीं दस रुपया दान देते हैं तो हफ्तों उसकी चर्चा होती है।'

'मैंने यह जमीन स्यासी या किसी दूसरे जाती फायदे के लिए नहीं दी है, मैंने यह जमीन एक नेक मकसद के लिए दी है जिसका मुझे कोई सिला (बदला) नहीं चाहिए।' डा० साहब का यह जवाब सुनकर मैं बड़ा पशेमान (लज्जित) हुआ।

पिछले साल की बात है। जून के महीने में एक रोज सुबह-सुबह मैं डा० साहब से मिलने उनके पैलेस गया। देखा कि आप कार में बैठने ही वाले हैं। मुझे देखते ही कार में बैठने का इशारा किया। इससे पहले कि मैं दरयाफ्त करता कि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हम कहां जा रहे हैं खुद ही कहने लगे, 'चलो तुमको चरार शरीफ की जियारत-गाह पर ले चलते हैं।' और कुछ छेड़ने के अंदाज में 'चूंकि तुम कुछ-कुछ वहावी किस्म के आदमी हो। जियारतगाहों पर कम ही जाते हो। मेरी सोहवत में रहकर जाना शुरू कर दोगे।' मैंने लगे हाथों जवाब दिया, 'जहां तक सोहवत का ताल्लुक (संबंध) है तो इसका असर दो तरफा हो सकता है।' 'अच्छा, तुम्हारा मतलब है कि तुम्हारी सोहवत का मुझ पर यह असर पड़ सकता है कि मैं जियारतगाहों पर जाना छोड़ दूं?' और इसके साथ ही जोर-जोर से कहकहा लगाया। चरार शरीफ की जियारत से वापसी पर पूछने लगे, 'अब क्या प्रोग्राम है तुम्हारा?' मैंने कहा, 'अगर इजाजत हो तो लक्ष्मी कुटीर (श्रीनगर की मशहूर झील डल के बीच में डा० साहब का जाती रेस्ट हाउस) जाना चाहता हूं।' 'हां-हां, जरूर जाओ, हम चौकीदार से कहलवा देंगे। वो तुमको कहवा पिलायेगा।'

जब मैं बच्चों को लेकर लक्ष्मी कुटीर पहुंचा तो मेरी हैरानगी की उस वक्त कोई हद न रही जब चौकीदार ने बताया कि डा० साहब का आज यहां खुद आने का प्रोगाम था मगर मेरी ख्वाहिश को देखते हुए अब किसी और दिन आएंगे। मैं सोचने लगा, कहां मैं और कहां डा० कर्णसिंह। यह डा० साहब का ईसार था जो उन्होंने एक अदना आदमी के साथ बर्ता।

गरज यह कि डा० साहब की जात से मुतलिक (संबंधित) ऐसे बीसियों वाकयात मेरे मुशाहदे (देखने) में आये हैं जिनसे आपकी अजमत और बुलंद किरदारी की अक्कासी (चित्रण) होती है।

यह वह सिफात (गुण) हैं जो आज की दुनिया में महदूय-ए-चंद (कुछ) लोगों में मिलती हैं।

डा० कर्णसिंह जैसे नेक सीरत (अच्छे चरित्र) लोग वशाजोनादिर (कभी-कभी) ही पैदा होते हैं। मुल्क को आप जैसे बेलौस और बुलंद किरदार (ऊंचे चरित्र) रहनुमा से बहुत सारी उम्मीदें वाबस्ता हैं और बकौल अल्लामा इकबाल :

हजारों साल नरगिस अपनी बेनूरी पे रोती है।
बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा।

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
वाराणसी।
आगत क्रमांक.....2612.....
दिनांक.....

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

□ श्री अक्षयकुमार जैन

पहली मुलाकात से आज तक

अखिल भारतीय समाचारपत्र सम्पादक सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन के सिलसिले में देश-भर के पत्रकार सन् १९६२ में श्रीनगर गए हुए थे। उस अधिवेशन का स्मरण दो कारणों से मानस पर बना हुआ है। एक तो लगातार वर्षा के कारण जम्मू-श्रीनगर मार्ग बन्द हो गया था अतः सभी पत्रकारों को सैनिक विमान द्वारा जम्मू से श्रीनगर ले जाया गया था और जम्मू-कश्मीर के तत्कालीन प्रधानमंत्री मरहूम बख्शी गुलाम मुहम्मद के स्नेहिल व्यवहार के कारण एक दिन देर से प्रारम्भ होने के बाद भी वह सम्मेलन अत्यंत सफल हुआ था और दूसरे राज्य के तत्कालीन सदरे-रियासत युवराज कर्णसिंह से सांस्कृतिक भेंट भी हम लोगों को आज तक याद है।

तब तक डा० कर्णसिंह डाक्टर नहीं बने थे, शिक्षारत थे, साथ ही समस्या वाले उस राज्य के राज्याध्यक्ष के रूप में भी वह सफलतापूर्वक कार्य कर रहे थे। श्रीनगर के उनके महल के सामने बड़ी देर तक साहित्य और संस्कृति पर उनसे चर्चा होती रही। सद्यः प्रकाशित उन्होंने अपनी एक अंग्रेजी कविता की पुस्तक भी हम पत्रकारों को स्नेह रूप में भेंट की थी। उनके सुदर्शन तथा युवराज के अनुरूप व्यक्तित्व से हम सभी प्रभावित हुए थे। उसके बाद से डा० साहब से निरंतर संपर्क बना रहा और जब संसद् सदस्य होकर दिल्ली आ गए और भारत सरकार के मंत्रिपद पर आसीन हुए तब से तो संपर्क और भी बढ़ गया और उनका गरिमामय व्यक्तित्व का प्रभाव और भी बढ़ गया। धीरे-धीरे उनसे इतना संपर्क

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हो गया कि मेरे बच्चों के विवाह में उन्होंने और महारानी साहिबा ने उपस्थित होकर हमें गौरवान्वित किया।

डा० कर्णसिंह अत्यंत शालीन, सुसंस्कृत और सुशिक्षित व्यक्ति हैं। संस्कृत का उनका ज्ञान, भारतीय धर्मों से उनका प्रेम तथा राष्ट्र के प्रति समर्पण उनके विशेष गुण हैं। राजनीति में ऐसे सुशिक्षित और सुसंस्कृत व्यक्ति विरल ही होते हैं। उनका प्रभावशाली और स्नेहिल व्यक्तित्व मित्र-अमित्र सभी पर प्रभाव डालता है।

उनके जन्म-दिवस पर उनके दीर्घ स्वस्थ जीवन तथा देश के लिए समर्पित व्यक्तित्व की कामना करता हूं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

□ श्री राममक्त कपीन्द्र जी

एक लोकप्रिय व्यक्तित्व

डा० कर्णसिंह रघुवंशी हैं, और रघुवंशियों जैसे गुण उनमें विद्यमान हैं। रघुवंशियों का चरित्र-चित्रण करने के हेतु भारत के प्रायः सभी विद्वानों, मनीषियों ने अपनी लेखनी को पवित्र किया है। महर्षि वाल्मीकि से लेकर, कालिदास के साथ ही भवभूति, माघ, बाण, तुलसीदास, सूरदास आदि इसी कड़ी में आ जाते हैं। अतः मैं भी दो अक्षर एक महान व्यक्ति के संबंध में लिख रहा हूं, जिसका पावन जीवन रघुवंशियों की परंपरा की स्मृति की याद दिलाता है।

डा० कर्णसिंह जी से मिलकर एक प्रकार का अनोखा आनंद एवं हर्ष का अनुभव करता हूं। मैं अपने जीवन में अनेकानेक देश-विदेश के महान से महान व्यक्तियों से मिला, किन्तु उन सबमें यही देखा कि कोई विचारक हैं, कोई धार्मिक हैं, कोई राजनीतिज्ञ हैं, कोई संगीतज्ञ हैं तो कोई साहित्यिक हैं—किन्तु यह सब गुण एक ही जगह एक ही व्यक्ति में मिलते हैं और वह व्यक्ति हैं—डा० कर्णसिंह जी।

डा० कर्णसिंह जी बड़े उदार, परोपकारी, धार्मिक, चरित्रवान, स्वच्छ राजनीतिज्ञ, संगीतज्ञ, परमास्तिक, प्रसन्न चित्त, मिलनसार तथा बहुत पैनी दृष्टि वाले, दूरदर्शी एवं सौम्य महापुरुष हैं।

रघुवंशियों का गौरव डा० कर्णसिंह जी में देखने को मिलता है, उनकी निष्ठा का मैं आदर करता हूं। वह तो सबके प्रिय, सबके हितकारी हैं। यह सब गुण उनमें अभिमान की मात्रा में नहीं हैं। हां, आत्मगौरव उनमें है। वह समस्याओं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को हल करने में विलंब नहीं करते हैं। शुद्ध जीवन-यापन करने वाले जन उनको प्रिय हैं, वह स्वयं निश्छल हैं अतः उन्हें निश्छल प्रिय हैं। उनकी आयु के पचास वर्ष पूर्ण हो रहे हैं परंतु ऐसा लगता तो नहीं है, मैंने तो उन्हें अथक देखा है, थकना वह नहीं जानते, आराम करने की उनकी आदत नहीं है। वह एक विचित्र प्रकार का व्यक्तित्व रखते हैं, उनकी वाणी में ओज है, स्मृति उनकी विलक्षण है। प्रान्तों की भाषा में उनकी रुचि है, जिस भाषा को वह जानते हैं उसमें धारा प्रवाह बोलते हुए मैंने उन्हें अनेक मंचों पर देखा है, वह पंजाबी, हिंदी, उर्दू, संस्कृत, अंग्रेजी, डोगरी के साथ-साथ संगीत में भी अच्छे हैं। भारत की संस्कृति के वह उपासक हैं। मैंने उन्हें राज प्रमुख, केन्द्रीय मंत्री तथा अनेक संस्थाओं के अध्यक्ष के रूप में निकट से देखा है।

वह वास्तव में कर्ण हैं और भारत माता के एक विद्वान, चरित्रवान, सद्‌गुण-संपन्न सपूत हैं। मैं उनकी इस वर्षगांठ पर अपना स्नेह भेजता हूं। डा० साहब जैसा व्यक्ति भारत में दूसरा ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलता—वह सर्वधर्म समन्वय में, सबका आदर करने में, सबकी सुनने में अग्रगण्य हैं। डा० साहब यदि बोलना जानते हैं तो दूसरों की सुनना भी जानते हैं। और मन लगाकर सुनते हैं और जहां तक बनता है दूसरों के कष्ट को निवारण करने की अपनी आदत को नहीं भूलते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

□ डा० एवा अरादी

आधुनिक भारत के एक महापुरुष

मैं अपनी भाग्यवान स्थितियों के प्रति आभार प्रकट करती हूं, यद्यपि एक छोटे एवं दूर देश का निवासी होते हुए भी हमारे युग के भारत के महापुरुष डा० कर्णसिंह जी से परिचित हो सकी।

उस भूमि पर जहां राम, बुद्ध, तुलसीदास और महात्मा गांधी जन्मे थे अब इन महापुरुषों और दार्शनिकों की पंक्ति में उनके काम को पूरा करने के लिए डा० कर्णसिंह जुटे हुए हैं। उनके चमकीले भाषणों, दर्शन, सुंदर कविताओं पर सबसे पहले उनके व्यक्तित्व और चरित्र के कारण मैं उनको महापुरुष मानती हूं। मैंने डा० कर्णसिंह जी का दर्शन पहली बार १९७५ जनवरी में प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर नागपुर में किया और उस समय भी मैं उनकी शुद्ध हिंदी से और हिंदी भाषा के लिए उनके समर्पण से बहुत प्रसन्न हुई और यह बात मुझे अत्यंत आश्चर्यजनक लगी कि वे महाराज, महाविद्वान और महापुरुष होकर भी बहुत नम्र, मित्रतापूर्ण और स्वाभाविक आदमी हैं।

मैं उस समय उनको सिर्फ दूर से ही देख सकी थी। उसके पश्चात् अगस्त, १९७६ में द्वितीय विश्व हिंदी-सम्मेलन में मोरिशस में मेरे सौभाग्य से भारत के इन महान पुत्र से परिचय कर सकी। वे भारतीय प्रतिनिधि-मण्डल के नेता थे और एक अभिवादन में स्वर्गीय और परमप्रिय श्री अ०गो० शेवड़े ने डा० कर्णसिंह और उनकी मनोरमा पत्नी से मेरा परिचय कराया। मैं यह कह सकती हूं कि अपने जीवन में मैंने ऐसा सुन्दर दंपति कभी नहीं देखा था इसलिए अपने को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रोक न सकी कि उन दोनों का एक फोटो लूं। मैंने उस फोटो को हंगेरी से कुछ समय बाद डा० कर्णसिंह जी को एक पत्र के साथ भेज दिया। मैं थोड़ी-थोड़ी बेचैन-सी थी क्योंकि उस समय मैंने उसका पता भी न जानने के कारण ठीक से न लिखा था। सिर्फ यह लिखा था—'स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन मंत्री'। मुझे आशा न थी कि वे उतना व्यस्त होकर, मेरे पत्र का उत्तर देंगे। लेकिन बहुत जल्दी मुझे उनका प्यारा, स्नेह-स्निग्ध-भरा हार्दिक पत्र मिला। थोड़े दिनों बाद मैंने उनको अपनी पहली हिंदी किताब भी भेज दी जिस पर भी उनका एक मैत्री-पूर्ण पत्र आया। मैंने ये दोनों पत्र सुरक्षित रख लिए क्योंकि ये मेरे लिए डा० कर्णसिंह के व्यक्तित्व और मनुष्यता को संजोये हुए हैं बल्कि उनकी अद्भुत हिंदी भी, जो मेरे लिए, एक विदेशी हिंदी प्रेमी के लिए अमूल्य निधि है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

□ यशपाल जैन

विरल व्यक्तित्व के धनी

गौर वर्ण, उन्नत ललाट, चमकती आंखें, चेहरे पर मधुर मुस्कान, शालीन परिधान, सौम्य व्यक्तित्व—यह है आकृति, जो डा० कर्णसिंह का नाम आते ही सामने आ खड़ी होती है। कश्मीर के राज-घराने में उनका जन्म हुआ, नेपाल के राणा परिवार की बेटी के साथ उनका विवाह हुआ, लेकिन अभिजात वर्ग का दर्प उन्हें छू तक नहीं गया। मिलते हैं तो ऐसे, जैसे अपने कोई आत्मीय जन हों और क्या मजाल कि बातचीत में कभी एक शब्द भी राजसी गर्व का मुंह से, अनजाने भी, निकल जाय! उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की है, श्री अरविन्द के दर्शन पर डाक्टरेट अर्जित की है, कश्मीर के राज-प्रमुख से लेकर केन्द्रीय मन्त्री तथा अन्य उच्च पदों पर रहे हैं, लेकिन जिस प्रकार फल आने पर वृक्ष झुकता है, उसी प्रकार पदों के साथ उनकी विनयशीलता बढ़ती गई है। अपने दीर्घकालीन सम्पर्क के आधार पर मैं कह सकता हूं कि वह अत्यन्त सुसंस्कृत हैं और शालीनता उनमें कूट-कूटकर भरी है।

उनसे मेरा प्रथम साक्षात्कार उस समय श्रीनगर के उनके निवास पर हुआ था, जबकि वह वहां के राज-प्रमुख थे। राजमहल और राजवंश मुझे कभी रुचिकर नहीं रहे। किन्तु जब मैं श्रीनगर की मनोरम प्राकृतिक सुषमा के बीच अवस्थित राजमहल में गया, तो वह मुझे मन को आतंकित करने वाला राजमहल लगा ही नहीं। ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उसमें वैभव नहीं, कला है; आडम्बर नहीं, हार्दिकता है, और राज-प्रमुख महोदय से बातचीत हुई तो उनके इर्दगिर्द

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कहीं भी पद का वृथाभिमान दिखाई नहीं दिया। स्पष्ट था कि उनकी संस्कारिता आरोपित नहीं थी, सहज थी। भारत के विभाजन के बाद के वे दिन बड़े भयंकर दिन थे, एक-से-एक जटिल समस्याएँ देश के सम्मुख थीं, बड़े-से-बड़े नेता हैरान थे कि उन समस्याओं का समाधान किस प्रकार होगा और हो भी सकेगा या नहीं, पर किशोर वय के उन राज-प्रमुख के मुख पर मुझे तनिक भी चिन्ता या व्यग्रता दिखाई नहीं दी, मानो वह आश्वस्त थे कि कुछ दिनों में सब कुछ ठीक हो जाएगा। उस पहली भेंट में ही उन्होंने मेरा मन मोह लिया।

वह जब-तब दिल्ली आते रहते थे। कभी-कभी किसी समारोह में अनायास भेंट हो जाती थी, तो मुझे आन्तरिक प्रसन्नता अनुभव होती थी। उनमें या उनके व्यवहार में एक बार भी बनावट या सजावट मेरे देखने में नहीं आई। उनके अंतर और बाह्य में कोई भेद नहीं था।

उनके केंद्र में मंत्री के पद पर आने के उपरांत तो मिलने के अधिक अवसर जुटने लगे। साहित्यिक तथा सांस्कृतिक समारोहों और गोष्ठियों के अतिरिक्त कुछ ऐसी प्रवृतियां थीं और हैं, जिन्होंने हमें एक-दूसरे के निकट लाने में सहायता की। श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरी, विशेषकर वहां की संचालिका माता जी के प्रति मेरे मन में बड़ा आकर्षण रहा है और डा० कर्णसिंह की पी-एच०डी० की उपाधि का श्रीअरविंद-दर्शन विषय ही था; पं० जवाहरलाल नेहरू वाङ्मय का प्रकाशन, जिसके हिन्दी संस्करण का दायित्व नेहरू स्मारक निधि के सचिव के नाते उन्होंने हमें (सस्ता साहित्य मंडल को) सौंपा था; रामायण विद्यापीठ, जिसका मैं कोषाध्यक्ष था और बाद में वह उसके अध्यक्ष बने; मानस चतुश्शती; विश्व हिंदी सम्मेलन, जिसमें हिंदी के एक लेखक के साथ-साथ विश्व के लगभग चालीस देशों में भ्रमण कर आने के बाद मेरी गहरी अभिरुचि थी—ये तथा ऐसी ही कुछ और प्रवृत्तियां थीं, जिनके कारण मुझे उन्हें निकट से देखने और जानने का सुयोग मिला। मेरी यह धारणा उत्तरोत्तर पुष्ट होती गई कि वह मूलतः साहित्य और संस्कृति के व्यक्ति हैं। उन्होंने अधिक नहीं लिखा है, लेकिन गद्य और पद्य में जितना लिखा है, उससे स्पष्ट है कि लेखक के रूप में उनमें असामान्य प्रतिभा है। वह कई भाषाओं के ज्ञाता हैं, अंग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत और डोगरी तो उनके लिए बहुत ही सहज हैं। इन सभी भाषाओं के साहित्य का उन्होंने गहन अध्ययन किया है और संस्कृत को छोड़कर शेष भाषाओं में उन्होंने उच्चकोटि के साहित्य की रचना की है। वह राजनीति में रहे हैं और हैं, पर मेरी मान्यता है कि यदि उन्होंने साहित्य-सृजन को अधिक समय दिया होता तो निश्चय ही उन्होंने भारतीय साहित्य को समृद्ध किया होता। मेरा विश्वास है कि भविष्य में उनके द्वारा अधिक साहित्य उपलब्ध होगा।

हिंदी के प्रति उनकी अभिरुचि सर्व-विदित है। उन्हीं की सूझ-बूझ और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लगन के कारण विश्व हिन्दी सम्मेलन की कल्पना का उदय हुआ और उसे मूर्तरूप मिला। मुझे नागपुर के प्रथम और मोरिशस के द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलनों में भाग लेने का अवसर प्राप्त हुआ था। यह कहने में तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं होगी कि हिंदी को अंतर्राष्ट्रीय मंच पर आसीन करने में उन्होंने ऐतिहासिक भूमिका अदा की। आज भी उस दिशा का उनका चिंतन निरंन्तर चल रहा है।

राम के वह परम भक्त हैं, लेकिन उनके धार्मिक विचार अत्यन्त उदार हैं। वह सभी धर्मों के प्रति समान आदर-भाव रखते हैं। उनके कंठ में वड़ा ही माधुर्य है। जव वह राम और कृष्ण की भक्ति के पद सस्वर सुनाते हैं तो श्रोता मंत्र-मुग्ध हो जाते हैं। मुझे स्मरण है, मोरिशस में गंगा-तालाव पर उन्होंने कुछ भजन गाकर सुनाये थे तो वहां उपस्थित नर-नारी ही नहीं, वहां का सारा वातावरण अलौकिकता से भर उठा था।

भारतीय संस्कृति के वह अनन्य उपासक हैं। वस्तुतः भारतीय संस्कृति के सब गुण उनमें विद्यमान हैं। कह सकते हैं, उस संस्कृति का उन्होंने अध्ययन और मनन ही नहीं किया है, अपने जीवन का उसे अधिष्ठान भी वनाया है। हिंदी, अंग्रेजी और डोगरी के वह बड़े ही ओजस्वी वक्ता हैं। भारतीय संस्कृति, साहित्य अथवा दर्शन पर जव वह बोलते हैं और अपने भाषण के वीच-वीच में संस्कृत के सुभाषितों के प्रसंगोचित नगीने जड़ते हैं तो ऐसा जान पड़ता है, मानो भारतीय मनीषा मुखर हो उठी हो। वह वैभव के मध्य पले हैं, लेकिन भारतीय संस्कृति का रंग उन पर इतना गहरा चढ़ा है कि दूसरा कोई रंग चढ़ ही नहीं सकता।

किसी जमाने में भारतीय संस्कृति ने सारे संसार को अपना सन्देश दिया था। जी होता है कि भौतिकता से आक्रांत और क्लांत विश्व को वह संदेश एक वार पुनः प्राप्त हो, जो उसके लिए स्थायी शांति का मार्ग प्रशस्त कर सके। जव यह विचार मन में आता है तो यह कल्पना भी स्वाभाविक रूप से आ जाती है कि अपने इन वन्धु से हम कहें कि तुम राजनीति को छोड़ो और संसार में घूम-घूमकर भारतीय संस्कृति की मंदाकिनी प्रवाहित करो। राजनीति राज्य चलावेगी, किंतु संस्कृति मानव की आत्मा को संबल प्रदान करेगी। यदि विश्व को अमन-चैन से रहना है तो भारतीय संस्कृति के मूलमंत्र 'वसुधैव कुटुम्वकम्' को अपनाना होगा और अनेकता के बीच एकता साधित करनी होगी।

इस लोक-मंगल के कार्य को बड़े-से-बड़े राजनेता भी संपादित नहीं कर सकता। इस महान यज्ञ को पूर्ण करेगा वह मनीषी, जिसकी रग-रग में भारतीय संस्कृति समाई हुई है और जिसका हृदय इतना विशाल है कि वह उसमें सारी संस्कृतियों को स्थान दे सकता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मेरी प्रभु से प्रार्थना है कि विरल व्यक्तित्व के धनी, भारतीय संस्कृति के उन्नायक और सर्जनशील साहित्य के स्रष्टा डा० कर्णसिंह शतंजीवी हों, स्वस्थ रहें और अपनी वाणी तथा लेखनी से लोकहित का चिरकाल तक साधन करते रहें।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

□ डा० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

राजनीति और संस्कृति के सेतु

डा० कर्णसिंह के प्रतिभासंपन्न व्यक्तित्व के बहुमुखी आयाम हैं जो पारदर्शी स्फटिक में प्रकाश की किरणों की तरह रंग-वैविध्य का ताना-बाना बुनते हैं। कभी कोई एक रंग अधिक उभरता प्रतीत होता है तो कभी कोई दूसरा रंग अधिक निखरता है। 'प्रकाशपुंज' से प्रेरणा लेते हुए एवं प्रकाश की किरणों से अठखेलियां करते हुए बहुरंगी वैविध्य के सुदर्शन सस्मित इंद्र-धनुष की छवि डा० कर्णसिंह के व्यक्तित्व का प्रामाणिक प्रतीक और सही परिचायक है।

डा० कर्णसिंह के व्यक्तित्व में ईश्वरीय, आध्यात्मिक आस्था की आभा प्रस्फुटित होती है। सांस्कृतिक-साहित्यिक चेतना की प्रभा उनके व्यक्तित्व को प्रतिभासित करती है। अध्यात्म, संस्कृत और साहित्य उनके व्यक्तित्व को सौष्ठव, चिंतन को गहराई और अभिव्यक्ति को मर्म देते हैं।

डा० कर्णसिंह जन्म से सुख-सौभाग्य में पले। ईश्वर ने उन्हें राज्य के ऐश्वर्य के साथ प्रतिभा का वरदान भी दिया। सोने में सुगंध की तरह उनकी विद्वत्ता, उनका वाक्कौशल, उनका अभिव्यक्ति-सामर्थ्य, उनकी साहित्यिक रसज्ञता और उनकी संस्कृति-निष्ठा उनके सार्वजनिक जीवन को महिमा से मंडित करते रहे हैं। बल्कि मैं तो यह मानता हूं कि उनके सांस्कृतिक-साहित्यिक व्यक्तित्व की सामाजिक गरिमा और संभावनाएं उनकी राजनीतिक उपलब्धियों से कहीं बढ़कर हैं। राजनीति की प्रखर चकाचौंध में अधिकार और सत्ता की प्रगल्भता ही प्रमुख है। किंतु संस्कृति और साहित्य में एक सूक्ष्म, अन्तर्मुखी संवेदन, एक स्थिर, शीतल,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सहज स्थायीत्व और एक विलक्षण विदग्धता है। डा० कर्णसिंह के राजनैतिक जीवन ने अब तक उनको प्रभाव की वरिष्ठता दी थी किंतु राजनीति के दुर्निवार कल्मष का प्रक्षालन और गतिरोध की थकान का हरण उनके सांस्कृतिक व्यक्तित्व के हाथों ही हो सका।

मुझे एक प्रसंग याद आता है जब दिनकर जी ने डा० कर्णसिंह को एक आशीर्वाद देना चाहा था। वह आशीर्वाद यह था कि डा० कर्णसिंह सत्ता की राजनीति से मुक्त होकर साहित्य और संस्कृति की अधिक परिपूर्ण सेवा और साधना करें। तब भी डा० कर्णसिंह को यह आशीर्वाद ग्रहण करने में हिचक रही होगी, शायद आज भी है। राजनीति से हटकर संस्कृति का वानप्रस्थ उनके लिए सुखद और समुचित होगा, इसमें भी मुझे संशय है। किंतु कवि के उस आशीर्वाद में अन्तर्निहित था डा० कर्णसिंह के सांस्कृतिक-साहित्यिक-सामाजिक व्यक्तित्व की विराट् संभावनाओं का मानचित्र। मेरा यह मानना है कि दर्शन में उनकी पहुंच, साहित्य में उनकी गति और संस्कृति में उनकी अनुरक्ति उन्हें सार्वजनिक जीवन में दर्शन, संस्कृति और साहित्य के राजदूत एवं प्रवक्ता का पद और सम्मान देते हैं; और उनके सार्वजनिक जीवन की प्रतिष्ठा सांस्कृतिक उद्देश्यों और प्रवृत्तियों का मार्ग प्रशस्त करती है। जनतांत्रिक जीवन में ऐसे व्यक्ति संस्कृति और राजनीति के बीच मध्यस्थता करते हैं और स्वयं सृजनात्मक और रचनात्मक सभावनाओं के सेतु बनते हैं। ऐसे मध्यस्थ सेतु की भूमिका राष्ट्र-निर्माण में अत्यंत महत्त्वपूर्ण होती है, होनी चाहिए। डा० कर्णसिंह इस प्रकार की भूमिका का निर्वाह करने की क्षमता रखते हैं।

हमारे देश के सार्वजनिक जीवन का विद्या और संस्कृति द्वारा अभिसिंचन हो और देश के चिंतनशील नागरिक राष्ट्र-निर्माण में सहयोग और मार्ग दर्शन दें, यह अभीष्ट है। तभी हमारी लोक यात्रा की दिशा उदात्त संकल्पों की तरफ होगी, तभी हमारे जीवन की वसुन्धरा अधिक उर्वर और समृद्ध होगी।

अपने जीवन के पांच दशक पूरे करने पर, डा० कर्णसिंह को एवं उनके साथ उनकी धर्मपत्नी को, देश के बुद्धिजीवी वर्ग की शत-शत शुभकामनाएं। आने वाले वर्ष उनके व्यक्तित्व की संभावनाओं का मार्ग प्रशस्त करें और देश को उनकी बहुमुखी प्रतिभा का परिपूर्ण लाभ मिले, यही आशा और कामना उनके सब मित्रों और प्रशंसकों की है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

□ श्री बशीर अहमद मयूख

प्रज्ञा-पुत्र

कश्मीर की केसर-गंध और हिमालय का भव्य-सौम्य मिलकर जिस व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं—उसका नाम है डा० कर्णसिंह। आचार-व्यवहार, वाणी-विचार कहीं से भी देखें—एक सौम्य तेजस्विता से डा० साहब सहज विभूषित हैं। आध्यात्मिक चिंतन (भक्ति आराधना) से प्रारंभ होने वाले डा० कर्णसिंह की दिनचर्या भौतिक जीवन एवं समष्टि के विराट् को साक्षी-भाव से ग्रहण करने की संवलमय जीवनचर्या ही बन गयी। आस्था का यह संबल ही उनके व्यक्तित्व के आस-पास एक तेजस्-वलय का निर्माण करता है।

मानवीय मूल्यों का प्रवक्ता यह राजपुत्र लगता है राजनीति के लिए पैदा नहीं हुआ था। गले पड़ा यह ढोल तो मजबूरन बजाना पड़ रहा है। भारतीय कौम की सभ्यता के सम्मुख जितना बड़ा संकट आज है, इससे पूर्व इतना बड़ा कभी नहीं रहा और इसे उत्पन्न करने में हमारी राजनीति का पूरा हाथ रहा—इस तथ्य से डा० कर्णसिंह पूरी तरह अवगत लगते हैं। इस पुरातन देश में जो कुछ भी शिव और शुभ रहा उसके मिटने और किसी नवीन सुखद स्थानापन्न के प्रकट न होने की पीड़ा डा० कर्णसिंह के विचारों में साफ अभिव्यक्त होती है।

विश्व हिन्दी सम्मेलन के प्रतिनिधियों को मोरिशस ले जाने वाला जेट जहाज हिन्द महासागर के ऊपर पैंतीस हजार फुट की ऊंचाई से उड़ रहा है, लेकिन हमारे इस डोगरी कवि की उड़ान तो इससे भी ऊंची है—एकाएक माइक पर डा० कर्णसिंह का प्रस्ताव गूंज उठता है रवि से भी आगे पहुंचने वाले कवियों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के नाम कि हो जाये एक कवि-सम्मेलन अंतरिक्ष में भी; और आदि-शक्ति रूपा संस्कृत कवयित्री श्रीमती कमलारत्नम सहित बालकवि बैरागी, शिवमंगल सिंह सुमन आदि धरित्री-पुत्र अनंत आकाश में उछालने लगते हैं अपने शब्द-घोष। समा बंध जाता है जब सुनाते हैं डाक्टर कर्णसिंह अपने डोगरी गीत।

मोरिशस से हिंदी सम्मेलन के प्रतिनिधियों को दो उड़ानों में वापिस लौटना था—डा० कर्णसिंह परिस्थितिवश पहली उड़ान से आ गये। तीसरे दिन दूसरी उड़ान से दिल्ली पहुंचने पर हम लोग देखते हैं डा० कर्णसिंह पालम पर सपरिवार बच्चों सहित हमारे स्वागत को उपस्थित हैं। प्रतिनिधियों का बच्चों को परिचय देते हुए जिस तरह से डाक्टर साहब अभ्यर्थना कर रहे थे उसमें प्रतिनिधिमण्डल के नेता का राजनय कम और स्नेहिल आत्मीयता एवं आदर अधिक भरा था।

बहुत अधिक संपर्क में न आने वाला व्यक्ति भी डा० कर्णसिंह के चिंतन-शील मन एवं मानवीय मूल्यों को समर्पित विचार-आचार की झलक सहज ही देख सकता है।

प्रभु से प्रार्थना है कि इस मनस्वी-यशस्वी समष्टि को समर्पित प्रज्ञा-पुत्र को दीर्घ-आयुष्य प्रदान करे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

□ श्री राजेन्द्र अवस्थी

एक ही चेहरेवाला व्यक्तित्व

एक चेहरा मेरे सामने अक्सर घूमता है—हंसता, मुस्कराता हुआ, बेलाग, किसी तरह का छद्म नहीं, बड़े होने का अहसास भी नहीं। यह चेहरा एक ऐसे व्यक्ति का है, जो राजपरिवार से सम्बन्धित है, लेकिन जिसने अपने को पूरी तरह जन-साधारण में आत्मसात् कर दिया है। कभी आप डा० कर्णसिंह से मिलिये, कैसी भी परेशानी हो, कठिनाई हो, उनके चेहरे पर न तो झुंझलाहट मिलेगी और न चिंता के भाव!

याद नहीं आता, डा० कर्णसिंह से कब मिला था, लेकिन कम से कम १५ वर्ष तो हो ही गये होंगे। पहले दूर से मिलता रहा—एक बड़ी दूरी थी: मंत्री और सामान्य नागरिक की दूरी। उन्हें कई सभाओं में बोलते हुए सुना है। आत्मीय मित्रों से हाथ मिलाते और गले मिलते देखा है। अचानक एक दिन ऐसे ही किसी समारोह में उनसे मेरी निकटता हुई—फिर मैं उनके कार्यालय में मिला। कार्यालय में कई बार मिला—कभी एक सम्पादक के नाते, कभी यूं ही। इस प्रसंग में एक घटना याद आती है। मेरे एक मित्र दिल्ली के एक अस्पताल में डाक्टर हैं। उस समय वे बंगलोर में थे। उनकी पत्नी दिल्ली में थीं। उन्होंने मुझसे निवेदन किया कि मैं उनकी मदद करूं। डा० कर्णसिंह उन दिनों स्वास्थ्य मंत्री थे। मैं उनके कार्यालय में पहुंच गया। मैंने एक आवेदन पत्र सामने रख दिया और कहा, जैसे भी हो यह काम करना है। उन्होंने कुछ भी नहीं पूछा। स्वास्थ्य मंत्रालय के सचिव श्री राजेश्वर नारायण को बुलाया और आवेदन पत्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनकी ओर बढ़ाते हुए कहा, "मुझे नहीं मालूम इसमें क्या लिखा है, लेकिन यह मेरे मित्र अवस्थी जी लाये हैं, आप कर दीजिए।"

एक कठिन काम आसानी से हो गया। डाक्टर महोदय का तबादला दिल्ली का हो गया। मैं सोच भी नहीं सकता था कि मेरे अनुरोध को डाक्टर कर्णसिंह इतनी आसानी से मान लेंगे।

तब से निरंतर मैंने अनुभव किया है कि वे यदि किसीसे मित्रता एक बार बनाते हैं तो निबाहना भी जानते हैं पर एक बार मिलते हैं तो याददाश्त इतनी तेज कि भूलते नहीं।

कई बार डाक्टर साहब के घर जाने का अवसर मिला है। अकेले बहुत देर-देर तक हमने बातें की हैं। कई बार वे गालीचे में बैठ गये हैं। वहीं उनकी पत्नी भी आ गयी हैं और हम बातें करते रहे हैं। 'मांडूक्य उपनिषद्' चर्चा का प्रिय विषय रहा है। डाक्टर ने इसपर बहुत काम किया है। वे संस्कृत के अच्छे विद्वान हैं। इसलिए संस्कृत-ग्रंथों से ऐसी सामग्री प्रकाश में लाने के पक्षधर हैं जो आज भी नयी है। उनका ज्ञान इतना अगाध है कि बातों का अटूट सिलसिला कभी खत्म नहीं हो सकता। वह तो एकाएक समय है जो उन्हें रोक देता है।

राजनीति और कम से कम आज की राजनीति डाक्टर साहब जैसे विद्वानों के लिए उपयुक्त नहीं है। इतना पढ़ा-लिखा, समझदार, मृदुभाषी और मददगार व्यक्ति राजनीति की दुनिया की परिधि से बहुत दूर है। इसलिए मुझे कई बार लगा है कि उन्हें जबरन राजनीति में आना पड़ा है। आ गये हैं तो उसका मोह भी नहीं छूटता। लौट-लौटकर आदमी वहीं भागता है। मेरा आज भी ख्याल है कि यदि डा० कर्णसिंह गम्भीरता से लेखन को स्वीकार कर लें, तो इस देश की बौद्धिक क्षमता के दायरे में उनका शीर्ष स्थान होगा। महर्षि अरविंद का दर्शन, संस्कृत का अगाध ज्ञान, मौलिक सृजन की क्षमता और फिर अनुभव की शिला में घुटा हुआ जीवन ऐसा व्यक्ति तो अपने-आप लेखक बन जाएगा। लेखक होने के लिए और चाहिए ही क्या।

डा० कर्णसिंह के साथ धीरे-धीरे मेरे निजी संबंध बढ़ते हैं। मोरिशस का विश्व हिन्दी सम्मेलन कभी भूलेगा नहीं, क्योंकि हमारा नेतृत्व डा० कर्णसिंह ने किया था। विमान में काव्य-पाठ शायद इतिहास की पहली घटना थी। समूची यात्रा ऐसे बीत गई, जैसे अभी-अभी हम भारत से चले थे और अभी मोरिशस पहुंच गये। मोरिशस का हिन्दी-सम्मेलन इसलिए भी अविस्मरणीय रहेगा क्योंकि डाक्टर साहब ने हिन्दी के प्रचार और प्रसार में वहां कोई कमी नहीं की। अपने मृदु और सौम्य व्यवहार से उन्होंने मोरिशस वासियों का मन जीत लिया। व्यक्ति ही सब कुछ होता है, व्यक्ति का धरातल ऊंचा हो, तो स्तर कभी गिर नहीं सकता।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

डा० कर्णसिंह कवि भी हैं। काव्यपाठ करते हैं तो भाव-विभोर हो जाते हैं। उनके काव्य में भी अरविंद का दर्शन है। ऐसा व्यक्ति अपने आसपास एक घेरा बना लेता है। वह घेरा कुर्सी से कहीं बहुत बड़ा होता है। इसलिए डा० कर्णसिंह मंत्री रहें या न रहें कोई अन्तर नहीं पड़ता। उनका वही प्रभाव है और वैसे ही उनके प्रशंसक हैं। उनकी समूची जिन्दगी एक खुली किताब है। चाहे जो उसे पढ़ सकता है। चेहरे लगाकर सभी जीते हैं, एक ही चेहरे वाला व्यक्ति शायद ही कोई मिलता है और वह व्यक्ति हैं—डा० कर्णसिंह।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

□ श्री शंकरदयाल सिंह

एक सौम्य व्यक्तित्व

मेरी एक सम्मानित विदुषी महिला मित्र हैं जो अहिंदी भाषा-भाषी होते हुए भी संस्कृत और हिंदी में समान अधिकार रखती हैं। अकस्मात् एक दिन उनके पास जाने का मौका मिला तो देखता क्या हूं कि उनके पढ़ने-लिखने की मेज पर कांच के नीचे कई दृश्यों के बीच एक मृदु मुस्कान बिखेरता प्यारा-सा सौम्य व्यक्तित्व हंस रहा है। मेरे लिए यह संयोग-सुख था, अतः मैंने छूटते ही पूछा, 'अमूमन लोग अपनी मेज पर देवी-देवताओं, राष्ट्रीय नेताओं अथवा किशोरवय में सिने तारकों-तारिकाओं के चित्र लगाते हैं, लेकिन आपने सबोंसे भिन्न प्रकार की यह तस्वीर क्यों लगाई है?'

'मेरी मर्जी।' कहकर वह हंस पड़ी। स्वाभाविक रूप से उनका चेहरा कुछ आरक्त हुआ, लेकिन 'कामायनी' की 'लज्जा' का स्वरूप नहीं उभरा :

इतना न चमत्कृत हो बाले
अपने मन का उपकार करो
मैं एक पकड़ हूं जो कहती
ठहरो कुछ सोच-विचार करो

'आप इनसे मिली हैं?' मेरा दूसरा प्रश्न था।

'मैं तो इन्हें जानती भी नहीं हूं, मिलने की बात तो दूर रही।' संभ्रांत महिला का स्वाभाविक उत्तर था, जिसमें कहीं कोई बनावट नहीं थी।

मैंने इस बात की गांठ बांध ली।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नुकीले नाक-नक्श, मुस्कराते होंठ, चमकती-सी आंखें, ज्ञान-विज्ञान से मंडित दृष्टि, बिना सिलवटों का वस्त्र-वितान, आर्य संकुल ग्रीवा, सूर्यवंशीय आभा, वैदिक मंत्रों-सी चित्रेतना, पौरुष के साथ-साथ लावण्यता और बिना बोले भी सब कुछ कह देने की उदार क्षमता—सब मिलाकर एक सौम्य व्यक्तित्व डा० कर्णसिंह का था।

तब से दो-तीन वर्ष गुजर गये। सहसा इस बार मुझे एक उत्सुकता सूझी। उन महिला-मित्र को पत्र लिखा, 'डा० कर्णसिंह पर एक पुस्तक निकलने जा रही है। आप भी एक लेख अवश्य भेजें, शीर्षक हो—'जिन्हें पहचानती नहीं हूं'।'

दस-पंद्रह बीस दिन बीत गये, भूल गया था वह प्रसंग या अपना पत्र, तभी डाकिया ने एक भारी-सा लिफाफा लाकर मेरे हाथों में आकर थमाया। खोलते ही हरी स्याही के संयोग से मानुषी अक्षरों ने मुझे उद्‌बुद्ध करना शुरू कर दिया।

'जिन्हें पहचानती नहीं हूं' शीर्षक लेख लिखने का आदेश है आपका, पर लिखूं क्या? जिन्हें पहचानती नहीं हूं, जो अपरिचित हैं, उन्हें अपरिचित ही रहने दें न। क्या होगा परिचित की शृंखलाओं में किसी स्वप्निल आदर्श को बांधने का प्रयास करके? लेख लिखना कदाचित् एक ऐसा ही प्रयास हो?

'इस पत्र को लिखते हुए मेरी दृष्टि टिक गई है उस चित्र पर। अपने लिखने की मेज पर कांच के नीचे उसे मैंने लगाकर रख दिया है। प्रतिदिन भोर की नीरवता में दुखता तन और बोझिल मन लिए जब चाय का गिलास थामकर एकाकिनी मैं यहां आकर बैठती हूं तो बरबस निहारती ही रहती हूं इस 'सौंदर्य' को। फिर मन उमड़ने लगता है, स्मृतियां कहीं दूर-दूर पहुंच जाती हैं। ऐसा ही रोज होता है।

'इस लहराते 'सौंदर्य-सागर में ही तो श्वेत-पदमासना' सरस्वती का आवास है न? या कि वह स्वयं ही वाणी का अवतार है? संस्कृत के सुप्रसिद्ध कवि वाण-भट्ट के लिए कहा जाता है कि प्रगल्भता प्राप्त करने के लिए 'वाणी' 'वाण' बन गयी। चहल-पहल से भरे इस युग में 'राज-प्रासाद' से 'लोकसभा' तक का सफर तय करने या स्वर्णिम कश्मीर से यान्त्रिक नई दिल्ली तक आवागमन करने की इच्छा से या फिर साधारणतम व्यक्तियों की दशा निरखने के लिए ही तो 'वाणी' कहीं 'कर्णसिंह के' रूप में तो नहीं अवतरित हुई है?

'स्मृतियों में जाग उठा है 'धर्मक्षेत्र कुरूक्षेत्र' में अवस्थित 'सरस्वती-भवन' का कमरा न० १७, जहां मैं तपस्या कर रही थी। मेरे कमरे में दीवार पर एक ही चित्र चिपका हुआ था—कर्णसिंह का। प्रतिदिन भोर को आंखें खोलते ही दृष्टि उधर ही जाती थी—स्वतः ही। फिर द्वार खोलकर बाहर जाती और रोज की दिन-चर्या आरम्भ हो जाती थी।...एक दिन स्वयं को, डिपार्टमेंट को और सभी परिचित एवं अपरिचितों को आश्चर्य-चकित करते हुए मैंने असंभव को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संभव कर दिखाया अर्थात् कार्य समाप्त कर दिया। फिर तो उस सुषमा-मंडित मुख-मंडल को मैंने 'लकी' मानना आरम्भ कर दिया। अब भी सोचती हूं 'लक' आयेगा या 'जीवन' सच्चे अर्थ में—या फिर 'चिर-निद्रा'—कुछ भी नहीं आया अभी तक। प्रतीक्षा है।

'एक दिन विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में अपनी सीट पर बैठी कार्य कर रही थी कि एक शोध-छात्रा ने लाकर एक पुस्तक मुझे दी। कवर पर वही सुपरिचित चित्र था—समाचारपत्रों में छपने वाला। हम दोनों ही शरारती मूड में वह तसवीर काटकर निकाल रहे थे कि 'चांद साहब' (पुस्तकालयाध्यक्ष) अचानक 'उदित' हो गये। पता नहीं उन्होंने हमारी वह प्रक्रिया देखी कि नहीं, पर हमारा, विशेषकर मेरा हाल बुरा था। यह वही चित्र था जो मेरे कमरे में अनेक समय तक लगा रहा और क्रमशः अन्य शोध-छात्राओं का भी 'आकर्षण-विंदु' बन गया मुझसे हंसी करने के लिए।

'विभाग के साथ राजस्थान यात्रा के उपरान्त कुरुक्षेत्र से यहां वापस आ रही थी। ट्रेन में एक परिचित सज्जन से भेंट हुई तो छूटते ही बोले, अरे आप कैसे चल दीं वापस? परसों डा० कर्णसिंह आ रहे हैं—मैं स्तब्ध रह गयी। प्रसन्नता, आशा, प्रतीक्षा, अनिश्चय, परिचय की संभावना, सभी भाव घुल-मिल गये। परसों आया और मैं वहीं थी।···

'मैंने उन्हें देखा, उन्हें सुना, पर उन्हें जाना नहीं। आश्रम से होस्टल आई तो कोरिडोर के एक सिरे से निर्मल ने आवाज लगाई, आंटी। देखा उन्हें? कैसे लगे?—मेरा संक्षिप्त-सा उत्तर था—अये। लब्धं नेत्र निर्वाणम्।

'निर्मल मेरे पास आयी तो मेज पर उनका चित्र स्थिर दृष्टि से देखती रही, फिर अचानक बोली, कैसे हैं विधाता? किसी पर सौंदर्य का भंडार उड़ेल देते हैं, तो किसीकी ओर देखते ही नहीं।

'दिनेश भी एक दिन उस चित्र को निहारते हुए पूछ बैठा, आंटी, इस तस्वीर को सामने रखकर आप पढ-लिख कैसे लेती हैं इस मेज पर बैठकर? मैं यहां बैठूं तो बस इन्हीं की ओर देखता रहूं।—फिर मेरी तरह ही कालिदास का आश्रय लेता है—न प्रभा तरल ज्योतिरुदेति वसुधातलात्।—ऐसा दिव्य रूप पृथ्वीतल से नहीं उदय हो सकता है।'

मैं बार-बार अपनी उदार महिला मित्र की पाती, जो मुझे लिखी गई है, लेकिन उसका मूलस्रोत कोई और है, पढ़ता हूं, और डा० कर्णसिंह के चित्र को निहारता हूं। कालिदास पर गुस्सा आता है, क्यों उन्होंने ऐसी कल्पना की कि दुष्यंत शकुन्तला को भूल गया। लेकिन आज भी तो वही कहानी चरितार्थ हो रही है। डाक्टर साहब को क्या पता कि उनका सौम्य व्यक्तित्व भी गुदगुदी पैदा करता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महाभारत का अप्रतिम योद्धा कर्ण : इतिहास का अतुलनीय उदार-दानी व्यक्तित्व कर्ण, कवच और कुंडल की आभामय गरिमा को साथ लेकर पैदा हुआ सूर्य-पुत्र कर्ण, हर किसी के छल-छद्म के सामने पराजित अपराजेय कर्ण, शस्त्र और शास्त्र, शौर्य और धीर, ज्ञान और चेतना, कर्त्तव्य और अधिकार, मर्यादा और निष्ठा—सबका समन्वय हो गया था जिसके व्यक्तित्व में—वह कर्ण और आज से ५० वर्ष पूर्व महाराजा हरिसिंह तथा महारानी तारादेवी की गोद में जब नन्हा-सा शिशु किलकारी भरता हुआ सूर्य-बिंब-सा आया होगा तो स्वाभाविक रूप से माता-पिता ने उसका नाम कर्ण रख दिया होगा। कर्ण जो गौरवशाली चेतना का अमृतपुंज था और जिसका तेजोमय धीरोदात्त व्यक्तित्व युग कल्पना का विराट् बिंदु था।

डा० कर्णसिंह का सौम्य व्यक्तित्व इतिहास-पुरुष के उस नाम का प्रतिबिंब है। इससे कम समय में अथवा कहें तो अल्पायु में ही उन्हें जो गौरव मिला वह देश के किसी भी अन्य व्यक्ति को मिला हो, यह मुझे नहीं लगता। और उनके इस गौरव के पीछे उनका राजप्रासाद में जन्म लेना नहीं है, बल्कि स्वयं की उनकी प्रज्ञा-बुद्धि ,जीवंत ज्ञान-पिपासा, मानवोचित गरिमा, बाल सुलभ सरलता, मनो-विनोदी स्वभाव, व्यक्तित्व का खुलापन, मित्रों के प्रति अगाध अपनापन तथा साहित्यिक-सांस्कृतिक-बौद्धिक और आध्यात्मिक अनुराग है।

उनके व्यक्तित्व में कश्मीर की वादियों की सुषमा और डल और वूलर जैसी अनेक झीलों का सौरभ है, नगाधिराज हिमालय की हिमाच्छादित शैल-शिखरों की ऊर्जा और तवी जैसी सतत कल्लोलित नदी की प्रवाहमान मधुरता है, केसर की मादकता और अमरी सेबों की लाली है तथा उन सबों से भिन्न वैष्णो देवी तथा मार्तण्ड जैसे मंदिरों की आध्यात्मिक गुरुता है। कश्मीर की शैव परंपरा, शाक्त-परंपरा, संस्कृत परंपरा—जिसमें शंकराचार्य से लेकर बिल्हण और कल्हण तक का गौरवगान है, डा० कर्णसिंह के व्यक्तित्व में परिस्फुटित है। और उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अपनी विशेषताओं को उन्होंने कभी ओढ़ा नहीं, दिग्दर्शन नहीं कराया—वरन अध्यात्म को वर्तमान योगी महर्षि अरविंद के वैचारिक परिवेशों में आत्मबद्ध किया और राजनीतिक विचारों की चेतना का स्रोत पं० जवाहरलाल नेहरू को माना। यही कारण है जो आज के राजनीतिक चाकचिक्य में पलाशवन के समान उनका व्यक्तित्व अलग चमकता है या पहचान रखता है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण उनका १९७७ और १९८० का लोकसभा चुनाव है। १९७७ में उत्तर भारत में जब कांग्रेस के सभी दिग्गज, यहां तक कि इन्दिरा जी तक की हार हुई, और सभी सीटें जनता पार्टी के झोले में चली गईं, अकेले डाक्टर कर्णसिंह विजयी हुए। इसी प्रकार १९८० के मध्यावधि चुनावों में उत्तर भारत की अधिकांश सीटें इंदिरा कांग्रेस को हासिल हुई लेकिन डा० साहब

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपने बल-बूते पर विजयी हुए। इस प्रकार यह साबित होता है कि वे किसी वृक्ष की शाख पर कोई बल्लरी नहीं हैं, स्वयं एक मजबूत जड़ हैं, जिसे न तो आंधियां हिला पाती हैं, न झोंके डिगा पाते हैं।

मैंने पीछे यह लिखा है कि जितनी कम उम्र में उन्हें जो ख्याति मिली, वह देश में और किसी व्यक्ति को संभवतया नहीं मिली होगी। उन्नीस वर्ष की उम्र में वे जम्मू-कश्मीर के रीजेंट और सदर-ए-रियासत हुए, तैंतीस वर्ष की उम्र में वे जम्मू कश्मीर के राज्यपाल नियुक्त हुए तथा मात्र पैंतीस वर्ष में केंद्रीय मंत्रिमंडल के सदस्य। वर्षों काशी हिंदू विश्वविद्यालय के प्रो-वाइस चांसलर रहे तथा नेहरू-मेमोरियल के मंत्री और दिल्ली विश्वविद्यालय से राजनीति शास्त्र में एम०ए०की परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त कर योगी अरविंद का राजनीतिक दर्शन विषय पर शोध कर पी-एच० डी० की डिग्री प्राप्त की। हिंदी, उर्दू, डोगरी, संस्कृत, अंग्रेजी, फ्रेंच तथा पंजाबी के जानकार ही नहीं, बल्कि उद्भट विद्वान के रूप में डा० कर्ण-सिंह की ख्याति रही है। व्यक्तित्व, कृतित्व, नेतृत्व और वक्तृत्व—इन चारों गुणों का मणि-कांचन योग डा० साहब में एकसाथ देखने को मिलता है, जो विरले व्यक्तियों में ही पाया जाता है।

डा० कर्णसिंह डोगरी के एक माने हुए कवि, अंग्रेजी के सिद्धहस्त लेखक, संस्कृत और हिंदी के सुप्रसिद्ध वक्ता तो हैं ही, लेकिन इनके अतिरिक्त संगीत और चित्रकला में भी उनकी गहरी पैठ है। जब कभी आत्मिक गोष्ठियों में, मित्रों के आग्रह पर उन्होंने सितार या वीणा पर भक्तिपूर्ण स्वरचित रचनाएं गाकर सुनाई हैं, तो श्रोता झूम उठे हैं।

इस प्रकार डा० कर्णसिंह समन्वय हैं साहित्य, राजनीति, दर्शन और अन्वेषण के। उनके व्यक्तित्व में सुघरता और लावण्य धीरज और धर्म के समान रूपायित हैं। उनकी राजनीति में दर्शन है तथा दर्शन में साहित्य। राजमहल में पैदा होकर भी वे राजाओं-महाराजाओं के खान-पान, मस्ती-मौज, विलास-केलि से कोसों दूर रहे। न शराब की घूंट, न सिगरेट का कश। निष्ठा, नैतिकता, मर्यादा और ज्ञान पिपासा, इनके साये में ही इनका पूरा जीवन बंधा रहा।

९ मार्च, १९८१ को डा०कर्णसिंह अपने पावन जीवन के ५० वर्ष पूरे कर रहे हैं। उनका जीवन सांस्कृतिक, साहित्यिक, आध्यात्मिक और नैष्ठिक मूल्यों की धरती पर खिला गुलाब का कोई फूल है, जिसकी सुगंध कश्मीर से लेकर कन्या-कुमारी तक व्याप्त है। देश का हर प्रबुद्ध व्यक्ति उन्हें श्रद्धा से देखता है। राम कृष्ण मिशन, भारतीय विद्या भवन, अरविंदाश्रम, जवाहरलाल नेहरू मेमोरियल ट्रस्ट, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, विश्व हिंदी सम्मेलन, डोगरा हिमाचल संस्कृति संगम, विश्व संस्कृत परिषद, हरितारा चैरिटेबुल ट्रस्ट तथा रघुनाथ धार्मिक न्यास; वन्यजीव परिषद, भारतीय अंतर्राष्ट्रीय केंद्र आदि के वे केंद्र बिंदु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रहे हैं। उनके व्यक्तित्व के लावण्य में जहां कश्मीर की शैवाली हवाओं का योग-दान है, वहीं गरिमा तथा बौद्धिक परिपक्वता में पुराणों, उपनिषदों तथा शास्त्रों के अध्ययन का प्रभाव। और सबके बावजूद यदि उनके मधुर व्यक्तित्व की तह में जाकर देखा जाय तो यह भी तथ्य प्रकट होगा कि महारानी यशोराज्यलक्ष्मी जैसी अर्धांगिनी का योग भी उनके जीवन का एक सत्वर संयोग है।

हमारी यही कामना है कि डा० कर्णसिंह अपने जीवन और यौवन की अक्षय सौम्यता लिए शतायु हों तथा सांस्कृतिक दूत के रूप में इस राष्ट्र का नेतृत्व करें।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपनी परिचय

एक सौम्य-सांस्कृतिक व्यक्ति के रूप में डा० कर्णसिंह की अपनी पहचान है। यहां उनके लेखों और भाषणों से चुनकर छह ऐसे निबंध प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जो उनके व्यक्ति-विकास का प्रतिनिधित्व करते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अणु युग में धर्म

आज संसार के प्रत्येक महान धर्म के समक्ष एक बड़ा संकट उपस्थित है, जो किसी अन्य धर्म के उत्पीड़न से उत्पन्न नहीं हुआ है और न ही साम्यवाद की धमकी से—जो स्वयं ही एक प्रकार का धर्म बन बैठा है; निजी शास्त्र तथा परस्पर संघर्षरत अभ्रान्ति का दावा करनेवाले 'साम्यवादी गुरुओं' को अपनाकर! यह संकट तो आधुनिक जीवन पर विज्ञान और औद्योगिकी के गहन प्रभाव से उत्पन्न होता है जो हमारे देखते-देखते संसार का नक्शा बदल रही है। पुराना नष्टप्राय है, नया उत्पत्ति हेतु संघर्षरत है और हम अपनेको अतीत और भविष्य के मध्य लटका पा रहे हैं।

पाश्चात्य देशों में युवा पीढ़ी के मनों पर धार्मिक मूल्यों का प्रभाव लुप्त हो चुका है, तथापि भौतिक समृद्धि अपने-आपमें युवा पीढ़ी की गहन अभीप्साओं को तृप्त करने में नितांत अपर्याप्त रही है। तकनीकी परिवर्तनों की तीव्र गति के साथ-साथ वृद्ध और युवा पीढ़ी के मध्य बढ़ती हुई अपरिचितता एवं विरोध ने एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के लिए किन्हीं विशिष्ट स्वीकार्य आदर्शों अथवा मूल्यों के आदान-प्रदान को अधिकाधिक कठिन बना दिया है। धनिक देशों में निर्धनता की कमर तोड़ दी गई है, किंतु इससे मानव-सौख्य में कोई ठोस वृद्धि हुई प्रतीत नहीं होती। सहस्रों वर्ष पूर्व उपनिषदीय ऋषियों ने कहा : 'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्याः' (धन से मनुष्य को सन्तोष प्राप्त नहीं होता); और जब अन्ततः सदियों की दरिद्रता के चंगुल से मानव-ज़ाति का अधिकाधिक भाग छुटकारा पाता जा रहा है तो इस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दृष्टिकोण की वैधता और भी स्थापित होती जा रही है।

हमारे देश में आज भी लाखों लोग दरिद्रता की सतह से भी नीचे रहते हैं, जिन्हें सभ्य जीवन की मौलिक आवश्यकताएं भी उपलब्ध नहीं हैं, और हमें यह भरसक प्रयत्न करना है कि अगले दशक में कम-से-कम न्यूनतम संभ्य जीवन-स्तर तो सभी भारतीय नागरिकों को सुलभ हो सके। तथापि विकासशील समाज में धार्मिक मूल्यों की समस्या रहती है और आर्थिक उत्थान की प्रतीक्षा में इसे स्थगित नहीं रखा जा सकता। वस्तुतः हमारे जैसे रूढ़िवादी समाज में तो यह समस्या और भी अधिक तीव्र है, जिसे अगले दशक में विज्ञान और औद्योगिकी के झक-झोरनेवाले बढ़ते हुए प्रभाव में अनुभव करना होगा। अतएव यह आवश्यक है कि हम इस महत्त्वपूर्ण समस्या के प्रति अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करें, विशेषतया जबकि एक ओर से यह शोर उठता है कि समूचे धर्म को उखाड़ फेंको और दूसरी ओर धर्म की असमीचीन और दकियानूसी व्याख्या प्रस्तुत की जाती है।

वैदिक युग से आज तक, जिस धर्म को हिंदू धर्म कहा जाता है उसने इस देश के भाग्य-निर्माण में एक निर्णायक की भूमिका निभायी है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि अन्य जो महान विश्व-धर्म इस देश में फलते-फूलते रहे उनके महत्त्व को कम करना है वरन इस तथ्य पर जोर डालना है कि हिंदू धर्म ने मुख्यतः युग-युगांतर से हमारे राष्ट्रीय मानस की दिशाएं निर्धारित की हैं। वास्तव में सदियों के विदेशी शासन और अकल्पनीय राजनीतिक खण्डों के बावजूद भारत की राष्ट्रीय एकता प्रमुखतया इसीके कारण कायम रह सकी है। आज, विजय और विनाश या विपत्ति, आशा और निराशा की धूप-छांव के अनेकों परिवर्तनों के बाद अंततः भारत मानव-जाति के सप्तांश को अपनी सीमाओं में समेटे हुए एक प्रभुसत्तासंपन्न स्वतंत्र गणराज्य के रूप में उदित हुआ है। हमारे संविधान में उचित रूप में यह घोषणा की गयी है कि भारत एक धर्म निरपेक्ष राष्ट्र होगा। इसका तात्पर्य यह है राज्य किसी धर्म-विशेष के प्रति पक्षपात नहीं करेगा तथा कानून की निगाह में प्रत्येक नागरिक समान है। यह उतना ही उचित है जितना कि इसे होना चाहिए। और यह सन्तोषप्रद बात है कि विभाजन के घाव तथा अपने निकटतम पड़ौसी की धर्मांधता के बावजूद हमने पिछले बीस वर्षों में अपने धर्म-निरपेक्ष आधार को और दृढ़ बना दिया है।

तथापि, धर्म-निरपेक्षता का यह अर्थ न है और न ही हो सकता है कि भारत के लोगों को अपनी धार्मिक धरोहर को भुला देना चाहिए। चूंकि अधिकतर भारतीय हिंदू हैं, परमाणु युग के संदर्भ में हिंदू धर्म की पुनर्व्याख्या बहुत ही महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

हिंदू धर्म की महान सामर्थ्य में एक विशेषता यह रही है कि ग्रंथ-विशेष अथवा रूढ़िविचार के स्थान पर आध्यात्मिक साक्षात्कार पर आधारित होने के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कारण तथा किसी विशेष प्रकार के चर्च सदृश ढांचे से मुक्त होने की वजह से, यह सर्वदा सृजनात्मक पुनः प्रतिपादन की क्षमता रखता है। सहस्रों वर्ष पूर्व के वैदिक युग से आज तक, उपनिषदों के मौलिक सिद्धांतों पर आधारित कर, बदलते समय की आवश्यकताओं के अनुरूप हिंदू धर्म की पुनर्व्याख्या की जाती रही है। हमारी सदी में शाश्वत सत्यों के स्वामी विवेानन्द और रमण महर्षि, श्री अरविन्द और महात्मा गांधीं जैसे संतों ने सजीव पुनर्व्याख्या कर समाज को एक नयी चेतना प्रदान की है।

आज, विज्ञान और औद्योगिकी की आश्चर्यजनक प्रगति के समक्ष प्राचीन अन्धविश्वास एवं रूढ़िगत सिद्धांत अधिक टिक नहीं पायेंगे। तो भी विज्ञान को अपना वह पिछला दर्प त्यागने को बाध्य होना पड़ा है जो इस बात पर पहले छा गया था जबकि वैज्ञानिक यह दावा करने लगे थे कि उन्होंने जीवन के सभी रहस्यों का पता लगा लिया है। वास्तव में जितनी गहराई से जीवन पुद्गल के हृदय को टटोलता है और जितना दूर तक बाह्य अन्तरिक्ष की निस्सीम विशालता में तैरता है उतना ही इसे भान होने लगता है कि जिस ब्रह्माण्ड में हम रहते हैं उसकी जानकारी का मात्र श्रीगणेश हुआ है। और विज्ञान अपने चरमोत्कर्ष में अस्तित्व के असीमित और अनन्त रहस्यों के समक्ष धार्मिक दृष्टिकोण सदृश विनीत हो जाता है। इसलिए ऊपरी तौर पर जबकि ऐसा प्रतीत हो सकता है कि विज्ञान और धर्म के मध्य तीव्र विरोध है, गहन दृष्टिकोण से प्रकट हो जाता है कि जीवन के रहस्य को समझने के इन दो महान प्रयासों में परस्पर झुकाव या सामंजस्य की संभावना है : विज्ञान की बाह्य अन्तरिक्ष तथा पुद्गल के स्वरूप को समझने की खोज समानान्तर धर्म की आन्तरिक अन्तरिक्ष और मानव-आत्मा के स्वरूप की खोज है।

इस व्यापक संदर्भ में मैं उन चार मूलभूत सिद्धान्तों को प्रस्तुत करने का साहस कर रहा हूं जिन्हें हमें अवश्यमेव अपनाना चाहिए, यदि धर्म को मानव जाति के अधिकतर भाग के लिए एक बाह्य आडम्बर की वस्तु न रहकर इसके विपरीत नवीन सामंजस्य और समन्वय की शक्ति के रूप में विकसित होना है, जिसके अभाव में ताप न्यूक्लीय शस्त्रों के युग में मानव जाति का क्रमिक अस्तित्व ही अनिश्चित हो गया है। ये हैं :

१. **मानव जाति की एकता :** ऋग्वेद का 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सिद्धान्त अब तक वास्तविकता बन गया है। ध्वनि से भी तीव्र गति से यात्रा करने के युग का उदय हो रहा है, और विश्वव्यापी दूर-संचार व्यवस्था की असाधारण प्रगति ने दुनिया की दूरी को हमारे देखते-देखते इतना कम कर दिया है कि एक सिद्धांत, एक धारणा जो हमारे ऋषियों को प्रेरणा के क्षणों में प्राप्त हुई थी उसकी अब यथार्थ महत्ता एवं समीचीनता प्रकट हो गयी है। हमारे सतत अस्तित्व के लिए

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मानव के सहयोगात्मक सृजन तथा संहार की क्षमता के मध्य बढ़ते हुए अन्तर ने एक गम्भीर संकट उत्पन्न कर दिया है, और जब तक हम राष्ट्र, जाति, धर्म अथवा मत-मतान्तरों की सीमाओं को तोड़कर समस्त मानव-जाति को एक परिवार के रूप में देखना प्रारम्भ नहीं करेंगे तो मानव अधिक दिनों तक जीवित न रह पायेगा।

२. **मानव की दिव्यता :** उपनिषदों में मानव-जाति के लिए एक अद्भुत उक्ति है : 'अमृतस्य पुत्राः'। इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक मनुष्य, जो इस पृथ्वी तल पर जन्म धारण करता है, चाहे जहां का निवासी हो अथवा चाहे जो उसकी मान्यताएं हों, उसमें वही दिव्य ज्योति जगमगाती है जो इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। इस दृष्टिकोण से मनुष्य मात्र अणुओं की आकस्मिक गठरी ही नहीं है, किन्तु एक दिव्य सिद्धान्त की साकार अभिव्यक्ति है जो मानव महत्ता की अनुभूति को उसका जन्मसिद्ध अधिकार बना देती है। ईश्वर की दिव्यता का मात्र नारा ही पर्याप्त नहीं है। ईश्वर यदि है तो दिव्यता तो उसमें निहित ही है, और इसके लिए प्रमाण प्रस्तुत करने अथवा इसे दोहराने की आवश्यकता ही नहीं। आज तो हमें मानवीय दिव्यता के सिद्धांत की ओर अग्रसर होना चाहिए, जिससे सहज ही मानव व्यक्तित्व की अपरिहार्य गरिमा प्रकट होती है।

३. **सब धर्मों की एकता :** 'सहिष्णुता' के स्थान पर 'एकता', क्योंकि सहिष्णुता एक निषेधात्मक प्रत्यय है जिसका तात्पर्य हुआ अपने धर्म के साथ-साथ अन्य धर्मों को भी वर्दाश्त किया जाये (लाचारीवश !); लेकिन इतना ही पर्याप्त नहीं है। आवश्यकता है ऋग्वेद में प्रतिपादित इस सिद्धान्त की सार्थक स्वीकारोक्ति की :

एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति

(सत्य एक है, बुद्धिमान इसका अनेकों प्रकार से वर्णन करते हैं।) 'मुण्डकोपनिषद्' में इसे इन सुन्दर शब्दों में अभिव्यक्त किया गया है :

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे स्तं
गछन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान नाम रूपाद्विमुक्तः
परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।

(जिस प्रकार विभिन्न उद्गमों से उत्पन्न हुई नदियां अपना नाम और रूप त्यागकर सब सागर में विलीन हो जाती हैं उसी प्रकार किसी भी स्थान से आये हुए विद्वान नाम-रूप आदि भेदों को त्यागकर उसी परम पुरुष को प्राप्त होते हैं।) वास्तव में मेरे विचार में धर्म-निरपेक्षता का सच्चा आधार स्पष्ट शब्दों में यह स्वीकार कर लेने में निहित है कि सब धर्म एक ही लक्ष्य की ओर जाने के पृथक्-पृथक् मार्ग हैं। धर्म तो जीव और ब्रह्म के सायुज्य के शाश्वत रहस्य को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विकसित करने अथवा हमारी वाह्य तथा आन्तरिक सत्ता में अद्वैत स्थापित करने के लिए व्यापक पृष्ठभूमि एवं मनोवैज्ञानिक प्रेरणा प्रदान करते हैं। इस रूप में देखने पर सन्देह एवं घृणा से ग्रसित आज के जगत् में धर्म एक महान एकीकरणीय शक्ति सिद्ध हो सकता है, बजाय संघर्ष के उद्गम स्थान के; जैसा कि प्रायः भूतकाल में होता रहा है।

४. समाज का पुनर्निर्माण : हमारा कर्तव्य है कि हम 'बहुजन सुखाय, बहुजन हिताय च' के लिए कार्य करें। हमें हमेशा याद रखना चाहिए कि जब तक लाखों लोग इस देश में पर्याप्त भोजन, वस्त्र, आवास और शिक्षा से वंचित हैं, मानवीय दिव्यता की हमारी सैद्धान्तिक धारणा का उनके लिए कोई विशेष अर्थ न होगा। स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे कि जो भूखा है या नंगा है उसे धर्मोपदेश देना पाप है और आज स्वतन्त्र भारत में हमारा यह अनिवार्य प्रयत्न होना चाहिए कि हम अपने देशवासियों के कष्टों का निराकरण कर एक ऐसे नये समाज का निर्माण करें जिसमें प्रत्येक भारतीय को सहज सभ्य जीवन की कम से कम मूलभूत आवश्यकताओं की उपलब्धि का अवसर तो मिले। इस प्रसंग में अस्पृश्यता सदृश बेहूदी दकियानूसी बातों को तत्काल एवं सदा के लिए समाज से दूर हटा देना चाहिए। केवल मानसिक प्रपंच में पड़कर हम ऐसी कुरीति का औचित्य सिद्ध करना स्वीकार नहीं कर सकते जो हमारे राष्ट्र पर घोर कलंक रही है तथा उन आधारभूत सिद्धान्तों के नितान्त प्रतिकूल है जिनकी कि मैंने ऊपर व्याख्या की है।

मेरा निवेदन यह है कि केवल हिन्दू ऋषि-मुनियों के आध्यात्मिक अनुभवों पर ही नहीं वरन अन्य महान विश्व-धर्मों के अनुभवों पर आधारित ये सिद्धान्त मानव की वर्तमान शोचनीय अवस्था के बहुत ही समीचीन हैं। मेरी धारणा है कि इन सिद्धान्तों की निर्बाध एवं उदार स्वीकारोक्ति पर ही धर्म परमाणु युग में सार्थक सिद्ध हो सकता है, तथा समाज के लिए उन मौलिक प्रत्ययों की नींव प्रदान कर सकता है, जिनपर भौतिक कल्याण एवं मानसिक उत्थान का समायोजित तथा व्यवस्थित स्वरूप निर्मित किया जा सकता है। यदि धर्म संकुचित रूढ़िवादिता के चंगुल में फंसा रहा तो बढ़ती हुई पीढ़ियों के लिए यह अधिकाधिक अनुपयुक्त होता जायेगा और मानवता एक ऐसी रिक्तता लिये रहेगी जिसे भौतिक प्रगति का कोई भी आयाम पूरा न कर पायेगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्री अरविन्द का संदेश राजनीतिक और दार्शनिक

राजनीतिक पक्ष

इस भूमण्डल पर विकास के सहस्रों वर्षों के बाद आज मानवता अपनी नियति के निर्णायक चौराहे पर पहुंच गयी है। सघनतम पदार्थ, जिससे सृजनारम्भ होता है, से बाहर निकलकर आदमी बेजोड़ शक्ति-सम्पन्न जाति के रूप में उदित हुआ है। यह विज्ञान और टेकनोलॉजी की शक्ति है, गुरुत्वाकर्षण की सीमाओं को भेदने की शक्ति है और बाह्य अन्तरिक्ष के विशाल विस्तार में उड़ान भरने की शक्ति है, सेल और अणु की बनावट की जांच की शक्ति है, वह शक्ति है जो सर्वथा अविश्वसनीय लगती है, जब आप इस तथ्य पर विचार करते हैं कि करोड़ों वर्षों के विकास का ही परिणाम मनुष्य भी है।

यह एक चमत्कार है कि मनुष्य इस स्तर पर पहुंच गया है और विज्ञान तथा टेकनोलॉजी की इस शक्ति ने आज मानव-जाति को वह क्षमता प्रदान कर दी है कि इनका उपयोग बुद्धिमत्ता से करने पर वह धरती के दारिद्र्य और अज्ञान को दूर भगा सकता है, हर जनमनेवाले मानव प्राणी को सुन्दर जीवन-स्तर से आश्वस्त कर सकता है और अभाव, भुखमरी तथा बीमारी के अनस्तित्व का आश्वासन दे सकता है। दूसरी ओर इसी विज्ञान और टेकनोलॉजी की शक्ति ने मानव-जाति के हाथों में भयानक विध्वंसकारी शक्ति दे दी है। सामूहिक विनाश के अत्यन्त भीषण हथियार आज मौजूद हैं, जो कभी मानव की कल्पना-दृष्टि से अतीत थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और धीरे-धीरे इन हथियारों का जखीरा किया जा रहा है और यदि उन हथियारों के एक हिस्से का भी प्रयोग किया जाये, तब न केवल सम्पूर्ण मानवता का विनाश हो जायेगा, बल्कि इस ग्रह पर जीवन ही समाप्त हो जायेगा।

कई अन्य प्रकार के जीव भी इस पृथ्वी पर रहे हैं। आप जानते हैं कि डिनोसोर्स लाखों साल तक रहे हैं और जब वे गये, अपेक्षाकृत शान्ति से चले गये। यदि आदम-जाति जायेगी तो वह रेडियो-सक्रियता के ऐसे गर्त में गिरेगी, तब शक है कि कुछ बचा भी रह पायेगा या नहीं। इसलिए हम ऐसी स्थिति में हैं कि मानव-जाति चौराहे पर है। एक पथ समृद्धि और कल्याण की ओर जाता है और दूसरा पूर्ण और नितान्त विनाश की ओर। समस्या है आदमी कौन पथ चुनेगा? पिछली कई शताब्दियों में विज्ञान (मानव-ज्ञान) में असाधारण वृद्धि हुई है, पर ज्ञान (बुद्धिमत्ता) में उतनी वृद्धि नहीं हुई। और जब ज्ञान और विज्ञान में विलगाव होता है, भयानक खतरे की शुरुआत होने लगती है।

दुनिया के कई देशों में आज भौतिक समृद्धि है, फिर भी अपने-आपमें इस भौतिक समृद्धि से मानवता सुखी नहीं हुई है। जैसा कठोपनिषद् का वचन है, 'नवित्तेनः तर्पणीयो मनुष्याः'—अर्थात् केवल धन से ही मनुष्य कभी सन्तुष्ट नहीं हो सकता; हम इसे अपनी आंखों के सामने अधिकाधिक साफ ढंग से घटित होता हुआ देख रहे हैं। पश्चिम के समृद्ध समाजों की युवा पीढ़ी ने उन्हीं भूमियों पर विद्रोह करना शुरू कर दिया है, जिनपर उनके भौतिकवादी समाज का जन्म हुआ है, उन आधारभूत पूर्व-कल्पनाओं और पूर्व-धारणाओं के खिलाफ विद्रोह, जिन पर उनकी भौतिक समृद्धि निर्मित की गयी है। कुछ नया पाने की प्रबल खोज जारी है। आज एक आन्तरिक हलचल है। प्राचीन मर रहा है और नया जन्म धारण करने के लिए संघर्ष कर रहा है। हमारी पीढ़ियां भूत और भविष्य के मध्य अस्थिर असमंजस में हैं। ऐसे समय में, मुझे ऐसा लगता है कि हमें उस समस्त ज्ञान की आवश्यकता है जो हम प्राप्त कर सकें, महापुरुषों का ज्ञान, द्रष्टाओं का, ऋषियों का, जिन्होंने सत्य का साक्षात्कार किया है और उसका प्रतिपादन किया है। इसीलिए श्री अरविन्द का सन्देश आज विशेष तौर से संगत है क्योंकि वह मानवता के विकास से उत्पन्न इन समस्याओं की बात करता है और हमारे सामने तसवीर पेश करना चाहता है कि भविष्य क्या होगा, यदि हम सही रास्ता पकड़ने के लिए बुद्धिमत्ता रखते हैं। पिछले पांच हजार वर्ष के अपने चक्करदार इतिहास में भारत भारी झंझावातों के बीच से गुजरा है। पर भारत के सम्बन्ध में एक अनोखी बात है, जो इसे भूत में विकसित अन्य सभ्यताओं—बेबीलोनियाई, मिस्री, ग्रीक और रोमन—से अलग करता है और यद्यपि इनमें से कुछ भारतीय सभ्यता के उपाकाल की समकालीन हैं, फिर भी सारी की सारी समाप्त हो गयीं और अब केवल संग्रहालय-विशेषज्ञों और शोधकर्ताओं के मस्तिष्क में रह गयी हैं; जबकि भारत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपनी परम्परा के साधनों से सम्पर्कित और भूतकाल की अपनी संस्कृति पर दृढ़ता से आधारित रहकर गतिशील और प्राणवान बना हुआ है। इसका कारण क्या है? एक प्रमुख कारण यह तथ्य है कि भारत में जब भी ऐसा लगा कि अतीत समाप्त होने जा रहा है, जब भी ऐसा लगा कि भारत की आत्मा अन्तिम रूप से अत्याचारी ताकतों का ग्रास बनने जा रही है—उन विनाशकारी शक्तियों का जो इसके इतिहास में अगणित बार उठ खड़ी हुईं—ऐसे महापुरुषों और महिलाओं का जन्म हुआ जिन्होंने भारत-ज्योति को फिर से प्रज्वलित किया, जिन्होंने फिर से इस देश की जनता को नयी आस्था, साहस और उत्साह दिया।

ये महान पुरुष और महिलाएं—इनमें से कुछ ज्ञात हैं, कुछ को अवतार के नाते पूजा जाता है, अन्यों को सन्तों के नाते पूजा जाता है और कुछ दूसरे रहस्यमय ढंग से अज्ञात रहकर काम करते रहे और यह बात साधारण समझ से परे है। पर सभीने अत्यन्त आरम्भकाल से भारत की निरन्तरता की दिशा में योगदान किया, वेद और उपनिषद् काल से, बुद्ध और पुराण काल से, दक्षिण भारत के महान आचार्य और मध्यकाल के सन्त गायक। सचमुच तभी १९वीं शताब्दी में यहां महान नवजागरण हुआ। शताब्दियों के दौरान हमारा दर्शन और धर्म लगातार कैसे नयी-नयी व्याख्या में रूपान्तरित होते रहे हैं, यह एक मोहक इतिहास है। यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसकी चर्चा मैं यहां नहीं करूंगा, चाहे इसके लिए मैं योग्य क्यों न रहूं क्योंकि मैं खासतौर से श्री अरविन्द की बात कर रहा हूं। पर श्री अरविन्द को समझने के लिए मैं अपके सामने भारतीय नवजागरण की महान उपलब्धियों को रखना चाहूंगा। क्योंकि जब तक हम उस कलेवर को नहीं जानते कि जिसमें आदमी ने काम किया, जिया और प्रसिद्धि प्राप्त की तब तक उसके प्रभाव का पूर्णतः मूल्यांकन सचमुच सम्भव नहीं होगा। यहां मैं श्री अरविन्द के अधिकतर वाह्य राजनीतिक प्रभाव की बात करूंगा। उनके दार्शनिक रूप की चर्चा आगे करूंगा। मैं यह कहना चाहता हूं कि दोनों को अलग-अलग नहीं किया जा सकता; क्योंकि श्री अरविन्द में ये दोनों धाराएं, राजनीति और अध्यात्म सचमुच एक ही हैं। वे एकसाथ प्रवाहित होते हैं और इड़ा तथा पिंगला की तरह दो किनारे, उनके जीवन के दो तट, अन्तिम साक्षात्कार में अन्ततः मिल जाते हैं।

श्री अरविन्द के सन्देश के राजनीतिक पहलू को समझने के लिए आवश्यक है कि हम महान भारतीय नवजागरण के बारे में जानें, जो आप जानते हैं कि १९वीं शताब्दी के मध्य में राजा राममोहन राय से प्रारम्भ हुआ। यह भारी प्रस्फुटन का काल था। दुनिया के समूचे इतिहास में, पेरीक्लीज और प्लेटो के समय में ग्रीकों के सम्भव अपवाद को छोड़कर आप मानव क्रिया-कलाप के हर क्षेत्र में प्रतिभा और बुद्धि-वैभव का इतना भारी खजाना केवल आधी शताब्दी के बीच के संक्षिप्त काल में नहीं प्राप्त कर सकेंगे, जैसा कि इस अवधि में बंगाल में देखने को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मिलता है। बंगाल ने ही सबसे पहले अंग्रेजी शासन के असर का अनुभव किया। विदेशी प्रभाव को आत्मसात् करने की भारी क्षमता भारत में सदैव रही है और साथ ही इसके प्रति सृजनात्मक प्रतिक्रिया भी यही कुछ १९वीं शताब्दी के मध्य-काल में हुई।

सन् १८५७ में, भारत में प्रथम स्वाधीनता-युद्ध का वर्ष जिसे हम भारतीय 'गदर' के नाम से जानते हैं. भारत टूटा हुआ था और अपने विदेशी विजेताओं के चरणों में भूलुण्ठित था। यह ऐसी पराजय, ऐसी गुलामी, ऐसी पराधीनता थी जो न केवल भौतिक थी, बल्कि यह बौद्धिक दासता भी थी। लोगों ने अपनी परम्परा की वैधता पर शक करना आरंभ कर दिया और सोचने लगे कि भारत में कुछ भी अच्छा नहीं है और सारी शक्ति बाहर से आयी। ऐसे समय में पहले-पहल हिन्दू समाज सुधार आन्दोलन में जागरण शुरू हुआ। यह स्वाभाविक था क्योंकि अंग्रेजों के आने से पहले मुस्लिम बड़े पैमाने पर भारत के बड़े भू-क्षेत्र पर, खासतौर से बंगाल में शासन कर रहे थे। इसलिए अंग्रेजी प्रभाव के आने से मुस्लिम अधिक निराश हुए और ओट में हो गये, जबकि हिन्दू लोग, जो बौद्धिक दृष्टि से अधिक लचीले थे, अपने समाज को परखने लगे और उन्होंने जल्दी ही अनुभव कर लिया कि भारत की सबसे बड़ी कमजोरी स्वयं हिन्दू समाज में निहित है, जहां धर्म के नाम पर सभी तरह के हास्यास्पद अन्धविश्वास पुष्पित हुए, जहां वेदान्त की उदात्त दृष्टि, उपनिषदों की व्यापक दृष्टि कट्टरता और अज्ञान के कारण अन्धविश्वास की केवल रेगिस्तानी क्षीण-धारा में सिमट गयी। इसी कारण अपने समय के सर्वोत्तम मेधावी लोगों ने सबसे पहले हिन्दू सामाजिक सुधार पर ध्यान केन्द्रित किया।

एक तरह से यह धार्मिक आन्दोलन था। श्री अरविन्द लिखते हैं: "भारतीय जीवन के सभी बड़े आन्दोलन एक नयी आध्यात्मिक विचारधारा और एक नयी धार्मिक सक्रियता से शुरू हुए।" जवाहरलाल ने भी श्री अरविन्द के सम्बन्ध में लिखते हुए कहा, "यह महत्त्वपूर्ण है कि भारत के महान राजनीतिक जन-आंदोलनों के पीछे आध्यात्मिक पार्श्वभूमि वही है। यह भारतीय ऐतिहासिक जीवन के उन तथ्यों में से एक है।"

राजा राममोहन राय ने बंगाल में ब्रह्म समाज की स्थापना की। उनके दो प्रधान अनुयायी देवेन्द्रनाथ टैगोर और केशवचन्द्र सेन ने समयानुसार आदि ब्रह्म-समाज और भारत के ब्रह्म समाज की स्थापना की। श्री रानाडे और श्री भण्डार-कर ने महाराष्ट्र में १८६७ में प्रार्थना समाज की स्थापना की। पंजाब में महान आध्यात्मिक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने १८७५ में आर्य समाज की स्थापना की। इन सभी आन्दोलनों ने अपने-अपने ढंग से उन उपसंचयों को दूर करने का प्रयास शुरू किया, जो हिंदू धर्म में विदेशी प्रभुता की शताब्दियों की गुलामी के दौरान इकट्ठे हो गये थे। उस समय भारतीय पुनरुत्थान के अन्य अनेक कारण भी थे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और उनमें से कुछ की चर्चा फिर से की जा सकती है। सम्भव है, आज थियोसॉफिकल सोसाइटी उतनी महत्त्वपूर्ण न हो जितनी कभी पहले थी। पर जब १८७५ में मदाम ब्लावटस्की और कर्नल आलकाट ने न्यूयार्क में थियोसॉफिकल सोसाइटी की स्थापना की, भारतीय परम्परा के भीतरी महत्त्व को एक बार फिर वापस लाने के मुट्ठी-भर लोगों के इस कार्य का अवमूल्यन नहीं किया जा सकता। महान प्राच्य विद्या विशारद प्रो० मैक्समूलर, फरगूसन, कनिंघम और दूसरे अन्य भी पश्चिम के लोग, जिन्होंने अपना जीवन भारतीय परम्परा पर काम करते, हमारे लिए हमारी भाषा की, पुरातत्त्व की और हमारी संस्कृति की फिर से खोज करते हुए बिताया—उनके प्रति भारत पर गहराई से कृतज्ञता अर्पित करने का कर्ज है।

१९वीं शताब्दी के द्वितीयार्द्ध में भारत में भारी हलचल हुई, प्राचीन स्थापित परम्पराओं का भारी आलोड़न। पर अब तक उल्लिखित ये सारे आन्दोलन परम्परागत हिंदू धर्म के हृदय से बाहर रहे। हिंदू धर्म के मूल में एक क्रान्ति की आवश्यकता थी और सचमुच यह क्रान्ति श्री रामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानन्द के जरिये आयी। यहां जो मुद्दा मैं प्रस्तुत करना चाहता हूं वह यह है कि भारतीय नवजागरण और पुनरुत्थान १९वीं शताब्दी के मध्य शुरू हुआ और उसने पचास साल में भारत की चिन्तन प्रक्रिया में पूर्ण क्रान्ति कर दी।

इसके राजनीतिक निहितार्थ सुस्पष्ट हैं। भारत में अंग्रेजी वर्चस्व का कारण केवल उनकी सैनिक शक्ति नहीं थी, बल्कि इससे भी ज्यादा इस विश्वास के कारण कि पश्चिम के लोग बड़े होते हैं। एक बार जब यह भ्रम टूट गया, तब हमने अपनी परम्परा की शक्ति और गहराई को अनुभव करना शुरू किया। जब हम अपनी कमजोरी का कारण समझने लगे और उन्हें हटाने लगे तो अंग्रेजी शासन की समाप्ति केवल समय की बात ही रह गई। १८८५ में एलेन आक्टावियन ह्यूम नामक अंग्रेज ने इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना की, जिस पार्टी को आजादी दिलाना और उसके भी आगे जाना था। १८९३ में इंगलैण्ड में १४ साल व्यतीत करने के बाद श्री अरविन्द भारत वापस आ गये।

अपने २१ वर्ष के आरम्भिक जीवन के १४ साल विदेश में व्यतीत करने के बाद वे भारत आये थे—लगभग पूर्णतः पश्चिमी परम्परा में पलकर लैटिन, ग्रीक, इंगलिश और फ्रेंच में, और पूरी तरह से अपने देश के बाहर; फिर भी उनके संस्कार इतने प्रबल थे कि ज्यों ही वे वापस आये, राजनीतिक कार्यों में कूद पड़े। प्रत्यक्ष रूप में उनके पहले कार्यों में 'इन्दु प्रकाश' में छपी सात लेखों की एक माला थी, जो उस समय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पत्रिका थी; शीर्षक था—'पुराने के लिए नयी रोशनियाँ'। इसीमें श्री अरविन्द ने पहले-पहल अंग्रेजी शासन के खिलाफ, पश्चिमी मालिकों से प्राप्त भारतीय गुलामी के खिलाफ आवाज उठायी। श्री अरविन्द की राजनीतिक क्रियाशीलता अत्यन्त संक्षिप्त थी। १८९३ में वे आये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और सीधे बड़ौदा चले गये और वहां कॉलेज के उप-प्रधानाचार्य हो गये। १९०५ में उन्होंने अन्तिम रूप से कॉलेज छोड़ दिया और वंग-भंग के समय बंगाल चले गये। १९१० में वे पूर्णतः राजनीति के बाहर थे। इस तरह वे भारतीय आकाश में एक उल्का की तरह चमके, पर यह उल्का इतना शक्तिशाली और गतिशील था तथा इतना उज्ज्वल कि इसने अपने समय पर, और वास्तव में सभी काल के लिए अमिट प्रभाव छोड़ा।

श्री अरविन्द के राजनीतिक सन्देश के सम्बन्ध में मैं कतिपय प्रमुख मुद्दों की ओर आपका ध्यान आकृष्ट कराना चाहूंगा। पहला है—भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में जनता की भूमिका की स्पष्ट पहचान। उस समय तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पर तथाकथित नरमदलीय लोगों का वर्चस्व था। ये बहुत योग्य और अच्छे लोग थे—सर फिरोजशाह मेहता और दादा भाई नौरोजी, एम० जी० रानाडे और गोपालकृष्ण गोखले, उच्चतम चरित्र और विद्या-वैभव से सम्पन्न लोग—फिर भी इनके पीछे जनबल नहीं था। आरम्भ के वर्षों में कांग्रेस आराम-दायक क्लब जैसी थी, जहां लोग इकट्ठे होकर नम्र प्रस्ताव पास किया करते थे और अंग्रेज सरकार से धीरे-धीरे आजादी प्रदान कर देने की मांग करते थे। पर श्री अरविन्द ने समझ लिया कि इससे काम नहीं बनेगा। उन्हींके शब्दों में—" 'आवेदन, प्रार्थना और विरोध' की नीति के कारण भारत कहीं का नहीं रहेगा।" और वे पहले नेताओं में थे, जिन्होंने जनता के—सर्वहारा के महत्त्व को पहचाना था। और यह महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि कभी-कभी लोग कहते हैं कि वे भद्र लोग थे और जनता में दिलचस्पी नहीं रखते थे। इसी संदर्भ में मैं यहां १८९३ में 'इन्दु प्रकाश' में छपे उनके एक लेख का अंश रखना चाहूंगा :

> श्री फिरोजशाह सन्तुलित और सुविचारित ढंग से संयमित राजनीति को उदार ऊष्मा में अपने सौहार्द से आश्वस्त करते हुए कहते हैं कि अज्ञान और दुःख से जनता का जागरण पूर्णतः महत्त्व-हीन है और उस दिशा में शक्ति का थोड़ा भी व्यय पूर्णतः अपरिपक्व होगा···पर उसी दलित और अज्ञानी सर्वहारा के साथ—क्योंकि अब ईमानदारी, शक्ति और निर्णय में मध्यमवर्ग अपूर्ण सिद्ध हो चुका है—हम चाहें या न चाहें, उसी सर्वहारा के पास हमारी आशा का एकमात्र आश्वासन है, भविष्य में हमारा एकमात्र अवसर···। चाहे मुझे सिद्धान्तवादी और छिछोरा कहा जाय। मैं फिर दुहराता हूं कि हमारा पहला और पवित्रतम कर्त्तव्य है सर्वहारा का उत्थापन और जागरण। और फिर सर्वहारा, जैसा कि मैंने बतलाने का प्रयास किया, स्थिति का वास्तविक संचालक है। वह निर्जीव है और जड़ भी, वह वास्तविक शक्ति के नाते कुछ भी नहीं, पर वह बहुत बड़ी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निहित शक्ति है, समझदारी और प्रकाशन में चाहे जो सफल हो, उसी तथ्य के कारण उसकी शक्ति भविष्य का नियन्ता हो जाती है।

इसलिए उनका पहला महत्त्वपूर्ण सैद्धान्तिक योगदान है इस बात पर फिर से बल देना कि स्वाधीनता आन्दोलन में भारतीय जनता की साझीदारी के बिना यह सचमुच आगे नहीं बढ़ सकता। यदि उडुयन से उपमा लूं तो कह सकता हूं, यह ऐसा हवाई जहाज था, जो रनवे पर रेंग तो रहा था, पर ऊपर उठने की आवश्यक शक्ति और उत्तोलक उसके पास नहीं थे।

दूसरे वे अंग्रेजों के तीक्ष्ण और निर्भीक आलोचक थे। उनके मंच पर आने के पहले, भारतीय बुद्धिजीवियों में अंग्रेजों के प्रति प्रायः अन्धविश्वासी श्रद्धा थी। पर अरविन्द इंग्लैण्ड में १४ साल व्यतीत करके आये थे। उनका दिमाग पश्चिमी परम्परा से कुशाग्र हो चुका था और उन्होंने अनुभव किया कि यदि बौद्धिक दासता की बेड़ियों को तोड़ना है तो अंग्रेजों से आमने-सामने लड़ना होगा। उनकी अद्वितीय रचना से ही उद्धरण लें :

> मैं जानता हूं कि वे कठोर और हेकड़ीबाज हैं, कि वे बुरी तरह शासन करते हैं, कि उनमें कोई महत् या उदार भावना नहीं है और उनका चरित्र उन मुट्ठी-भर मालिकों का है, जो जेलाट के राष्ट्रों से घिरे हों। पर यह सब कहना साफ तौर से कहना है कि वे अत्यन्त साधारण आदमी हैं जो सर्वदा अद्‌भुत स्थिति में विराजमान हैं। सचमुच ही वे साधारण लोग हैं—न केवल साधारण लोग, बल्कि साधारण अंग्रेज—मध्यवर्गीय यहूदी किस्म के, ग्राफिक अंग्रेजी मुहावरे में, संकीर्ण दिल के और वणिकीय बुद्धि की आदत-वाले लोग हैं।

ऐसा उन्होंने १८९३ में लिखा, जब अंग्रेज अपनी शक्ति के शिखर पर थे। उनका अंग्रेजी भाषा पर अधिकार कमाल का था, जिसमें वे साफ तौर से और निर्भीक विरोध की बात करते थे, न केवल कट्टर विरोधी के रूप में, बल्कि ब्रिटिश शासन का सकारण और तर्कपूर्ण विरोध। यह सर्वथा नयी बात थी, भारतीय मंच पर पहले ऐसा नहीं घटा था। और वे अंग्रेजों पर वार करने में ही निर्भीक नहीं थे, बल्कि उस प्रशासन पर भी, जिसको ब्रिटिश राज ने स्थापित किया था। उदाहरण के लिए शैक्षणिक व्यवस्था के बारे में बोलते हुए उन्होंने कहा, "सार्वजनिक शिक्षण की हमारी व्यवस्था, अत्यन्त प्रवीणता से पूर्ण हत्या की वह मशीन है जिसे मानवी मूर्खता ने पहली बार आविष्कृत किया है, और हत्या न केवल आदमी के शरीर की बल्कि आत्मा की भी, जो आत्मा निजत्व की पवित्र आग है और जो मर्त्यप्राण की अपेक्षा अधिक पवित्र और मूल्यवान है।" इस तरह श्री अरविन्द भारत में एक अद्‌भुत व्यक्ति बन गये, क्योंकि वे मामले की तह में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सीधे जाते थे और निर्भीकता से अपने विचार रखते थे।

श्री अरविन्द का एक दूसरा पहलू भी है। वे पूर्णतः निषेधवादी नहीं थे। हर आलोचना के साथ उन्होंने कर्मधारा का आशावादी कार्यक्रम रखा और वह कार्यक्रम 'वायकाट' के मूल सिद्धान्त के गिर्द चक्कर काटता रहा, जो उस समय विदेशी से पिण्ड छुड़ाने और आजादी प्राप्त करने का बड़ा यन्त्र था। इस तरह उन्होंने आर्थिक वायकाट की पैरवी की, पर उन्होंने स्वदेशी का एक तार्किक उप-सिद्धान्त भी दिया। उन्होंने शिक्षा के बहिष्कार की बात कहकर राष्ट्रीय शिक्षा की व्यवस्था करने की वकालत की। उन्होंने अपनी संस्थाएं स्थापित कीं और सचमुच वे कलकत्ता गये, पहले राष्ट्रीय कॉलिज के प्रधानाचार्य बनकर। उन्होंने कचहरियों के बहिष्कार की बात की और कहा कि कचहरियां निष्पक्ष नहीं हैं। इसके स्थान पर उन्होंने राष्ट्रीय विवाचन अदालतों की राय दी। उन्होंने कार्य-पालिका के वायकाट की वकालत की और उसके स्थान पर राष्ट्रीय संस्था की बात कही। इन सबको उपलब्ध करने के लिए उन्होंने सामाजिक बहिष्कार की बात भी कही।

उनके सारे विचार उस समय फलदायी नहीं हो सके। पर खास बात है कि श्री अरविन्द की बातें केवल विध्वंसकारी नहीं थीं। उन्होंने अनुभव किया कि यदि अंग्रेजों को जाना है, यदि उनके द्वारा बनायी गयी संस्थाओं को जाना है, तो उनके स्थान पर राष्ट्रीय संस्थाओं को स्थापित किया जाना चाहिए। इस तरह उनके संपूर्ण विचार, यदि आप 'वंदेमातरम्' और 'कर्मयोगी' में प्रकाशित उनके लेख पढ़ें जब वे सक्रिय राजनीति में थे, रचनात्मक सुझावों से पूर्ण थे और साथ ही रचनात्मक कार्यक्रम भी उनमें थे। ब्रिटिश शासन के विरुद्ध कठोर आक्रमण तो था ही।

उस समय यही उनका प्रमुख राजनीतिक ढब था। पर जैसा कि मैंने पहले ही कहा उनके जीवन में आध्यात्मिक गुण सदैव महत्त्वपूर्ण रहा है। भारत की भूमि पर चरण रखते ही उन्हें अद्भुत अनुभूति हुई थी। जब वे कश्मीर की शंकराचार्य पहाड़ी पर गये तब शिव के शानदार मन्दिर से उन्होंने घाटी और झील के पार देखा—उन्हें महान और असीम शून्य का अनुभव हुआ। बड़ौदा में जब वे एक गाड़ी में यात्रा कर रहे थे तब उन्हें एक दूसरे प्रकार का अनुभव हुआ, और लौटने के कुछ ही दिन बाद वे योगाभ्यास में रुचि लेने लगे। एक महाराष्ट्र के योगी लेले ने उन्हें सर्वप्रथम योग की दीक्षा दी और इस यौगिक अभ्यास से उनको अत्यंत शक्तिशाली अनुभव हुए। इसलिए जब वे राजनीतिक रूप से सक्रिय थे, उनकी साधना और यौगिक क्रियाएं भी चलती रहीं। इसलिए आपके सामने उनके जिन तीन प्रमुख राजनीतिक सूत्रों को रखना चाहता हूं, वे इस आध्यात्मिक पार्श्वभूमि से बहुत अधिक प्रभावित हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पहला है राष्ट्र की उनकी परिकल्पना। उन्होंने भारत पर न केवल भौगोलिक और राजनीतिक इकाई के नाते दृष्टि डाली, उन्होंने इसे जीवन की गतिशीलता से युक्त आध्यात्मिक हस्ती या इकाई के नाते, जीवन्त प्राणी को देवतात्मा के नाते देखा। आप कालिदास के कुमारसंभव की शानदार पहली पंक्तियों में ही हिमालय को 'देवतात्मा' कहकर संबोधित करता पाएंगे :

अस्तुत्तरस्याम् दिशि देवतात्मा
हिमालयो नाम नगाधिराज।

श्री अरविंद ने भारत को देवतात्मा माना, और भारत की उनकी परिकल्पना के केंद्र में थे बंकिमचंद्र चटर्जी का 'आनंदमठ' और उनका 'वंदेमातरम्'। वंदेमातरम् देवी मां को एक प्रणाम है, उस आध्यात्मिक हस्ती को—जिसे भारत कहते हैं और यह वह केंद्रीय प्रत्यय है जिसे श्री अरविंद का आध्यात्मिक राष्ट्रवाद कह सकते हैं। यहां मैं एक-दो उद्धरण देना चाहूंगा जिससे पता चलेगा कि यह तत्त्व उनकी समूची राजनीतिक विचारधारा को कैसे प्रेरित किये रही। वे लिखते हैं : "राष्ट्र क्या है ? हमारी भारत मां क्या है ? यह जमीन का एक टुकड़ा नहीं है, न संज्ञा या सर्वनाम और न ही मन का गल्प। यह विशाल शक्ति है, जिसमें संपूर्ण जनता की शक्तियां निहित हैं जैसे महिषार्मदिनी भवानी एक ही शक्ति-पुंज में केंद्रीभूत और एक ही व्यक्तित्व में समाहित करोड़ों देवताओं की शक्ति से स्वरूप धारण करती हैं।" आपको दुर्गा सप्तशती की कहानी याद होगी जब महिषासुर राक्षस को हराने के लिएं सभी देवताओं के लिए आवश्यक था कि एक शक्ति-स्वरूपा में अपनी शक्तियों को केंद्रीभूत करें और वे वह महान कार्य संपन्न कर सकीं। इसी तरह श्री अरविंद ने कहा कि यदि सारे भारतीय एक शक्तिशाली आध्यात्मिक प्रयास में अपनी शक्ति का एकीकरण नहीं करते तो विदेशी शासन के दैत्य को पराजित नहीं किया जा सकता।

वे फिर कहते हैं, "जब तक मातृभूमि अपने को मन की आंखों में भूमि के एक टुकड़े अथवा व्यक्तियों के समूह से बढ़कर दर्शाती नहीं, जब तक महान भगवती और मातृका शक्ति की सौंदर्यमयी छवि में, जो मन को वशीभूत और हृदय को अभिभूत कर ले, रूपायित नहीं होती; मां और उसकी सेवा के सर्वात्मसात्कारी अदम्य भावना में ये छोटे-मोटे डर और आशंकाएं तिरोहित नहीं होंगे और न ही चमत्कारी कार्य करने वाली और न तमसाच्छन्न राष्ट्र की रक्षिका देशभक्ति उदित हो सकती है।"

यदि राष्ट्र एक आत्मा, एक इकाई है, तब राष्ट्रीयता भी केवल राजनीति का एक सुविधापूर्ण ढंग नहीं है, यह एक साधना है, यह सर्वोच्च करणीय कर्त्तव्य है, यह एक शक्तिशाली यज्ञ है जिसमें हमें सर्वस्व होमने के लिए अवश्य प्रस्तुत रहना चाहिए। वे लिखते हैं :

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजनीति में प्रेम का एक स्थान है, पर यह देश, देशवासियों और जाति की शान, महानता और सुख के लिए प्रेरक है, अपने संगियों के लिए आत्म-प्रदाह का भागवत आनंद, उनकी पीड़ा मेटने का आनंदातिरेक, देश और आजादी के लिए रक्त वहाने का सुख, जाति के पुरखों से एकात्मक होने हेतु मरने का आनंद। भू-माता के स्पर्श-मात्र से लगभग भौतिक सुख की अनुभूति, भारतीय समुद्रों से वहने वाली वायु में सांस लेने का सुख, भारतीय पहाड़ों से झरने वाली नदियों में स्नान का सुख, भारतीय वाणी, संगीत, कविता सुनने का सुख, परिचित दृश्यों, ध्वनियों, आदतों, वस्त्रों, तौर-तरीकों के वीच जाने का सुख—यह है प्रेम या भौतिक मूल। अतीत का गौरव, वर्तमान दशा से पूर्व, भविष्य के लिए अदम्य कामना इसका तना और शाखाएं हैं। देश के लिए आत्म-त्याग, और आत्म-विस्मृति, महान सेवा, सहन-शीलता इसके फल हैं। और जो रस इसे जिंदा रखता है वह है देश में मां का, भगवान का साक्षात्कार, मां की दृष्टि, सनातन चिंतन और मातृ-भक्ति।

अतएव राष्ट्र की उनकी धारणा थी—एक आध्यात्मिक अस्तित्व या सत्ता और राष्ट्रीयता की सर्वोच्च साधना। श्री अरविंद के ये दो महत्त्वपूर्ण विचार हैं। अंतिम और मुख्य बात करने के पूर्व मैं हिंसा के प्रश्न पर भी विचार करूंगा। श्री अरविंद मातृभूमि की आजादी के लिए हिंसा के पक्षधर थे। वे अनुभव करते थे कि चूंकि भारत हिंसात्मक ढंग से गुलाम वनाया गया इसलिए आवश्यकता होने पर उसकी आजादी के लिए हिंसा का प्रयोग पूर्णतः न्यायसंगत है। वे लिखते हैं :

स्थापित संस्कारों की यह साधारण आदत है, विशेषतः उनका जो स्वयं उत्पीड़क हैं कि सभी हिंसात्मक तरीकों को प्रजाजन और जाति के लिए अपराधी और बुरा कहें। पर किसी भी राष्ट्र ने अवसर आने पर उत्पीड़कों का निषेध नहीं माना और मानवता की सामान्य चेतना ने इस इनकार को स्वीकृति दी। कतिपय परिस्थितियों में एक गृह-संघर्ष यथार्थ में युद्ध बन जाता है, और युद्ध की नैतिकता शांति की नैतिकता से भिन्न होती है। ऐसी परिस्थितियों में खून-खराबा और हिंसा से कतराना कमजोरी है और इसकी कठोर निंदा उचित है, जैसे कुरुक्षेत्र के मैदान में विशाल नागरिक हत्या से कतराते अर्जुन को श्रीकृष्ण ने संबोधित किया। स्वाधीनता किसी राष्ट्र की प्राण-वायु है, और जब जीवन पर वार होता है, और हिंसात्मक दबाव से इस वायु-संचरण के हर अवसर को दफनाने की कोशिश की जाती है,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आत्म-रक्षण का कोई भी और प्रत्येक तरीका उचित और न्यायसंगत हो जाता है, वैसे ही उचित जैसे गला घोंटे जाने पर गले पर दवाव को क्षमतानुसार किसी भी साधना से दूर करने के लिए किसी आदमी का कार्य कानूनी होता है।

यदि श्री अरविंद के राष्ट्र और राष्ट्रीयता का विचार इतना ही होता, तो शायद उन्हें असामान्य वाक्पटु, राष्ट्रोन्मादी, देश के प्रति हठधर्मी से आसक्त, संपूर्ण दुनिया के अपकार के मूल्य पर, समझकर निंदा की जाती। किंतु उनकी राजनीतिक विचारधारा का एक तीसरा अंग था मानवता के कल्याण और उसकी प्रगति में भारत की विशेष भूमिका की उनकी दृष्टि। उन्होंने लगातार दुहराया है कि भारत की स्वतंत्रता राजनीतिक आजादी तक ही सीमित नहीं है, परंतु इस-लिए कि आजादी के बिना भारत अपनी मानव-जाति के भावी विकास में अपना नियत योगदान नहीं कर सकता। श्री अरविंद का अध्ययन करते समय यह अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि इस पहलू के विना हम इस गलत धारणा के शिकार हो सकते हैं कि वे वड़े उत्साही और वाक्पटु राष्ट्रवादी थे, इससे अधिक नहीं। सचमुच वे इससे अधिक वहुत कुछ थे। वे लिखते हैं :

> भारत को फिर से जन्म लेना है, क्योंकि उसका पुनर्जन्म विश्व के भविष्य की मांग है। भारत नष्ट नहीं हो सकता, हमारी जाति समाप्त नहीं हो सकती क्योंकि मानव-जाति के सभी विभाजनों में भारत के लिए ही सर्वोच्च और अत्यंत शानदार नियति सुरक्षित है, मानव-जाति के भविष्य के लिए अत्यावश्यक। उसीको अपने भीतर से संपूर्ण विश्व के भावी धर्म को प्रेरित करना है, शाश्वत धर्म, जो सभी धर्मों, विज्ञान, दर्शनों में सामंजस्य स्थापित करेगा और मानव-जाति को एक आत्मा में ढालेगा।

वे आगे लिखते हैं, "इसी धर्म को मानवता की मुक्ति के लिए पुराकाल से इस प्रायद्वीप के एकांत में अभिसिंचित किया गया है। इसी धर्म के दान के लिए भारत उठ रहा है, यह उस तरह से नहीं उठता जैसे दूसरे देश स्वार्थ के लिए अथवा जब वे मजवूत होते हैं कमजोर को पदाक्रांत करने के लिए। वह दुनिया पर शाश्वत प्रकाश विखेरने के अपने नियत कार्य के लिए उठ रहा है। भारत सर्वदा मानवता के लिए जीवित रहा है न कि अपने लिए; और मानवता के ही लिए, न कि अपने लिए उसे महान होना है।"

इसी स्वर पर मैं इस बात को समाप्त करना चाहूंगा, क्योंकि यह वह कड़ी है जो श्री अरविंद की राजनीति और योग के वीच १९१० के पहले के श्री अरविंद और १९१० के बाद के श्री अरविंद के बीच का संपर्क-सूत्र है। श्री अरविंद सर्वोपरि एक क्रांतिकारी थे। उन्होंने अंग्रेजी प्रभुता के खिलाफ विद्रोह किया,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उन्होंने कांग्रेस की धीमी, डगमगाती पद्धति के विरुद्ध विद्रोह किया और अंत में स्वयं मानव-चेतना की विशेष रचना के विरुद्ध विद्रोह किया, उन सीमाओं के विरुद्ध, जो हमें हमारी चेतना की वर्तमान अवस्था में घेरती और बंदी बनाती हैं।

दार्शनिक पक्ष

पिछले लेख में मैंने श्री अरविन्द के सन्देश के बारे में, जहां तक उनके जीवन के आरम्भिक चरण का सम्बन्ध है, जिसमें उनकी राजनीतिक सक्रियता सर्वोपरि थी, आपको बतलाया। मैंने कहा था कि शताब्दी के मोड़ पर इस अवधि में उनकी आध्यात्मिक राष्ट्रीयता भारतीय राजनीति के विकास में एक महान शक्ति बन गयी। जिद्दी और मनमाने लॉर्ड कर्जन ने जनता के सभी वर्गों के प्रबल विरोध के बीच १९०५ में बंगाल का विभाजन कर दिया और यह चिनगारी थी जिसने उस अवधि में समूचे राष्ट्रवादी आन्दोलन को प्रज्वलित कर दिया। भारी हलचल के दिन थे वे। श्री अरविन्द ने बड़ौदा कालेज की अपनी नौकरी छोड़ दी। वे कलकत्ता गये, जहां वे नवस्थापित नेशनल कालेज के प्रधानाचार्य हुए। इसीके तत्काल बाद कांग्रेस में नरम और गरम दो दल हो गये। १९०७ के सूरत कांग्रेस में राष्ट्रवादी आन्दोलन अन्तिम रूप से दो दलों में विभाजित हो गया। क्रान्तिकारी दल का नेतृत्व श्री अरविन्द और तिलक कर रहे थे।

उस समय श्री अरविन्द बहुत सक्रिय थे। वे अलीपुर बम षड्यन्त्र मामले से सम्बद्ध थे। इसमें वे अंग्रेजी सरकार को बलपूर्वक उखाड़ फेंकने के प्रयास में गिरफ्तार कर लिये गये। मुकदमे के दौरान श्री अरविन्द को जबरदस्ती साल-भर तक जेल की तनहाई में रखा गया। इसी वर्ष उनके व्यक्तित्व का आध्यात्मिक पहलू जोरदार ढंग से सतह पर आया। जैसा कि मैंने पहले कहा है, श्री लेले नामक महाराष्ट्रीय योगी की देखरेख में इन्होंने योगाभ्यास शुरू किया और धीरे-धीरे दस वर्ष तक करते रहे थे। पर उन्हींके शब्दों में जेल में ही यह उनके जीवन की प्रधान विशेषता बन गयी। फलतः कारावास में उन्हें भारी आध्यात्मिक अनुभव हुए। उन्हींके शब्दों में, "मैंने आदमियों से पृथक् करने वाले जेल की ओर देखा और अब यह दीवार नहीं थी, जो मुझे घेरे थी; ये तो वासुदेव मुझे घेरे हुए थे। अपनी कोठरी के सामने वृक्ष की शाखाओं के तले मैं घूमा, पर यह वृक्ष नहीं था, मैंने जाना कि ये वासुदेव थे, ये श्रीकृष्ण थे जिन्हें मैंने वहां खड़े हुए देखा, जो मेरे ऊपर अपनी छाया किये थे। मैंने अपने कारागृह के सीखचों की ओर देखा, वह जाली जिसने दरवाजे के प्रति अपना कर्त्तव्य पूरा किया था, और पुनः मैंने वासुदेव के दर्शन किये। यह नारायण थे जो मेरी रखवाली कर रहे सन्तरी थे। मैं खुरदरे कम्बल पर लेटा, जो बिस्तर के लिए

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुझे दिया गया था, और अनुभव किया कि मेरे गिर्द श्रीकृष्ण हैं, मेरे मित्र, मेरे प्रेमी की वांहें।"

इस प्रकार इसी अवधि के दौरान श्री अरविन्द का आध्यात्मिक स्वरूप अधिकाधिक स्पष्टता से उभरने लगा। अन्त में वे एक ऐसे मुकदमे के वाद छोड़ दिये गये जो आधुनिक न्याय-शास्त्र के इतिहास में अत्यन्त नाटकीयता और उद्वेग के नाते याद किया जायेगा। यह रोचक कहानी है कि श्री अरविन्द कैसे गिरफ्तार किये गये, कैसे तव के अज्ञात वकील देशवन्धु चित्तरंजन दास ने एक दिन एक अखवार में पढ़ा कि श्री अरविन्द पर मुकदमा चलाया जा रहा है और वे अपना सव काम छोड़कर उन्हें वचाने निकल पड़े। प्रकटतः श्री अरविन्द के आध्यात्मिक रूप ने देशवन्धु पर एक गहरा प्रभाव डाला है, क्योंकि उन्होंने वहस के दौरान ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जिनका प्रयोग किसी अपराध-मुकदमे में पहले कभी नहीं किया गया था। उन्होंने कहा :

"मेरी आपसे यह अपील है कि वहुत दिन वाद जव यह विवाद खत्म और दफन हो जायेगा, वहुत दिन वाद जव यह विप्लव और आन्दोलन समाप्त हो जायेगा, इनके मरने और चले जाने के वहुत दिन वाद, इन्हें लोग देशभक्ति के कवि के नाते याद करेंगे, राष्ट्रीयता के द्रष्टा और मानवता के प्रेमी के नाते। उनके मरने के वहुत दिन वाद न केवल भारत में वल्कि समुद्र पार के देशों में भी उनके शब्दों की वारम्वार अनुगुंज सुनी जायेगी। इसलिए मैं कहना चाहता हूं कि उनकी स्थिति का आदमी इस कचहरी के जजों के सामने ही नहीं खड़ा है वल्कि इतिहास के उच्च न्यायालय के समक्ष खड़ा है।"

जज थे न्यायाधीश वीच क्राफ्ट जो आश्चर्यजनक संयोगवश कभी कैम्ब्रिज में श्री अरविन्द के सहपाठी थे। श्री अरविन्द वरी किये गये, यह ब्रिटिश न्याय-व्यवस्था को एक श्रद्धांजलि है। उस समय के रिकार्ड को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्री अरविन्द सचमुच गहराई से षड्यन्त्र से सम्वद्ध थे और जैसा कि मैंने कहा, उनके लेखन से साफ था कि वे अहिंसात्मक शक्ति के वर्चस्व के विरुद्ध हिंसा की आवश्यकता स्वीकार करते थे। फिर भी यह न्याय की ऐसी व्यवस्था थी कि वे इस नाते वरी कर दिये गये कि उनके विरुद्ध विशेष आरोप सिद्ध नहीं हो सका।

छोड़ दिये जाने के वाद श्री अरविन्द ने १९०९ में 'कर्मयोगी' निकाला। वरी किये जाने के वाद की उनकी रचनाएं पहले की रचनाओं से भिन्न हैं। उनमें अत्यधिक आध्यात्मिक और धार्मिक स्वर है। अन्त में १९१० में उन्हें जव वंगाल छोड़ देने का आदेश मिला, वे पहले चन्द्रनगर और फिर पाण्डिचेरी गये। १९१० से १९५० तक (चालीस वर्ष) वे कभी भी पाण्डिचेरी के वाहर नहीं गये। वहां उन्होंने योग की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और विस्मयकारी प्रणाली को पूर्ण किया,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिसके माध्यम से वे चेतना के एक नये आयाम की सृष्टि करना चाहते थे।

मैं श्री अरविन्द के सन्देश के इसी पक्ष पर कुछ कहने का प्रयास करूंगा। पहले ही मैं कह दूं कि मैं आश्रमवासी नहीं हूं। मैं आश्रम का सदस्य नहीं हूँ, इसलिए गृही के नाते श्री अरविन्द के योग के सम्बन्ध में कुछ कहने के योग्य सचमुच नहीं हूं। मेरी उनके प्रति श्रद्धा है, गहन आदर भावना है, पर मैं आश्रमवासी नहीं हूं, इसलिए सम्भव है कि कई आश्रमवासी मेरे कथन से पूर्णतः सहमत नहीं होंगे। सचमुच दूसरी कठिनाई यह है कि राजनीति के बारे में बोलना तो आसान है, पर धर्म पर बोलते समय, आत्मा-सम्बन्धी बातों पर बोलते समय विचारों को शब्द देना बड़ा कठिन होता है। वेद कहते हैं—'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'— अर्थात् जहां मनस् के साथ चलने में शब्द पिछड़ जाते हैं, समझ मुश्किल हो जाती है। अतएव इन्हीं सीमाओं के भीतर मैं प्रयास करूंगा और श्री अरविन्द की खोज की उन विशेषताओं को रखूंगा जिन्हें मैं मुख्य समझता हूं।

श्री अरविन्द वेदान्त के मौलिक सिद्धान्त, ब्रह्म (भागवत) की अन्तर्वर्तिता और सर्वोपरिता के सिद्धान्त को मानते थे :

ईशावास्यमिदम् सर्वम्
यतकिंच जगत्याम् जगत्"

यह वेदान्त का आधार है, और श्री अरविन्द ने इसे कतिपय विशेष लक्षणों के साथ स्वीकार किया, जिसे शीघ्र ही मैं विस्तार से कहूंगा। उनका वेदान्त उनकी एक कविता में सुन्दरता से व्यक्त हुआ है जिसे मैं आपकी अनुमति से सुनाऊंगा। इसमें ग्यारह छोटे पद हैं, पर मुझे लगता है कि उनकी बहुत-सी पुस्तकों की अपेक्षा यह कविता उस भावना को अच्छी तरह प्रेषित करती है, जिससे वे भागवत की ओर पहुंचे। कविता है 'WHO' (कौन) और वह इस प्रकार है :

आकाश की नीलिमा में, वन की हरीतिमा में
किसकी अंगुलियों ने मसली है लुनाई,
शून्य-गर्भ में जब थीं सुप्त हवाएं
किसने उन्हें जगाया और दिया झकझोर ?
खोया है उर के भीतर, निसर्ग गुहा में,
रूप, प्रस्फुटन में कुसुमित-गुम्फित
ज्योतित तारों की जाली में बन्दित।
पुरुष-शक्ति में, नारी-छवि में
बाल-हंसी में, बाला की लज्जित लाली में,
वे कर, जिसने भेजे भू पर गढ़कर
बृहस्पति को ऊपर से
ये घुंघराले काले बाल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पूरी चतुराई से अपने रहा संवार।
यह सब उसकी रचनाधारा
घूंघट का पट छाया,
कौन तुम्हारा धाम, नाम क्या ?
ब्रह्मा, विष्णु ! नर या नारी,
निराकार या साकारी, एक अकेला याकि युगल ?
हम प्रेमी हैं नील-वरण के उस बालक के
जिसका रूप सलोना, कितना चमकीला।
हम सब की स्वामिनी है निर्वसना
प्रचण्ड कोप से करती कम्पित, मां
हिम-पर्वत पर मैंने रमते उनको देखा है,
दिशि-दिशि के उर में मैंने उनको
हुक्म चलाते देखा है।
कहें आप चतुराई उनकी, उनके तौर-तरीके।
सब से, दुनिया-भर से गा-गाकर बतलायेंगे हम,
उसको उत्पीड़न का सुख है
बड़ी व्यथा है उसकी और कामना गहरी,
हम सब के दुःख में आनन्दित,
कहता रो लो भूलो गम,
सुख, सुन्दरता के निनाद से भर-भर जाता,
हास प्रभु का जग के हित संगीत
यह सारा लायण्य
उसके सुख की चरमावस्था की है उपमा,
हम सब का जीवन, उसका हृत्कम्पन
राधा से आलिंगन उनका
सुख हम सब का, हम सब का यह प्यार।
सुखद चुम्बन है उनका।
नगाड़ों की ऊंची ठनकार
सुनाती महावली के बोल
रथ पर वे आसीन, भांजते चमकीली तलवार
कितने सुख से भरते उनके हाथों
भीतर उनके कितनी गहरी करुणा की जलधार।
समय सनातन के हित लड़ते और विश्व के नाते
महाप्रलय में महाग्रहों के वेश बदलते,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

युग पर युग के बुझते काल,
अमिट सनातन पर भगवान
शक्ति पुंज है, भव का राजा
इतना ज्यादा पाक,
ऊर्ध्वक्षितिज की सबसे अन्तिम छत की छाती पर बैठा
उसको चिंतक ने देखा, समझा
वह विराजता अचल सिंहासन ऊपर।
वह मानव का भाग्य- विधाता और सनातन प्रेमी,
देखो उसको मन की आंखों भीतर जाकर,
बैठा है वह कहीं तुम्हारे दिल भीतर,
हम गर्वीले सावन अंधे, इच्छाएं इतनी रंगीन।
हम विचार से बद्ध, खोलता वही हमारे बंधन।
जरा, मृत्यु से रहित सूर्य के भीतर जलता
अर्धरात्रि में धीरे-धीरे उसकी छाया हुई अवतरित,
अंधकार के भीतर भी जब अंध गुहा बनता जाता
वे उसमें वासी होते हैं, बेहद और अकेले।

श्री अरविंद की यह कविता बड़ी सुंदरता से भागवत की उनकी खोज का वर्णन करती है। बहुत-से लोगों में यह दुर्भाग्यपूर्ण भावना है कि श्री अरविंद इतने गूढ़ और जटिल हैं कि सचमुच साधारण आदमी उन्हें समझ ही नहीं सकता। सच है कि उनकी कुछ किताबें बहुत कठिन हैं, पर उनकी कविताएं और लघु रचनाएं इतनी स्पष्ट और ज्वलंत हैं कि रुचिपूर्वक उनसे लाभ उठाया जा सकता है। इसलिए प्रथम तथ्य यह है कि श्री अरविंद वेदांत को मानते हैं, इस तथ्य से कि भागवत या ब्रह्म ब्रह्माण्ड में अवस्थित और सर्वोपरि है। दूसरे शब्दों में, हर अस्तित्वमान वस्तु भागवत का परिणाम है। भागवत स्वयं अपनी रचना में बद्ध नहीं है।

इसके बाद ब्रह्माण्ड के जन्म की समस्या है, जिसका समाधान प्रत्येक दार्शनिक करना चाहता है। क्यों और कैसे रचना हुई? इसमें श्री अरविंद के बहुत दिलचस्प और मौलिक विचार हैं। वे आध्यात्मिक विकास की बात करते हैं। भागवत के कारण ही भगवान सघनतम पार्थिव में प्रवेश करता है, जहां जकड़न की स्थिति निर्मित होती है, फिर विकास होता है। न कुछ या शून्य का विकास नहीं हो सकता। यह तथ्य कि आत्मा ब्रह्माण्ड से विकसित हुई है, बतलाते हैं कि किसी स्तर पर आत्मा इसमें पूर्णतया जकड़ी रही होगी, शुद्ध चेतना के विरोधी ध्रुवांश में अर्थात् सघनतम पदार्थ में।

पहले एक पदार्थ है, खाली पदार्थ जो भागवत द्वारा व्याप्त है, पर जो अपनी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिव्यता के प्रति बिल्कुल चेतन नहीं है। करोड़ों वर्षों से पदार्थ रहा और तब कतिपय भीतरी शक्तियों के परिणाम से जीवन का उद्भव होता है। पहले अमीवा और फिर विज्ञानानुसार यह जीवन अधिकाधिक जटिल होता जाता है और तब विकासात्मक सीढ़ी पर धीरे-धीरे ऊर्ध्व गति। तब लाखों साल के बाद मनस् का रूप प्रकट होने लगता है। मनस् के आगमन से विकासात्मक प्रक्रिया में एक छलांग लगती है। पहले-पहले मनुष्य, एक मानसी, विचारशील प्राणी, के आगमन से एक प्रागमंच पर आता है जो अपने अस्तित्व के प्रति चेतन हो जाता है। पर मनुष्य से आप ऐसे जीव की ओर बढ़ते हैं जो अपने अस्तित्व के प्रति चेतन तो है, और जैसा कि उपनिषद् कहते हैं—भीतर देख सकता है और उसके प्रति जागरूक होता है जो उसके प्राण की ऊर्जा है। फिर मनुष्य अपनी भी महत्त्वपूर्ण क्षमता के बावजूद सृष्टि की सर्वोच्च और अंतिम रचना नहीं है। विकास की सीढ़ी पर वह एक मध्यमा प्राणी है, जिसका एक हिस्सा अभी भी गहराई से पदार्थ में पशु-चेतना में स्थित है और दूसरा भाग भागवत की ओर जाने को प्रयासरत। इसी-लिए चेतन और अतिचेतन के मध्य एक कड़ी के रूप में विकासमान प्राणी के नाते आध्यत्मिक बनावट में मनुष्य इतना बलशाली है।

श्री अरविंद पूर्वकल्पित करते हैं कि चेतना के हमारे वर्तमान स्तर में दूसरे स्तर हैं, जो भागवत की ओर पहुंचते हैं और मानव की नियति यह है कि वह चेतना के दूसरे स्तर में छलांग लगाये, अपनी तात्कालिक सीमित मानसिक चेतना से ज्योतिर्मय क्षेत्र में, जिसे श्री अरविंद अतिचेतना कहते हैं। इस छलांग में भिन्नता यह है कि अब तक मानव का विकास प्रायः अंधा रहा है, अब मनुष्य को यह क्षमता मिली है कि वह विकासात्मक प्रक्रिया को आगे बढ़ाये, लाखों वर्षों के अंध-विकास को अत्यंत लघु समय-फलक में देखे। इसलिए श्री अरविंद के अनुसार मनुष्य की सच्ची नियति अतिमानस में उसकी ऊंची छलांग है।

यह किस्त छलांग होगी क्योंकि मनुष्य से अतिमानव में परिवर्तन पशु से मानव में हुई छलांग से लम्बा होगा। आदमी और कुत्ते के बीच चेतना के अंतर की कल्पना करें, क्योंकि वह बहुत बुद्धिमान जानवर समझा जाता है। भागवत चेतना में नयी छलांग बहुत भारी है और श्री अरविंद कहते है कि मेरा योग इसके अवतरण की ओर ही मूलतः अभिमुख है। इस तरह हम श्री अरविंद में वेदान्ती को पाते हैं, ब्रह्माण्ड में जीव के उद्भव की उनकी विचारधारा कि भागवत सघनतम पार्थिव में प्रवेश करता है और हम मानवउत्पत्ति का भी उनका सिद्धांत पाते हैं, ब्रह्माण्ड की आध्यात्मिक नियति में मनुष्य की सृष्टि और उसकी भूमिका, तदुपरांत मानव से अतिमानव, मानसिक से अतिमानस में छलांग।

इस नयी छलांग के कई बहुत दिलचस्प उपसिद्धांत हैं। पहले तो पदार्थ और आत्मा में फिर से समझौता। जब से दर्शन का श्रीगणेश हुआ है, पदार्थ और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपने राजनीतिक गुरु पं० नेहरू के साथ : बीच में महारानी यशोराज्यलक्ष्मी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

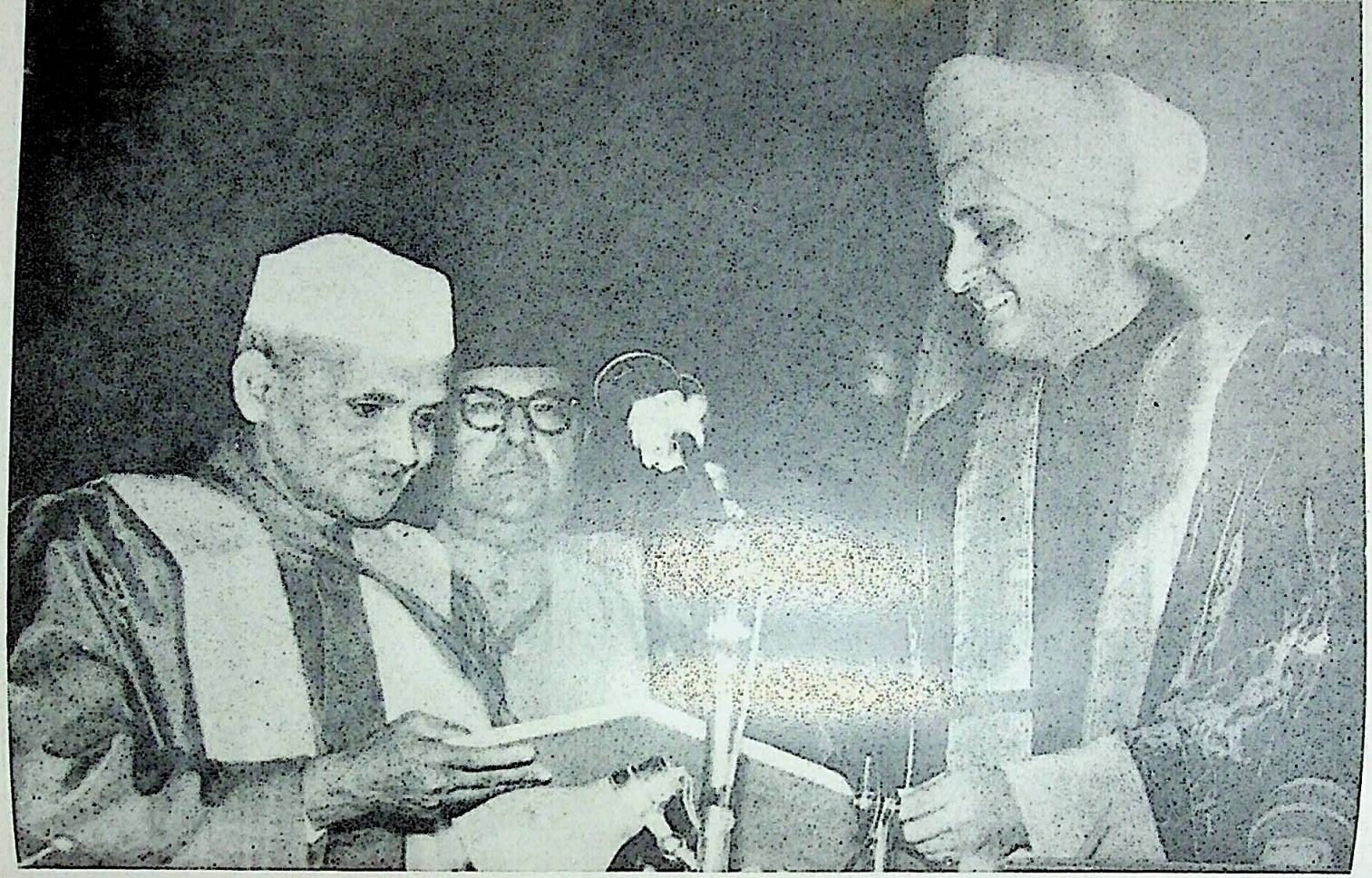

स्व० लालबहादुर शास्त्री की नम्रता और डा० कर्णसिंह की विनम्रता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

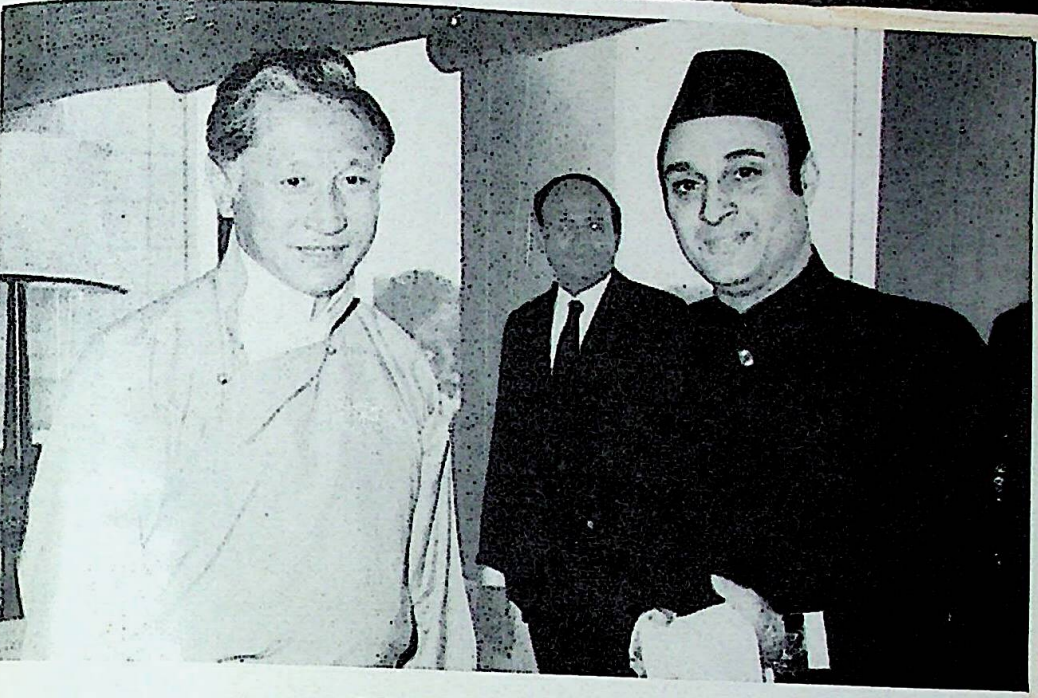

सिक्किम के चोग्याल के साथ

कुशक हेमिस तथा कुशक बकुला : लद्दाख के बिना कश्मीर क्या···

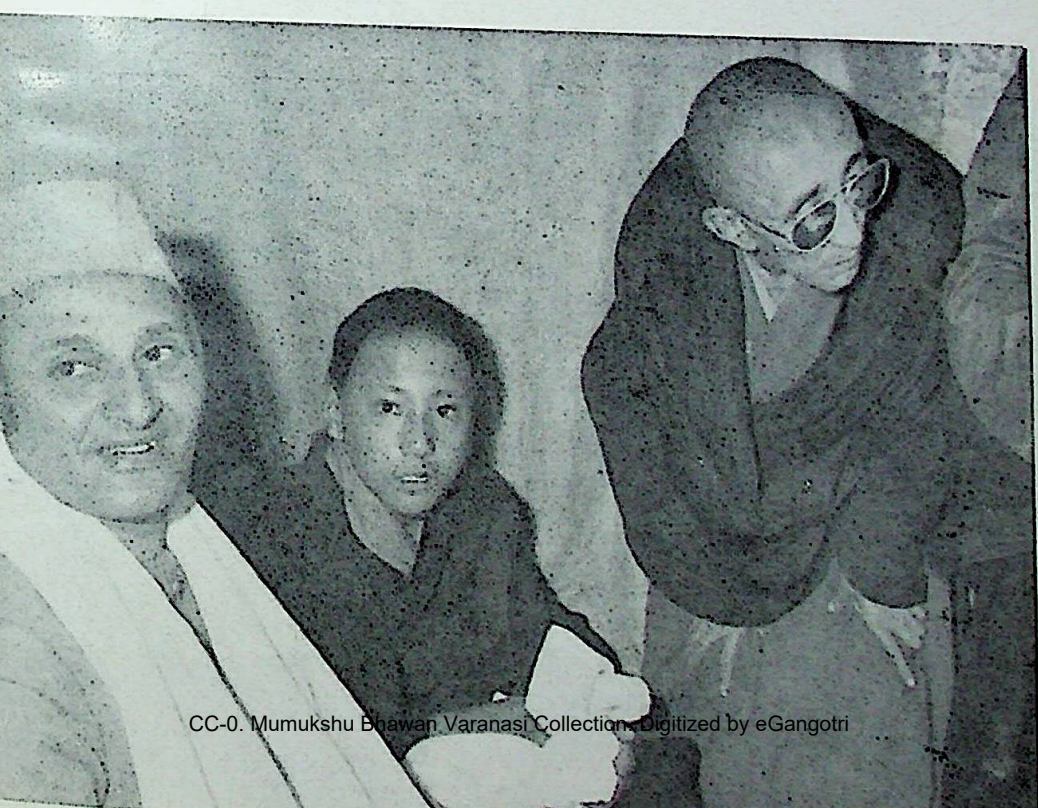

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद की अगवानी

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के चांसलर के रूप में डा० कर्णसिंह
राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन के साथ

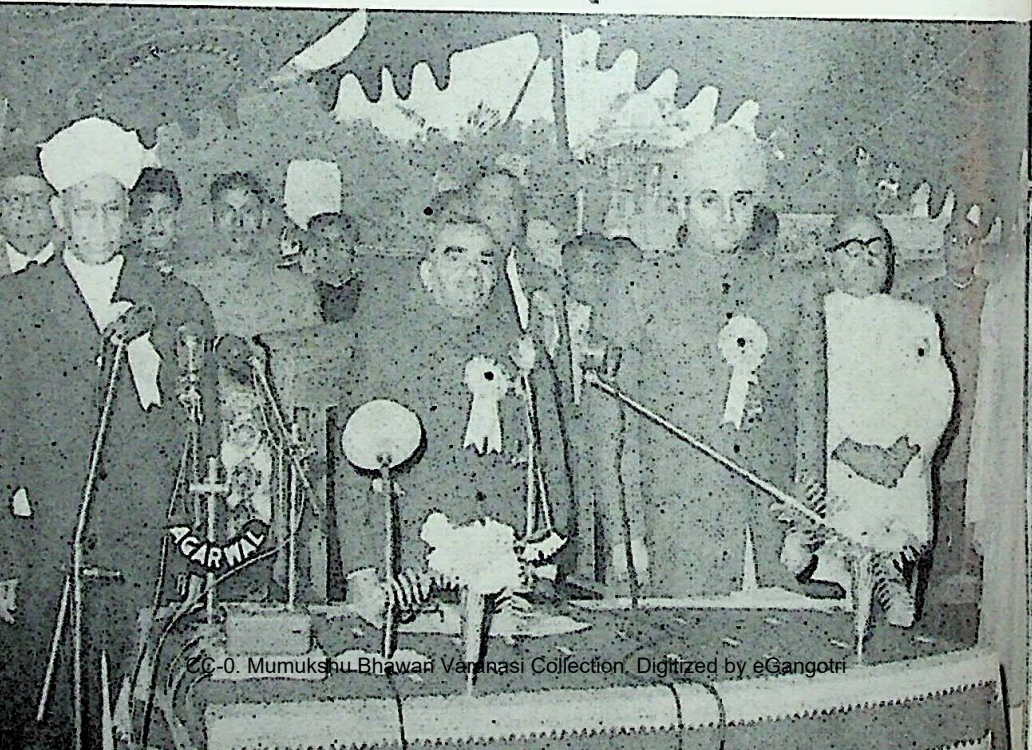

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

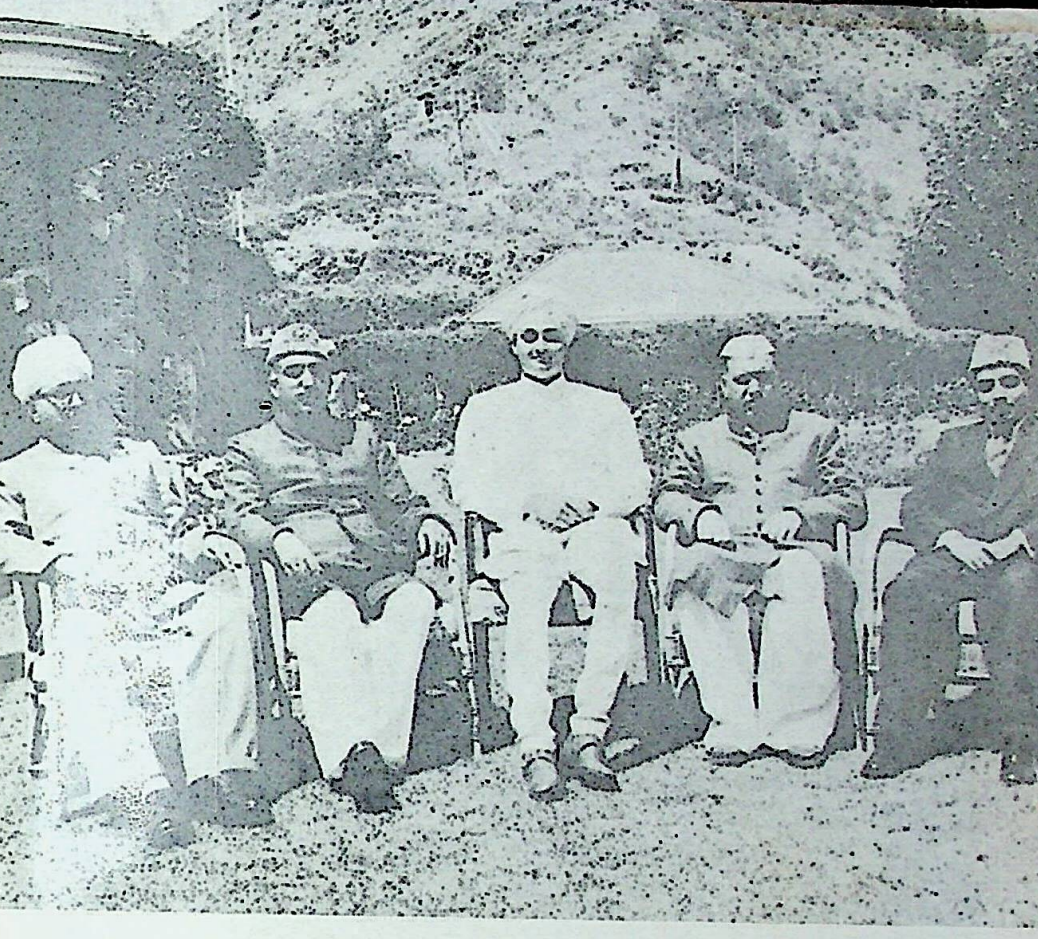

बख्शी-मंत्रिमंडल के सदस्यों के साथ डा० कर्णसिंह, पं० श्यामलाल सर्राफ,
बख्शी गुलाम मोहम्मद, पं० गिरिधारीलाल डोगरा और सैयद मीर कासिम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

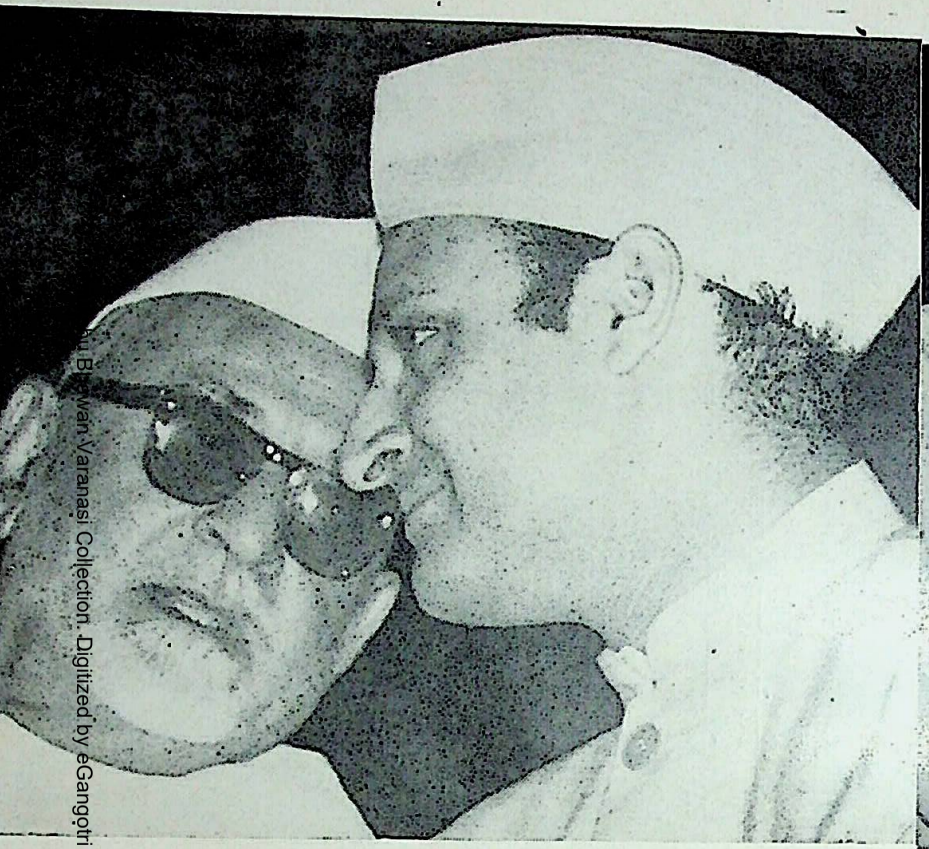

दो बौद्धिकजनों का मिलन
डा० जाकिर हुसैन : डा० कर्णसिंह

भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री फखरुद्दीन अली अहमद के साथ
अनौपचारिकता के क्षण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काशीनरेश डा० विभूतिनारायणसिंह तथा बीकानेर महाराजा डा० कर्णीसिंह के साथ

मेहमान नेपाल-नरेश श्री वीरेन्द्र और मेजबान राष्ट्रपति गिरि, प्रधानमंत्री श्रीमती गांधी, मंत्रिमंडल के सदस्यगण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आत्मा की समस्या रही है। श्री अरविंद के अनुसार इसे शुद्ध रूप से मानसिक स्तर पर नहीं मिलाया जा सकता, जब हम अतिमानस पर पहुंचेंगे तभी मिलन हो सकता है। इसी प्रकार आइंस्टीन ने पदार्थ और ऊर्जा को मिलाया। श्री अरविंद के अनुसार एक बार जब अतिमानस प्राप्त हो जायेगा, पदार्थ और आत्मा की विभाजन रेखा मिट जायेगी। यह स्पष्ट हो जाता है, कि वास्तव में यह संबंध पानी और वर्फ का-सा है। पदार्थ आत्मा है, जिसे देखा जा सकता है और आत्मा एक भिन्न रूप में पदार्थ है, दोनों में कोई वास्तविक भिन्नता नहीं है।

इसके बाद आज मानवता के समक्ष उत्पन्न कई समस्याओं का समाधान है जिनमें से कई चेतना के वर्तमान स्तर पर हल नहीं हो सकतीं। विकासात्मक सीढ़ी पर जब तक एक डग नहीं भरा जाता ये समस्याएं समाधान नहीं पा सकतीं, क्योंकि मानव-चेतना इतनी सीमित, इतनी अपूर्ण है कि इन समस्याओं का समाधान आप नहीं प्राप्त कर सकते। एक दूसरी उपमा मैं उड्डयन से लूंगा। यह ऐसा ही है जैसे मानो उड़ान भरने पर आप भारी उपद्रवी व अशांत क्षेत्र में प्रवेश करें और जब आप इसे पार करते हैं तभी अंततः शांत क्षेत्र में जा सकते हैं। जब आप अशांत क्षेत्र में होते हैं तब चाहे आप कुशलतम चालक हों अथवा दुनिया का सबसे बड़ा जहाज ले लें, झटके तो लगेंगे ही। इसी तरह श्री अरविंद अनुभव करते हैं कि मानसिक चेतना अशांत उपद्रव का क्षेत्र है क्योंकि इस चेतना में अपूर्णताएं और सीमाएं हैं और इसका अतिक्रमण करने पर ही आप संतुलन के क्षेत्र में प्रवेश पा सकते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि यह कैसे होगा, सचमुच विकासात्मक तुला पर कैसे पहुंचा जा सकेगा। यहीं श्री अरविन्द ने पूर्ण योग परिकल्पित किया। उनका पूर्ण योग ऐसा तंत्र है जहां पहले-पहल कुछ ही लोग अतिमानसी चेतना के विरल वातावरण में पहुंच सकेंगे। यह अत्यंत विशेष बात है। यह व्यक्तिगत मुक्ति नहीं है। सचमुच श्री अरविंद अनुभव करते हैं कि इस देश में बहुत-से ऋषियों और सन्तों ने मुक्ति प्राप्त की, पर उनके मरने के बाद दुनिया वहीं की वहीं रह गई। उन्होंने दुनिया का रूपांतर नहीं किया। श्री अरविन्द चाहते थे कि न केवल निजी मुक्ति प्राप्त की जाए बल्कि दुनिया में चेतना की एक नयी स्थिति लायी जाए और जैसा कि वे 'सावित्री' में कहते हैं —एक नया स्वर्ग और एक नयी पृथ्वी। यह गन्तव्य इतना साहसी और विस्मयकारी है कि इसे समझना अत्यंत कठिन है। वे व्यक्तिगत मुक्ति नहीं चाहते। वे जन-मुक्ति भी नहीं चाहते। वे ब्रह्माण्ड की विशेष बनावट में रूपांतर चाहते हैं। यह ऐसा लक्ष्य है जिसे शायद ही दुनिया के इतिहास में किसी दार्शनिक ने कभी पूर्वकल्पित किया हो। केवल विश्वामित्र का उदाहरण मिलता है, जिन्होंने नयी सृष्टि रची क्योंकि वह अस्तित्व मान सृष्टि से असन्तुष्ट

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

थे। इसलिए हमें याद रखना चाहिए कि श्री अरविंद का लक्ष्य एक नये स्वर्ग और एक नयी पृथ्वी की रचना का लक्ष्य है। इसी महत् उद्देश्य के लिए पूर्ण योग का प्रयोग किया गया।

पूर्ण योग क्या है ? पहले तो भागवत में आत्म-समर्पण, पूर्ण आत्म-समर्पण, न केवल मानसिक और न ही शारीरिक बल्कि हमारे अस्तित्व के सभी अंगों का समर्पण, ताकि भागवत एक ज्योति प्रदीप्त कर सके, यह उनके योग की पहली क्रिया होगी। दूसरी गति है विभिन्न यौगिक प्रणालियों के माध्यम से मानव-चेतना का अतिमानस में आरोहण। आरोहण के बाद योगी इस अतिमानस चेतना को आत्मसात् करने की कोशिश करेगा और उस शक्ति के साथ—प्रकाश के साथ भू पर आयेगा ताकि अतिमानस प्रत्यक्ष रूप से चेतना के वर्तमान स्तर पर उतर सके। यह योग का तीसरा चरण है।

मुझे पता है कि मैं एक अत्यन्त कठिन विषय का प्रतिपादन कर रहा हूं। मैं निश्चित नहीं हूं कि इसे शब्दों में कहा जा सकेगा। भागवत के प्रति समर्पण, अति-मानस स्तर पर आरोहण, अतिमानस की शक्ति, रोशनी और ज्ञान का आत्मसात् करना और फिर अवतरण। यह बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि श्री अरविंद कहते हैं कि बहुत-से लोगों ने आरोहण किया। पर वे ऊपर चले गए। लेकिन हम चाहते हैं वापसी, पार्थिव चेतना में वापसी ताकि यहीं पर अतिमानस की शक्ति और रोशनी तथा ज्ञान को लाया जाय, जिससे आदमी का रूपांतरण शीघ्र हो सके और विकासगत प्रक्रिया में दूसरी छलांग लगाई जा सके। यही उसकी विस्तृत रेखा है जो श्री अरविंद करना चाहते थे। और उनका योग पूर्ण है क्योंकि यह प्रयास के हर पक्ष, हर पहलू को स्थान देता है। यह परंपरागत भक्ति को अपनाता है क्योंकि जब तक भावनाएं उफान पर नहीं आयेंगी कुछ भी नहीं किया जा सकता। यह बहुत बड़ी भूल है कि धर्म में भावनाओं को स्थान नहीं है। एक पीत, ढीला, शुष्क और उबाऊ कार्य नहीं है धर्म। वास्तव में आत्मा की शक्ति, प्रकाश और गरिमा ही धर्म से संबद्ध हैं और जब तक योग के रथ में भावनाएँ नहीं जोती जायेंगी तब तक आगे बढ़ना सम्भव नहीं होगा। इसके बाद ज्ञान, बुद्धिमत्ता का नंबर है, जो आवश्यक है। ज्ञान के बिना भक्ति मात्र संवेदना में बदल जायेगी। फिर कर्म है। जैसाकि हम जानते हैं कि श्री अरविंद आश्रम में हर एक कुछ-न-कुछ काम करता है और उसी में अपने योग को भी कार्यान्वित करता है। इसके अतिरिक्त राजयोग भी है, रहस्यवादी पद्धति; जिसमें कतिपय अभ्यासों के जरिए जीव उच्चतर स्तर और चेतना के उच्चतर मोड़ों के संपर्क में आता है।

इस प्रकार पूर्ण योग में सभी कुछ आ जाता है। यह जीवन के प्रत्येक पक्ष, कला और साहित्य, राजनीति और विज्ञान, जो कुछ आप करते हैं, उसे इस योग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में मिलना है। ये अलग-अलग नहीं रहेंगे। कुछ लोग सोचते हैं कि ठीक है, धर्म के लिए हम आधा घंटा देंगे और शेष साढ़े तेईस घंटे इसके विषय में सब भूल जाएंगे। कुछ न से यह अच्छा है, पर यदि आप ऊर्ध्व की ओर सचमुच गतिशील होना चाहते हैं, तो आपको अपनी आध्यात्मिक चेष्टा के शक्ति-केंद्र के गिर्द व्यक्तित्व को जोड़ना पड़ेगा। एक ही केंद्र में आपको अपनी सभी गतिविधियों, चाहे कितनी भी अधार्मिक या धर्म-विरोधी वे दिखें, संयोजित करना पड़ेगा। जैसा कि हमारे एक परिचित महापुरुष ने कहा है कि यह सब ध्यानाभिमुख मंडलों की मालिका है, जिसके केंद्र में है—शक्ति-स्रोत। आप चाहे जो भी करें, केंद्र वही रहेगा। यदि मंडल ध्यानाभिमुख हैं तो आप जितना आगे जाना चाहें जा सकते हैं, पर केंद्र से दूर नहीं होंगे। पर मंडल यदि केंद्राभिमुख न हों तो सारा व्यक्तित्व धुरीहीन हो जाएगा और आदमी टूटता, बिखरता और शिथिल स्नायु का हो जाता है।

इस प्रकार आध्यात्मिक खोज बेमानी हो जाएगी यदि यह आध्यात्मिक केंद्र के गिर्द एकत्रीकरण की प्रकिया नहीं है। यही बात श्री अरविंद ने पूर्ण योग में कही है और इस आवश्यकता पर बल दिया है कि भागवत के प्रति एकनिष्ठ भाव से आत्मसमर्पण किया जाए। यह वह मनुष्य था जिसकी दर्शन-प्रणाली ने सम्पूर्ण ग्रह को अपने भीतर समेट लिया। किसी विशेष देश या किसी विशेष धर्म में इसे सीमित करने का सवाल नहीं उठता। जहां तक श्री अरविंद का प्रश्न है, यह बात कोई अर्थ नहीं रखती कि किसका धर्म क्या है। कोई ईसाई हो सकता है, कोई मुसलमान हो सकता है, कोई हिंदू या बौद्ध हो सकता है या धर्महीन भी, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। चाहे कोई चर्च, मन्दिर, मस्जिद कहीं भी या कहीं भी न जाता हो, कोई अर्थपूर्ण बात नहीं। आंतरिक समर्पण होना चाहिए और आंतरिक कार्य।

मानवता आज चौराहे पर है। अणुयुग का मानव भारी संकट में है, जैसे क्षुरस्य धारा पर हो। पर ऐसे ही पथ से चलकर किसी पूर्णता पर पहुंचा जा सकता है। यह आसान नहीं है, पर दूसरा रास्ता भी नहीं है। जैसे कि श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा है :

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त—
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥

अर्थात्—इन महान से भी महान परम पुरुषोत्तम को मैं जानता हूं। वे अविद्या रूप अंधकार से सर्वथा अतीत हैं तथा सूर्य की भांति स्वयं प्रकाश स्वरूप हैं। उनको जानकर ही मनुष्य मृत्यु का उल्लंघन करने में—इस जन्म-मृत्यु के बंधन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से सदा के लिए छुटकारा पाने में समर्थ होता है। परम पद की प्राप्ति के लिए इसके सिवा दूसरा कोई मार्ग अर्थात् उपाय नहीं है। एकाग्रता से अतिमानस रूपांतरण की दिशा में प्रयास—यही श्री अरविंद का संदेश है। वे पथ-प्रदर्शक थे। याद रखें, सभी चट्टानें पशु नहीं बनीं, सभी पशु मानव नहीं बने और सभी मानव रातों-रात अतिमानव नहीं बन जाएंगे। इस पथ पर कुछ ही लोग चल सकेंगे, वे पथ-प्रदर्शक, वे महापुरुष अपने ज्ञानमय प्रदीप से सतत पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं—श्री अरविंद भी उन्हीं विरले महापुरुषों में हैं जो समय-समय पर मानवता को एक नयी रोशनी, नया प्रकाश, एक नवीन पथ दर्शाने आते हैं, यह हमारी क्षमता और योग्यता पर निर्भर करता है कि हम उनसे कितना ज्ञान, कितना प्रकाश ग्रहण करते हैं और उनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण करते हैं ताकि उस गौरवमय स्तर पर पहुंच सकें जिसका मुण्डकोपनिषद् ने वर्णन किया है :

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्तात् ब्रह्म पश्चात् ब्रह्म दक्षिणश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्व मिदं वरिष्ठम्॥

इस मन्त्र में परमात्मा की सर्वव्यापकता और सर्वरूपता का प्रतिपादन किया गया है। सारांश यह है कि ये अमृतस्वरूप परब्रह्म परमात्मा ही आगे-पीछे, दायें-बायें, बाहर-भीतर, ऊपर-नीचे—सर्वत्र फैले हुए हैं; इस विश्व ब्रह्माण्ड के रूप में ये सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही प्रत्यक्ष दिखाई दे रहे हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुण्डकोपनिषद् का सन्देश

वेद हिन्दू धर्म के प्राचीनतम और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। ऋक्, साम, यजुर् और अथर्व, इन चार वेदों में से प्रत्येक दो भागों में विभाजित है, पहले भाग में मन्त्र और यज्ञ-याग-संबंधी निर्देश तथा आचार-संहिता या दूसरे शब्दों में कर्म-कांड के संबंध में निर्देश दिये गए हैं। दूसरे भाग में उपनिषद हैं और इसका संबंध ज्ञान से है, उस ज्ञान से जो परमात्म-सत्ता के साथ हमारे अभेद का भान करा देता है। यह ज्ञान धार्मिक सत्य का उच्चतम पक्ष है। दर्शन का जो प्रचलित अर्थ है उपनिषद् उस अर्थ में दार्शनिक ग्रंथ नहीं हैं। उपनिषदों में तो संक्षिप्त संकेत और सूक्तियां हैं, जिन्हें आत्मज्ञानी मनीषियों ने लिपिबद्ध किया है और यह ऋषियों और सत्यान्वेषियों के बीच, गुरु तथा गुरु के निकट बैठे हुए शिष्य के बीच हुई वार्ता के रूप में है। उपनिषदों में अद्भुत नवीनता और सहजता है, और उनमें सत्य की दीप्ति जगमगाती है। यह कहना कठिन है कि आरंभ में कितने उपनिषद् थे, लेकिन १०८ उपनिषद् अभी भी उपलब्ध हैं जिनमें से दस मुख्य उपनिषद् हैं। इनमें से एक है 'मुण्डकोपनिषद्'। मुण्डकोपनिषद् अथर्ववेद का एक भाग है और इसमें ६४ श्लोक हैं। मुंडक को मूल शब्द 'मुंड' से लिया गया है, जिसके अर्थ हैं 'मूंडना'। इसका अर्थ यह हुआ कि जो व्यक्ति इस उपनिषद् के उपदेश को समझ लेता है वह भ्रम और अज्ञान से मुंडक या मुक्त हो जाता है।

प्रत्येक उपनिषद् शांतिपाठ के साथ आरंभ होता है। इनमें से अधिकांश श्लोक जीवन की सकारात्मक और उल्लासपूर्ण अभिपुष्टि करते हैं। ये श्लोक कुछ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लोगों द्वारा प्रस्तुत किये गये इस विचार को मिथ्या सिद्ध करते हैं कि उपनिषदों में जीवन के प्रति नकारात्मक विराग और अस्वीकृति की शिक्षा दी गयी है। मुण्डकोपनिषद् का शांतिपाठ स्वयं में जीवन का समर्थन करता है:

ओम् भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥
ओम् शांति ! शांति !! शांति !!!

अर्थात्, हे देवगण ! हम कानों से कल्याणमय वचन सुनें, यज्ञकर्म में समर्थ होकर नेत्रों से शुभदर्शन करें, अपने स्थिर अंग और शरीर से स्तुति करने वाले हम लोग देवताओं के लिए हितकर आयु का भोग करें। त्रिविध ताप की शांति हो।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः, स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥
ओम् शांति ! शांति !! शांति !!!

अर्थात्, महान कीर्तिमान इन्द्र हमारा कल्याण करें, परम ज्ञानवान (अथवा परम धनवान) पूषा हमारा कल्याण करें, अरिष्टों के (नाश के) लिए चक्ररूप गरुड़ हमारा कल्याण करें तथा बृहस्पति हमारा कल्याण करें। त्रिविध ताप की शांति हो।

शांतिपाठ के बाद उपनिषद् में ग्रंथोक्त विद्या की आचार्य परंपरा दी गयी है। यह विद्या ब्रह्मा से अथर्वा को, अथर्वा से अंगी, अंगी से भरद्वाज और भरद्वाज से अंगिरस ऋषि को प्राप्त हुई। अंगिरस ऋषि के पास शौनक गये और उन्होंने पूछा :

"भगवन्, ऐसी कौन-सी वस्तु है जिस एक के जान लेने पर सब कुछ जान लिया जाता है ?" यह प्रश्न युगों-युगों से दोहराया जाता रहा है और इसका महत्त्व आज भी तनिक कम नहीं हुआ है। यह प्रश्न कोई साधारण प्रश्न नहीं है। यह प्रश्न किसी अद्भुत व्यापार के बारे में मात्र जिज्ञासा नहीं है और न यह मात्र बौद्धिक कौतूहल है। वस्तुतः यह एक अत्यंत आधारभूत प्रश्न है, और प्रश्नकर्त्ता के मन में चरम ज्ञान को जानने की तीव्र इच्छा का परिचायक है। इस उपनिषद् में यह प्रश्नकर्त्ता शौनक नामक एक महागृहस्थ बताया गया है। यह तथ्य महत्त्व रखता है क्योंकि अकसर ही ऐसा मान लिया जाता है कि उपनिषदों की शिक्षा केवल संन्यासियों और तपस्वियों के लिए है। यदि ऐसा होता, तो यहां एकत्र हममें से बहुत कम लोगों के लिए उपनिषदों का अध्ययन करना उचित ठहरता। लेकिन शौनक के रूप में हमारे पास एक ऐसा व्यक्ति है जो एक अत्यंत संपन्न और वैभवशाली कुटुम्ब का प्रमुख है और जिसके व्यापक पारिवारिक संबंध हैं, किंतु जो स्पष्ट ही इन भौतिक सुख प्रदान करने वाली वस्तुओं से प्राप्त होने वाले संतोष से ऊपर उठ गया है और उस अन्तर्ज्ञान की खोज करता है जिसे प्राप्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करते ही मनुष्य को अनंत आनंद की प्राप्ति हो सकती है। इसका अर्थ है कि हम लोग भी, जो सांसारिक कार्यों में लिप्त हैं, पराविद्या की साधना कर सकते हैं। मैं इसे एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण बात समझता हूं क्योंकि इसके चलते उपनिषदों में जो तमाम रहस्यवादी शिक्षाएं दी गयी हैं वे सब की सब प्रत्येक गृहस्थ की पहुंच में आ जाती हैं। महान गृहस्थ शौनक ने जो करने का प्रयत्न किया उसे करने के अधिकारी हम भी हैं, और यदि हम अपनी आंतरिक संभावनाओं की परिपूर्ति करना चाहते हैं तो शौनक ने अंगिरस से जो प्रश्न पूछा, वही प्रश्न हमें भी पूछना चाहिए।

यह ध्यान देने की बात है कि महा गृहस्थ शौनक ऋषि अंगिरस के पास 'विधिवत्' अर्थात् 'शास्त्रानुसार' गये। यह बात महत्त्वपूर्ण है क्योंकि गूढ़ज्ञान की शिक्षा में गुरु और शिष्य का व्यक्तिगत संबंध सबसे ज्यादा महत्त्व रखता है। संपूर्ण ज्ञान मात्र भाष्य या टीका के जरिये नहीं दिया जा सकता। इसका सीधा-सादा कारण यह है कि यह ज्ञान पांडित्य प्राप्त करने से प्राप्त होने वाला ज्ञान नहीं है बल्कि एक बोध है, एक अनुभव है। अतः गुरु ऐसा होना चाहिए जो न केवल वेदों का ज्ञाता हो बल्कि ब्रह्म-साधक भी हो, क्योंकि उसका उद्देश्य मुमुक्षु को, जिज्ञासु को सत्य की ओर उन्मुख करना है और उस सर्वव्यापी रहस्य का अन्तर्दर्शन कराना है जिसे 'मौन स्वर' प्रतीयमान पूर्णत्व की शून्यता और प्रतीयमान शून्य की पूर्णता कहता है।

तमाम उपनिषदों में गुरु और शिष्य के बीच, जिसे वह स्नेहवश सौम्य कहकर संबोधित करता था, एक गहरे स्नेह और प्रेम की धारा दिखाई पड़ती है। इसमें निश्चय ही ऐसा माना जा सकता है कि शिष्य अपने गुरु के प्रति विनम्रता और भक्ति का भाव रखता था, वह भाव जो दुर्भाग्यवश आधुनिक जगत् में उत्तरोत्तर कम ही होता दिखाई पड़ता है। तथापि इस बात पर जोर देने की जरूरत है कि यदि हम सचमुच कुछ काम की बात सीखना चाहते हैं, खासतौर से दर्शन और धर्म के विषय में, तो हमें आंशिक रूप से ही सही, गुरु-शिष्य का वही संबंध फिर से स्थापित करना होगा जो उपनिषदों के काल में इतने रचनात्मक तरीके से फल-फूल रहा था।

शौनक के प्रश्न के उत्तर में अंगिरस ने दो प्रकार की विद्या का सिद्धांत प्रतिपादित किया— परा और अपरा। अंगिरस ने बताया कि चारों वेद और छह वेदांग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष—अपरा विद्या कहे जाते हैं। इस व्याख्या से साहसिकतापूर्ण विचार-स्वातंत्र्य प्रकट होता है, क्योंकि हिन्दुओं को छोड़कर अन्य किसी भी धर्म में शायद ही कोई यह स्वीकार करने को तैयार होगा कि उसके पवित्र ग्रंथों में निम्नतर ज्ञान की शिक्षा दी गयी है। उपनिषदों के रचयिता आत्मज्ञानी द्रष्टा थे जो ग्रंथों या व्यक्तियों पर अंधी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आस्था नहीं रखते थे। उन्हें चरम-ज्ञान से कम किसी भी चीज से संतोष नहीं था। यही वह चरम ज्ञान है जिसे अंगिरस ने परा विद्या कहा है, वह विद्या जिससे अविनाशी ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त होता है।

यह अविनाशी, अव्यय सत्ता क्या है जिसका शोध करना है? अक्षर ब्रह्म अगोत्र और अवर्ण है। शब्दों में उसकी व्याख्या नहीं की जा सकती, क्योंकि यह बुद्धि के लिए अग्राह्य है। तथापि मानव ने जब विकास के पथ पर पैर धरे, तब से ही संसार-भर में जिन लोगों को शाश्वत सत्य या अक्षर ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त हुआ है वे स्वान्तः सुखाय अथवा अन्य मानवों के प्रकाश के लिए शब्दों के माध्यम से उसका वर्णन करने के प्रयत्न करते रहे हैं। उपनिषदों में परब्रह्म के कुछ अत्यंत रुचिकर वर्णन दिये गये हैं, और मुंडकोपनिषद् में तो कुछ अत्यंत ही सुंदर श्लोक मिलते हैं:

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुः श्रोत्रं तदपाणिपादम्। नित्यं
विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्तयोनिं परिश्यन्ति धीराः। [१-१, ६]

अर्थात्, वह जो अदृश्य, अग्राह्य, अगोत्र, अवर्ण और चक्षुःश्रोत्रादि हीन है, इसी प्रकार अपाणिपाद, नित्य, विभु, सर्वगत, अत्यंत सूक्ष्म और अव्यय है तथा जो संपूर्ण भूतों का कारण है उसे विवेकी लोग सब ओर देखते हैं।

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः॥ (२-२, ९)

अर्थात्, वह निर्मल और कलाहीन ब्रह्म हिरण्मय (ज्योतिर्मय) परम कोश में विद्यमान है। वह शुद्ध और संपूर्ण ज्योतिर्मय पदार्थों की ज्योति है और वह है जिसे कि आत्मज्ञानी पुरुष जानते हैं।

अग्निर्मूर्धा चक्षुषो चन्द्रसूर्यौ
दिशः श्रोत्रे वाग्विवृत्ताश्च वेदाः।
वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य
पद्भ्यांपृथिवीह्येष सर्वभूतांतरात्मा॥ (२-१, ४)

अर्थात्, अग्नि (द्युलोक) जिसका मस्तक है, चन्द्रमा और सूर्य नेत्र हैं, दिशाएं कर्ण हैं, प्रसिद्ध वेद वाणी हैं, वायु प्राण है, सारा विश्व—जिसका हृदय है और जिसके चरणों से पृथ्वी प्रकट हुई है, वह देव संपूर्ण भूतों का अंतरात्मा है।

अविनाशी ब्रह्म का वर्णन कठिन है, किंतु सृष्टि की प्रगति को समझा सकना तो और भी कठिन है। मुंडकोपनिषद् के दो श्लोकों में सामान्य दैनिक जीवन की दो उपमाओं के द्वारा सृष्टि के रहस्य का वर्णन किया गया है। ये वर्णन न होकर रचनात्मक पुराणकथा अधिक हैं जिनसे यह समझने में सहायता मिलती है कि यह ब्रह्मांड अनायास ढंग से प्रक्षिप्त होता है और भिन्न नामों और रूपाकारों से युक्त यह ब्रह्माण्ड उसी एक महान अभिन्न सांचे से ढलकर निकलता है:

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्‌ यते च
यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति ।
यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि
तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम् । (१-१, ७)

अर्थात्, जिस प्रकार मकड़ी जाले को बनाती और निगल जाती है, जैसे पृथ्वी में औषधियां उत्पन्न होती हैं और जैसे सजीव पुरुष से केश एवं लोम उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार उस अक्षर से यह विश्व प्रकट होता है।

तदेतत्सत्यं यथा सुदाप्तात्पावकाद्विस्फुलिङ्गाः
सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः ।
तथाक्षराद्विविधाः सोम्य भावाः
प्रजायन्ते तत्र चैवापि यन्ति ॥ (२-१, १)

अर्थात्, वह यह (अक्षरब्रह्म) सत्य है। जिस प्रकार अत्यंत प्रदीप्त अग्नि से उसी के समान रूपवाले हजारों स्फुलिंग (चिनगारियां) निकलते हैं, हे सौम्य ! उसी प्रकार उस अक्षर से अनेक भाव प्रकट होते हैं और उसी में लीन हो जाते हैं।

अपरा और परा विद्याओं के बारे में समझाने के बाद अंगिरस बताते हैं कि विध्यात्मक यज्ञ के फल स्वल्पायु और अनित्य हैं। इसका अर्थ कर्मकांड का अस्वीकार कदापि नहीं है। अंगिरस ने यज्ञवेदी और यज्ञाग्नि की लपलपाती जिह्वाओं को एक मूल्यवान प्रतीकात्मक अर्थ प्रदान करके उचित रूप से किये गये कर्मकांड के महत्त्व को बल दिया है। किंतु उनके अनुसार ये कर्मकांड उनके आंतरिक अर्थ को पूर्णतः समझते हुए संपन्न किये जाने चाहिए, कर्म का मूल ब्रह्म का चिंतन-मनन होना चाहिए। केवल तभी अंतर की आंखों से दिव्य बोध का अनिर्वचनीय दृश्य देखा जा सकता है। हमें स्मरण रखना चाहिए कि वैदिक काल में भारतीय लोगों की धार्मिक क्रियाओं में यज्ञ का मुख्य स्थान था, और यज्ञ की विधि का बहुत विस्तार से वर्णन किया गया था। जैसा कि अक्सर होता है, बहुत-से लोग कर्मकांड के चक्कर में इस तरह उलझ गये कि यज्ञ के सच्चे आध्यात्मिक तत्त्व को वे भूल ही गये। उचित रीति से संपन्न किये गये थे यज्ञ अपेक्षित फल देते थे, किंतु उपनिषद्‌कार द्रष्टाओं ने अनुभव किया कि यह फल इस पृथ्वी पर अथवा अन्यत्र केवल भौतिक दृष्टि से ही कुछ हद तक कल्याणकारी था। यज्ञ के अनुष्ठान का बौद्धिक अध्ययन करने या यज्ञ से संबंधित कर्मकांड का यथावत् पालन करने से सच्ची आध्यात्मिक प्रगति करना संभव नहीं था। मुंडकोपनिषद् में यज्ञ-संबंधी कर्मकांड-जनित फल की इस सीमा का सजीव चित्रण किया गया है :

प्लवा ह्येते अदृढ़ा यज्ञरूपा
अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एतच्छ्रेयो योऽभिनन्दन्ति मूढा
जरा मृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति ।। (१-२, ७)

अर्थात्, जिनमें (ज्ञानवाह्य होने से) अवर—निकृष्टकर्म आश्रित कहा गया है वे अर्थात् सोलह ऋत्विक् तथा यजमान और यजमानपत्नी, ये अठारह यज्ञरूप (यज्ञ के साधन) अस्थिर एवं नाशवान बतलाये गये हैं। जो मूढ़ 'यही श्रेय है' इस प्रकार इनका अभिनंदन करते हैं, वे फिर भी जरा-मरण को प्राप्त होते रहते हैं।

जो लोग भौतिक वस्तुओं के संचय को ही मानव-कल्याण की अंतिम सीमा मानते हैं और जो, इसी कारण, अपना सारा समय और शक्ति इस जीवन में, अथवा अपने भावी जीवन के लिए, इस प्रकार की भौतिक सुख-सामग्री के संचय में व्यतीत करते हैं, उनके बारे में इससे अधिक तिरस्कारपूर्ण टीका अन्यत्र मिलनी कठिन है। मुंडकोपनिषद् स्पष्ट रूप से कहता है कि इस प्रकार की सीमित दृष्टि रखना व्यक्ति के आंतरिक विकास के लिए घातक है।

तथापि इस बात पर पुनः बल देने की आवश्यकता है कि उपनिषदों ने कर्म से अस्वास्थ्यकर विराम का, जीवन-जीने के महान साहसिक कर्म के प्रति नकारात्मक उत्तर का कभी समर्थन नहीं किया है। किंतु साथ ही उपनिषदों में यह बात स्पष्ट कर दी गयी है कि मानव-जाति का सर्वोच्च लक्ष्य भौतिक समृद्धि-संपन्नता प्राप्त करना ही नहीं है। हमें जीवन-रूपी कर्म-भूमि में साहस और उत्साहपूर्वक कर्मनिष्ठ होना चाहिए, किंतु साथ ही साथ हमें भौतिक रूपाकारों से ऊपर उठने, और एक उच्चतर आध्यात्मिक साम्यावस्था प्राप्त करने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहना चाहिए। जीवन कोई ऐसी चीज नहीं है जिससे भाग जाये। जीवन को पूरी तरह जीना चाहिए, किंतु उसे मात्र भौतिकता से ऊपर उठाकर, उसके बाहर के महानतर और व्यापकतर आध्यात्मिक जीवन के रूप में जीना चाहिए।

मुंडकोपनिषद् के दूसरे अध्याय के प्रथम खंड में दस श्लोक हैं जो इस अदम्य तथ्य की पुष्टि करते हैं कि प्रत्येक वस्तु अभिन्न ब्रह्म से उत्पन्न है। जीवन और बुद्धि, इंद्रियां और सर्वतत्त्व, वेद और यज्ञ, देवता और उपदेवता, मनुष्य और पशु, जड़ी-बूटी और अन्न, समुद्र, पर्वत, शुचिता और संयम, आस्था और सत्य, सभी एक निर्विकार ब्रह्म से उपजे हुए हैं। उसका अंत इस श्लोक के साथ होता है :

पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम्। एतयो वेद
निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सौम्य ।। (२-१, १०)

अर्थात्, यह सारा जगत्, कर्म और तप (ज्ञान) पुरुष ही है। वह पर और अमृतरूप ब्रह्म है। उसे जो सम्पूर्ण प्राणियों के अन्तःकरण में स्थिर जानता है, हे सौम्य ! वह इस लोक में अविद्या की ग्रंथि का छेदन कर देता है।

उपनिषदों में इसी जीवन में मुक्ति पर जो बल दिया गया है वह महत्त्वपूर्ण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है। रहस्यवादी धर्म की यह विशेषता होती है कि वह किसी भावी जीवन में मुक्ति का विश्वास दिलाता है, किंतु उच्चतर रहस्यवादी धर्म की शिक्षा के अनुसार मोक्ष यहीं इसी जीवन में प्राप्य है, बशर्तेकि शिष्य अपने को अपेक्षित स्तर तक उठा सके। लक्ष्य स्वर्ग नहीं बल्कि मोक्ष है। स्वर्ग भी अनित्य है अतः उसकी आकांक्षा उच्चतम आकांक्षा नहीं हो सकती। यहां मैं यह कह दूं कि मुक्ति का अर्थ कर्म का अंत नहीं है। इसका अर्थ यह है कि कर्म की बाध्यकारी शक्तियां मुक्त व्यक्ति के मामले में लागू नहीं होतीं।

गूढ़ साहित्य में धनुष्य की उपमा एक जानी-मानी उपमा है। किंतु शायद उसका सबसे नाटकीय प्रस्तुतीकरण मुंडकोपनिषद् के दो श्लोकों में मिलता है। ये श्लोक उस प्रक्रिया का सजीव चित्रण करते हैं जिसमें सीमित वैयक्तिक आत्मा अपने को सत्य के सागर में विलीन कर देती है, और इस बात पर भी जोर देते हैं कि यदि मुमुक्षु को अपना लक्ष्य प्राप्त करना है तो उसे रचनात्मक कर्म करना चाहिए :

धनुर्गृहीत्वोपनिषदं महास्त्रं
शरं ह्युपासानिशितं सन्धयीत !
आयम्यतद् भावगतेन चेतसा
लक्ष्यं तदेवाक्षरं सौम्य विद्धि ॥ (२-३,३)

अर्थात्, हे सौम्य ! उपनिषद्वेद्य महान अस्त्ररूप धनुष लेकर उस पर उपासना द्वारा तीक्ष्ण किया हुआ बाण चढ़ा; और उसे खींचकर ब्रह्मभावानुगत चित्त से उस अक्षररूप लक्ष्य का ही वेधन कर।

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥ (२-२, ४)

अर्थात्, प्रणव धनुष है, (सोपाधिक) आत्मा बाण है और ब्रह्म उसका लक्ष्य कहा जाता है। उसका सावधानीपूर्वक वेधन करना चाहिए और बाण के समान तन्मय हो जाना चाहिए।

यह शक्तिशाली बिम्बविधान हमारे सामने नाटकीय रूप में मानव-आत्मा की सर्वोच्च नियति प्रस्तुत करता है। स्वयं ॐ को परमात्मा का श्रेष्ठतम प्रतीक माना जा सकता है। अनेक अन्य उपनिषदों में, विशेष रूप से मांडूक्य उपनिषद् में, इस ॐ रूपी शब्द-प्रतीक के बारे में विस्तार से चर्चा की गयी है। स्वयं मुंडकोपनिषद् में एक श्लोक है जिसमें गुरु शिष्य को बताता है :

अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः
स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः।
ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं
स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात् ॥ (२-२,६)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थात्, रथचक्र की नाभि में जिस प्रकार अरे लगे होते हैं उसी प्रकार जिसमें सम्पूर्ण नाड़ियां एकत्रित होती हैं उस (हृदय) के भीतर यह अनेक प्रकार से उत्पन्न हुआ संचार करता है। उस आत्मा का 'ॐ', इस प्रकार ध्यान करो। अज्ञान के उस पार गमन करने में तुम्हारा कल्याण हो (अर्थात् तुम्हें किसी प्रकार का विघ्न प्राप्त न हो)।

अमृत और अव्यय,स्वरूप पुरुष के देश में जाने के लिए हम सबोंको सूर्य-मार्ग (उत्तरायणमार्ग) से जाना होगा। इस इन्द्रधनुषी सेतु को पार करने के लिए हमें आवश्यक महात्त्वाकांक्षा, श्रद्धा और अटूट साहस की आवश्यकता होगी। एक बार इस सेतु के पार हो जाने पर हम उसे इन्द्रधनुषी अद्‌भुत दृश्यावलि में पहुंच जाते हैं, जिसका वर्णन मुंडकोपनिषद् के दूसरे भाग में कितनी सुंदरतापूर्वक किया गया है :

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्‌ब्रह्म
पश्चाद्‌ब्रह्म दक्षिणश्चोत्तरेण।
अधाश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं
विश्वमिदं वरिष्ठम्॥ (२-२,११)

अर्थात्, यह अमृत ब्रह्म ही आगे है, ब्रह्म ही पीछे है, ब्रह्म ही दायीं-बायीं ओर है तथा ब्रह्म ही नीचे-ऊपर फैला हुआ है। यह सारा जगत् सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही है।

उपनिषद् के तीसरे और अंतिम भाग का आरंभ दो श्लोकों से हुआ है, जिसमें जीवात्मा और परमात्मा को एक ही वृक्ष में बसे हुए दो पक्षियों के रूप में दिखाया गया है। इनमें से एक वृक्ष का मीठा फल खाता है और दूसरा देखता है। जब वैयक्तिक आत्मा अपने साथी का सही स्वरूप पहचान लेता है, जो कि वास्तव में उसी का आंतरिक रूप होता है, तब वह अपनी सीमाओं को झाड़ फेंकता है और ब्रह्म के साथ तादात्म्य हो जाता है :

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्ण
कर्तारमीशं पुरुषंब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूय
निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति॥ (३-१,३)

अर्थात्, जिस समय द्रष्टा सुवर्णवर्ण और ब्रह्म के भी उत्पत्तिस्थान उस जगत्कर्ता ईश्वर पुरुष को देखता है उस समय वह विद्वान पाप-पुण्य दोनों को त्यागकर निर्मल हो अत्यंत समता को प्राप्त हो जाता है।

और इसके बाद सत्य के बारे में स्मरणीय श्लोक आते हैं जिनमें से एक को हमने अपना राष्ट्रीय सूक्ति वाक्य चुना है :

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो
यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥ (३-१,५)

अर्थात्, यह आत्मा सर्वदा सत्य, तप, सम्यग्ज्ञान और ब्रह्मचर्य के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। जिसे दोषहीन योगिजन देखते हैं वह ज्योतिर्मय शुभ्र आत्मा शरीर के भीतर रहता है।

सत्यमेव जयते नानृतं
सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा
यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥ (३-१, ६)

अर्थात्, सत्य ही जय को प्राप्त होता है, मिथ्या नहीं। सत्य से देवयान मार्ग का विस्तार होता है, जिसके द्वारा आप्तकाम ऋषि लोग उस पद को प्राप्त होते हैं जहां वह सत्य का परम निधान (भंडार) वर्तमान है।

'सत्यमेव जयते', ये शब्द अब हमारे राष्ट्रीय चिह्न पर खुदे हुए हैं। तथापि हमें भूलना नहीं चाहिए कि अपने व्यापकतम अर्थ में 'सत्य' का अर्थ, ब्रह्म की सर्वोच्च प्रभुता है, जो सर्वव्यापी और अनुभवातीत है :

बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं
सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति।
दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च
पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम् ॥ (३-१, ७)

अर्थात्, वह महान, दिव्य और अचिन्त्य रूप है। वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर भासमान होता है तथा दूर से भी दूर और इस शरीर में अत्यन्त समीप भी है। वह चेतनावान प्राणियों में इस शरीर के भीतर उनकी बुद्धिरूप गुहा में छिपा हुआ है।

इस ब्रह्म को कैसे जाना जाये ? उपनिषद् के अन्त में हमें दो शक्तिशाली श्लोक मिलते हैं जो स्पष्ट रूप से आत्मज्ञान की पूर्वापेक्षा प्रस्तुत करते हैं :

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम् ॥ (३-२, ३)

अर्थात्, यह आत्मा न तो प्रवचन (पुष्कल शास्त्राध्ययन) से प्राप्त होने योग्य है और न मेधा (धारणा शक्ति) तथा अधिक श्रवण करने से ही मिलने वाला है। यह (विद्वान) जिस परमात्मा की प्राप्ति की इच्छा करता है उस (इच्छा) के द्वारा ही इसकी प्राप्ति हो सकती है। उसके प्रति यह आत्मा अपने स्वरूप को व्यक्त कर देता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नायमात्मा बलहीनने लभ्यो
न च प्रमादात्तसपो वाप्यलिङ्गात् ।
एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वां-
स्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम ।। (३-२, ४)

अर्थात्, यह आत्मा बलहीन पुरुष को प्राप्त नहीं हो सकता और न प्रमाद अथवा लिंग (संन्यास) रहित तहस्या से ही मिल सकता है। परन्तु जो विद्वान इन उपायों से उसे प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करता है उसका यह आत्मा ब्रह्मधाम में प्रविष्ट हो जाता है।

ये श्लोक इस बात के ज्वलंत उदाहरण हैं कि आध्यात्मिक खोज कोई ऐसा कार्य नहीं है जिसे दुर्बल कंधों पर अन्यमनस्क रूप से वहन किया जा सके। वस्तुतः इसका लक्ष्य भी मनुष्य की उच्चतम नियति है, और इसीलिए इसकी मांग है कि इसकी खोज में ममुष्य अपनी श्रद्धा और भक्ति की सम्पूर्ण शक्ति लगा दे, ऐसी शक्ति जिसके पीछे उसकी अडिग इच्छाशक्ति और अविचल साहस हो। योग्य डॉक्टर या इंजीनियर वनने से पहले हमें प्राथमिक स्कूल के वाद लगभग बीस वर्ष पढ़ना होता है और इन बीस वर्षों के दौरान हमें अपने अध्ययन के अर्थ कई घण्टे प्रतिदिन लगाने पड़ते हैं। लेकिन जब सवाल आध्यात्मिक खोज का पैदा होता है तब हम आशा करते हैं कि किसी चमत्कार से हम पलक झपकते ही अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेंगे। जब तक किसी-न-किसी रूप में मूल्य न चुकाया जाये तब तक कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। बेशक हम यह नहीं जानते कि इस पथ पर हममें से कौन कितनी दूर चल चुका है, किन्तु अध्ययन और उत्सर्ग, समर्पण और श्रद्धा, कर्म और चिंतन-मनन के रूप में जो भी मूल्य हमें चुकाना पड़े, उसे चुकाने के लिए हमें सदा तत्पर रहना चाहिए। यदि हमें लक्ष्य प्राप्त करना है तो हमें शरीर और मन से वलवान और सशक्त होना चाहिए, हमारी मेधाशक्ति और मनस्विता में क्रियाशीलता होनी चाहिए। मेरे विचार में मुण्डकोपनिषद् का सर्वोच्च सन्देश यही है, और इसी का पालन करते हुए मनुष्य अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकता है, इसे निम्नलिखित श्लोक में वताया गया है :

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे-
ऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय ।
तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः
परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ।। (३-२, ८)

अर्थात्, जिस प्रकार निरन्तर बहती हुई नदियां अपने नाम-रूप को त्यागकर समुद्र में अस्त हो जाती हैं उसी प्रकार विद्वान नाम-रूप से मुक्त होकर परात्पर दिव्य पुरुष को प्राप्त हो जाता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अमरनाथ की महिमा

'अमरनाथ' ! इस शब्द-मात्र के प्रति मुझे हमेशा एक अद्‌भुत सम्मोहन प्रतीत हुआ है। मैं हमेशा लज्जित अनुभव करता था कि यह प्रसिद्ध तीर्थस्थल मेरे घर के इतने निकट होते हुए भी मैंने वहां की यात्रा नहीं की, जबकि प्रतिवर्ष भारत के सुदूरवर्ती कोनों से आने वाले हजारों लोग वहां की यात्रा कर जाते हैं। पिछले कई वर्षों से मेरे मन में अमरनाथ-यात्रा की इच्छा पनप रही थी। पिछले दो-तीन वर्षों में तो वह अस्पष्ट कामना तीव्र और सुस्पष्ट लालसा के रूप में परिवर्तित हो गयी और इस वर्ष जब मुझे इंग्लैंड तथा यूरोप की अपनी प्रस्तावित यात्रा स्थगित करनी पड़ी तब मैंने इस तीर्थयात्रा पर अविलंब ही जाने का निश्चय कर डाला।

प्रतिवर्ष यह पारंपरिक यात्रा-मंडली रक्षाबंधन की पूर्णिमा को, जो लगभग अगस्त के अंत में पड़ती है, अमरनाथ की गुफा पहुंचती है। फिर भी मैंने कितने ही दूसरे यात्रियों के समान इससे एक मास पूर्व ही जाने का निश्चय किया। कई दिनों की लंबी-चौड़ी तैयारियों के बाद अंततः हम २३ जुलाई को श्रीनगर से पहलगांव के लिए रवाना हो गए। उस दिन मौसम बहुत खराब होने के कारण हमें कुछ चिंता भी हुई क्योंकि अमरनाथ की यात्रा में संकरे और खड़ी चढ़ाईवाले पहाड़ी मार्ग से गुजरना पड़ता है, जो वर्षा के कारण खतरनाक बन जाते हैं। फिर भी हम दृढ़ संकल्प करके निकल पड़े कि भले ही हमें तमाम असुविधाएं ही क्यों न झेलनी पड़ें, लेकिन यह प्रयास तो करना ही है।

अमरनाथ की पावन गुफा लगभग १३,००० फुट की ऊंचाई पर स्थित है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पहलगांव से गुफा की दूरी २८ मील है। कहने में तो यह दूरी बहुत कम मालूम पड़ती है, लेकिन दरअसल यह पैदल यात्रा काफी भारी पड़ जाती है। पहलगांव से आगे किसी प्रकार की गाड़ी नहीं जा सकती और पहाड़ी रास्ते को पैदल या घोड़े पर तय करना पड़ता है। कई साल पहले एक के बाद एक अनेक दुर्घटनाओं में मैं स्थायी रूप से शारीरिक अशक्तता का शिकार हो गया हूं। इसी कारण घुड़सवारी करने या दूर तक पैदल चलने में, विशेष रूप से चढ़ाई चढ़ने में, असमर्थ हूं। इसीलिए बहुत नापसंद होते हुए भी मुझे दांडी जैसी सवारी का उपयोग करना ही पड़ा।

...मनोहारी पहलगांव क्लब में दोपहर का भोजन करने के बाद हम अपने पहले पड़ाव चंदनवाड़ी के लिए निकल पड़े, जो पहलगांव से आठ मील की दूरी पर है। इस समय तक वर्षा ने तीखी बौछार का रूप धर लिया था, जिससे मिट्टी फचफचाते कीचड़ में बदल गयी थी। लिद्दर नदी की तेज बहती हुई धारा दौड़ती-मचलती संकरी घाटी में प्रवेश करती है और चंदनवाड़ी का रास्ता उसके दायें तट के साथ-साथ ऊपर चढ़ता है। हम दिन में कोई तीन बजे रवाना हुए। गहरे और फिसलन-भरे कीचड़ के बावजूद मेरी पत्नी समेत हमारे दल की तीनों महिलाओं ने पैदल ही चलने का आग्रह किया। मैं अपनी दांडी पर सवार हो गया, जिसे तगड़े कश्मीरी कुली ढो रहे थे। दल के अन्य बाकी लोग या तो घोड़े पर या पैदल चल रहे थे।

सौभाग्यवश वर्षा इतनी अधिक नहीं हो रही थी कि मार्ग में पड़नेवाली सुहावनी दृश्यावली दिखाई न पड़े। नदी की धारा आरंभ में हमारे दायीं ओर कोई एक सौ गज की नीचाई पर बह रही थी और उसकी ध्वनि मन को बड़ी ही शांतिदायक लग रही थी। घाटी के दोनों ओर के पहाड़ घने जंगल से आच्छादित थे। संकीर्ण और ऊबड़-खाबड़ रास्तों पर दो मील पार कर लेने के बाद जल-प्रवाह की ध्वनि तेज होती गयी और फिर अचानक ही हमने देखा कि धारा कुछ ही गज की दूरी पर बह रही है। जल-धारा दौड़ती-उछलती हुई इतने वेग के साथ बहती है जैसे उसे कहीं पहुंचने की बहुत जल्दी हो। यहां घाटी की चौड़ाई बढ़ जाती है और उसके दोनों बाजू हरियाली से आच्छादित पहाड़ी की सीधी दीवारें हैं। लगभग चोटियों तक जमी हुई घनी घास, ऊंचे-ऊंचे देवदार और भोजवृक्ष, अनेक प्रकार के झाड़-झाड़ियां सब अपनी विशिष्ट हरीतिमा का पुट देते हैं, जिसे देखकर लगता है मानो कोई विशाल हरा पटल वक्राकार धरती से आकाश तक फैला हुआ हो। मेघ-समूह से वियुक्त होकर कुछ छोटे-छोटे मेघखंड दुःसाहसपूर्वक पर्वतपार्श्व तक उतरने का प्रयास तो करते थे किंतु पर्वत शृंखलाओं के बीच भटक-कर खो जाते थे।

हम लोग आगे बढ़ते रहे। मैंने अपना सिर पीछे झुकाकर आंखें मूंद लीं। दांडी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की झुलाने वाली गति और जल-धारा से अनवरत कोलाहल ने मिलकर मुझ-पर सम्मोहन-सा कर दिया था। मैंने अपना ध्यान शांत और रहस्यमय मुख-मुद्रा वाले और गहरी समाधि में मग्न माहेश्वर के तेजस्वी स्वरूप पर टिका दिया। महादेव के तीर्थ मंदिर जा रहा हूं, यह सोचकर मैं उनकी महिमा में रचे गये अनेक गीतों में से एक गीत गुनगुनाने लगा।

चार घंटे की थकानेवाली यात्रा—मैं यह कह दूं कि मेरे लिए थकानेवाली नहीं क्योंकि मैं तो आराम से दांडी पर बैठा था, किंतु पैदलों और भारवाहकों को थकानेवाली पदयात्रा के बाद हम चंदनवाड़ी जा पहुंचे। हमारा खेमा तो पहले ही खड़ा कर दिया गया था और खराब मौसम के कारण चित्त की जो उत्फुल्लता कुछ घट गयी थी वह गरमागरम चाय का प्याला पीने के बाद पहले जैसी हो गयी थी।

ब्यालू से पहले हम सब भोजनालय वाले तंबू में इकट्ठा हो गये। वहीं कुछ और तीर्थयात्री भी आ पहुंचे और हम सब घंटा-भर भजन गाते रहे। ऐसे कीर्तनों में मुझे बहुत आनंद आता है। फिर तो यात्रा-काल में नियमपूर्वक हर संध्या को हमने संकीर्तन का यह कार्यक्रम चालू रखा।

कीर्तन के बाद अच्छा-खासा भोजन करके हम सब संतुष्ट भाव से बिस्तरों पर लुढ़क गए। किंतु लेटने से पहले आकाश को पूर्ण मेघाच्छन्न देखकर मुझे कुछ चिंता हुई।

दूसरे दिन प्रातःकाल लगभग सात बजे नींद खुलते ही मैंने बिस्तर से कूदकर अपने तंबू का परदा उठा दिया। परदा हटते ही सूरज का उजाला अंदर छा गया, और जब मैंने बाहर झांका तो देखा कि आकाश का रंग स्वच्छ नीला है, मेघों का नाम-निशान भी नहीं है। चंदनवाड़ी की जो सौंदर्य-शोभा पिछले दिन ओझल थी, अब दीख पड़ी। चंदनवाड़ी का लगभग एक वर्गमील घेरे का पड़ाव-स्थल ऐसा लगा जैसे वह चारों ओर घने जंगलों से आच्छादित और गगनचुंबी पर्वतमाला रूपी एक विशालकाय प्याले की तलहटी में अवस्थित हो। प्रातःकाल की कोमल धूप में सद्यःस्नात चंदनवाड़ी बहुत ही सुंदर लग रही थी।

शीघ्र ही नाश्ता करके हम अपने अगले पड़ाव शेषनाग के लिए आठ बजे रवाना हो गए। शेषनाग चंदनवाड़ी से है तो सात मील दूर, किंतु मार्ग खड़ी चढ़ाई वाला और खतरनाक है। लगभग आधा मील तक हम लिद्दर नदी के किनारे-किनारे चलते रहे, फिर दो मील की एक अत्यंत भयंकर चढ़ाई मिली, जो पिस्सू घाटी नाम से ख्यात है और नदी से कोई २,००० फुट की ऊंचाई पर ले जाती है। रास्ता संकीर्ण और मोड़ बड़े तीखे हैं। खराब मौसम में यह चढ़ाई बड़ी खतरनाक हो जाती है और कितने ही यात्री इसके शिकार हो चुके हैं। किंतु आज मौसम अच्छा होते हुए भी चढ़ाई श्रान्तिदायक थी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तीर्थयात्रा एक प्रकार से आत्मा की अपने चरम लक्ष्य की दिशा में लंबी यात्रा का प्रतीक है। भारत के लगभग सभी महत्त्वपूर्ण तीर्थ-स्थल ऐसे हैं जिनकी यात्रा में भक्तों को जोखिम-भरे संकटपूर्ण रास्तों से गुजरना पड़ता है, जिसमें उनकी आस्था की परीक्षा होती है। यदि भक्त अटक जाये तो उसके लिए ध्येय तक पहुंच पाना शायद ही कभी संभव होता है। किंतु यदि वह हिम्मत, आत्म-विश्वास और ईश्वर में आस्था के साथ बढ़ता चला जाये तो उसकी सफलता सुनिश्चित है।

पिस्सू घाटी पार करने में लगभग दो घंटे लग गए। उन चार दांडीवाहकों की मैं पूरे हृदय से सराहना करता हूं जिन्होंने मुझे लेकर यह चढ़ाई पार की। कुछेक गज मैंने पैदल चलने का भी प्रयास किया, किंतु उस चढ़ाई पर जो लगभग ९,००० फुट से ११,००० फुट की ऊंचाई पर पहुंचती है, मुझे बुरी तरह दिल की धड़कन होने लगी। और फिर भी ये लोग आसानी के साथ और एक बार भी लड़खड़ाये बिना मुझे लिये हुए सारी चढ़ाई पार कर गये। दांडी का भी भार मिला लें तो वे तीन सौ पौंड से ऊपर भार ढो रहे थे।

अमरनाथ की यात्रा और मार्ग में आने वाले अनेक स्थलों के विषय में कितनी ही कथाएं हैं। इस यात्रा, इसके मूलारंभ और इसके महत्त्व का वृत्तांत 'अमरकथा' में मिलता है, जो संस्कृत में है और इसी में उन सब कथाओं का भी समावेश है। माना जाता है कि स्वयं भगवान शिव ने अपनी अर्धांगिनी पार्वती को अमरनाथ गुहा में यह 'अमरकथा' सुनायी थी। पिस्सू घाटी (जिसका वास्तविक नाम पौषाख्य पर्वत है) के संबंध में एक रोचक कथा है। एक बार देवतागण और असुर महादेव की पूजा करने इस पर्वत पर से जा रहे थे। रास्ते में उनमें विवाद छिड़ गया कि पहले कौन जाये? फलस्वरूप युद्ध ठन गया। संग्राम में देवताओं को मुंह की खानी पड़ी और वे आतुर होकर महादेव से सहायता की प्रार्थना करने लगे। महादेव ने उनका त्राण किया और असुरों को नष्ट कर दिया। पर्वत की ढलान पर बिखरी हुई विशाल चट्टानें और शिलाखंड उन असुरों के प्रतीक माने जाते हैं। कहते हैं कि महादेव ने जिस प्रकार उन असुरों को ध्वस्त किया था उसी प्रकार वे इस पर्वत का आरोहण करने वाले मनुष्यों के पापों को भी नष्ट कर देते हैं।

पर्वत शिखर पर पहुंचकर हमें एक अत्यंत सुंदर दृश्यावली देखने को मिली, मानो यह हमारे इस कठिन श्रम का पुरस्कार हो। बहुत दूर, पहलगांव पर्वतों के बीच दुलार से सिमटा हुआ-सा दीखता है। उसके चारों ओर अपने उत्तुंग प्राचीन शिखर आकाश में उठाये हुए विशालकाय शैल दीख पड़ते हैं और उनसे काफी नीचाई पर लिद्दर नदी एक चंचल रुपहले फीते जैसी दीखती है, जो बल खाती हुई मैदानों की ओर बढ़ती जाती है। पर्वत शिखर पर रुककर मैंने पंद्रह मिनट फोटो खींचने और कुछ साधुओं से बातचीत करने में बिताये, जो अमरनाथ की यात्रा पर जा रहे थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यहां से लेकर कोई चार मील तक अच्छी साफ ढलान मिली जिसे हमने अच्छी गति से तय किया। दृश्यावली भव्यतर होती गयी और बार-बार रुककर मैं अद्‌भुत दृश्यों को भाव-विभोर होकर निहारता रहा। एक स्थान पर हमारे ठीक सामने दायीं ओर कोई १५,००० फुट ऊंचा विराट् ग्लेशियर था। उसकी चमकती हुई हिमराशि में से एक दीप्तिमय रुपहली धारा सीधे खड़े पहाड़ से हजारों फुट नीचे गिरती है जो बहते-बहते अंत में तलहटी में लिद्दर नदी में जा मिलती है। इस दर्रे में हमारी ओर के पर्वत कोई तीन-चौथाई ऊंचाई तक तो हरी घास से ढंके हुए हैं और उससे ऊपर एक विचित्र ईंट जैसे रंग की कटी-फटी और तीखी नुकीली चट्टानें हैं, जिनमें रंगों की सुस्पष्ट विभिन्न सतहें दृष्टिगोचर होती हैं। मैंने देखा कि इन चट्टानों के भी ऊपर अति शोभावान गरुड़ों का एक जोड़ा बड़े गौरवपूर्वक मंडरा रहा है।

कुछ ही दूर आगे जाकर मुझे अचानक एक निराली तीखी सीटी जैसी ध्वनि सुनाई पड़ी। मैंने देखा, एक सौ गज की दूरी पर ललछौंह लिए हुए भूरे बालों-वाला एक छोट-सा जानवर है। मैं पहचान गया कि वह हिममूष है। मैं जानता था कि मार्ग में मुझे ये नन्हें जानवर दिखाई पड़ेंगे।

अब हम १२,००० फुट की ऊंचाई पर पहुंच गये थे और एकाएक वृक्ष अदृश्य हो गये, क्योंकि हम वृक्षमाला वाले स्थल पार कर आये थे। यहां से आगे हरी घास और छोटी-छोटी हरी-भरी झाड़ियां तो मिलेंगी, किन्तु झाड़ या वृक्ष एक भी नहीं मिलेगा।

आखिर हम उस जगह आ पहुंचे जहां हमारे सामने आधा मील लम्बी एक और कड़ी चढ़ाई थी। उस चढ़ाई को पार करते ही हमें ठीक अपने सामने शेषनाग की हरी झील दृष्टिगोचर हुई। यह झील कोई एक मील लंबी और चौथाई मील चौड़ी है और उसके ऊपर एक विराट् ग्लेशियर सुशोभित है। शीघ्र ही शेषनाग की झोंपड़ियां भी दीख पडीं और जलधारा के उस पार अपने पड़ाव-स्थल पहुंचने के लिए हम उनके पास से गुजरे। जल-धारा को पार करने के लिए हम ठोस बर्फ के पुल पर से गुजरे जिसके नीचे वह धारा बह रही थी। ऐसा लगता है जैसे यह पुल हाथीदांत के विशाल खंडों से गढ़ा गया है। कुछ एक बादल भी उमड़े किंतु वे धवल, रूई जैसे और स्नेहीजन सदृश थे, कल वाले मनहूस दैत्यों जैसे नहीं, जो हमें कुपित भाव से देखकर हम पर गरज रहे थे। गहरे नीले आकाश में दमकता हुआ सूर्य भी बड़ा-सा और मुस्कराता हुआ लगा।

झील के किनारे सुंदर हरे-भरे मैदान पर हमारा खेमा लगाया गया। मैं एक हल्की-सी चढ़ाई चढ़कर एक चट्टान पर जा बैठा और मनोहारी दृश्य का अव-लोकन करता रहा।

मेरे सामने शेषनाग झील फैली हुई थी जिसका जल एक विलक्षण दूधिया हरे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रंग का है। उसके पीछे एक विराट् ग्लेशियर था जिसकी महती हिम-निर्मित तीन उत्तुंग चोटियां मानो स्रष्टा ब्रह्मा, पालक विष्णु और संहारक महादेव की दिव्य त्रिमूर्ति का प्रतीक हों। दायीं ओर एक शैल-पर्वत सीधा झील में से उभरकर खड़ा था। मेरे पीछे बहुत दूर स्लेटी रंग की चट्टानें हाल में पड़े हिम से आच्छन्न थीं और यह हिम पिघल-पिघलकर एक वेगवती धारा के रूप में बहता हुआ अन्त में एक धवल प्रपात बन गया था।

यह दृश्य शान्तिप्रदायक तो था ही, साथ-साथ उदात्तभाव प्रेरक भी था। उसका गम्भीर, सौम्य सौंदर्य जीवन की चिंताओं, विपत्तियों और दुःखों से बेचैन मन को शांति पहुंचाता है। गहरे नीले आकाश की पृष्ठभूमि पर सुस्पष्ट खड़े उत्तुंग शिखर हमारे विचारों को ऐहिक स्तर से उठाकर विशुद्ध आध्यात्मिक क्षेत्र में पहुंचा देते हैं। मनुष्य को अपने क्षुद्र व्यक्तित्व से महत्तर, बलशाली और विशुद्धतर एक सत्ता के अस्फुट रूप से व्याप्त अस्तित्व का सुस्पष्ट भास होने लगता है। थोड़ी देर तक मुझे प्रकृति के शुचि, पवित्र और भव्य स्वरूप का दर्शन होता रहा। समय की वेगधारा धीमी पड़ गयी, जीवन की समस्याएं और संघर्ष तुच्छ बन गये और मैं गहन चिंतन में खो गया।...

मेरे अंतरतम में एक कामना रही है कि अपने लिए एक आश्रम का ऐसे वातावरण में निर्माण करूं जहां इच्छा, भय, अहं और मोह से विमुक्त होकर और शुद्ध शरीर तथा मन लेकर प्रकृति की विशुद्ध पवित्रता पर चित्त एकाग्र करके संभवतः आध्यात्मिक बोध प्राप्त कर सकूं। यदि इस इच्छा की पूर्ति का समय कभी आ सके तो मेरे विचार में इससे बढ़कर, जहां बैठा मैं इस प्रशांत झील का दर्शन पा रहा हूं, कोई दूसरा स्थल नहीं होगा।

अनुश्रुति चली आती है कि एक समय में इन पर्वतों में एक बलवान दैत्य का वास था, जो भयानक झंझावात का स्वरूप धारणकर देवताओं को बहुत कष्ट पहुंचाया करता था। व्याकुल होकर देवतागण शिव के पास पहुंचे। शिव ने बताया कि वह तो दैत्य को पहले ही अभयदान दे चुके हैं, इस कारण देवतागण विष्णु के पास जायें। तब देवतागण शेषनाग झील के तट पर जाकर विष्णु की महिमा का स्तुति-गान करने लगे। प्रसन्न होकर सहस्रमुख बलशाली शेषनाग पर आसीन विष्णु भगवान सरोवर में से प्रकट हुए और उन्होंने शेषनाग से कहा, "हे सर्पराज, अपने सहस्र मुखों से इस दैत्य का संहार करो।" आज्ञा सुनकर शेषनाग दैत्य पर टूट पड़े और उसे नष्ट कर दिया। उस दिन से सरोवर तथा उसके पीछे वाला पर्वत शेषनाग नाम से विख्यात है।

मैं अनिच्छापूर्वक भोजन के लिए वापस खेमे में लौटा और कुछ देर आराम करने के बाद अपने सहयात्रियों का हालचाल जानने निकल गया। हमारे खेमे के बिलकुल पास एक टीले पर दस-बारह भस्म-भूषित साधु बैठे हुए थे, मैं उनके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पास जाकर बातचीत करने लगा। ये साधु भी एक विचित्र चीज हैं। उनमें से कुछ तो महान आध्यात्मिक सिद्धि-प्राप्त पुरुष हैं, किंतु खेद की बात है कि बहुतों का तो, धधा ही बन गया है कि हम भारतीयों की, विशेषतः भारतीय महिलाओं की, धर्मिक वृत्तियों का लाभ उठाकर अपना जीवन-यापन करते रहें।

शेषनाग समुद्रतल से १३,००० फुट की ऊंचाई पर स्थित है, इस कारण वहां हम सबको सांस लेने में कष्ट और भारीपन महसूस हो रहा था। शेषनाग के मुख्य पड़ाव तक मैं तेजी से चलकर गया और लौटकर मैंने जिन यात्रियों को आवश्यकता थी उन्हें गर्म कपड़े और भोजन का सामान बांटा। अब तक शाम हो गयी थी और हम लोग एक तंबू में इकट्ठा हो गये जहां एक पंडित ने 'अमरकथा' का पाठ सुनाया। उसके बाद कीर्तन चलने लगा।

कीर्तन समाप्त हुआ, उस समय तक नौ बज गये थे और काफी अंधकार हो गया था। दो पर्वत-शिखरों के मध्य में प्रायः पूर्ण चंद्रमा मानो अधर में लटका हुआ-सा प्रतीत हो रहा था। चांदनी में सरोवर का दृश्य देखने के लिए मैं थोड़ी चढ़ाई पर चढ़ गया। दिन के समय झील कुछ रहस्यमय और अविस्मरणीय शोभा से युक्त दीखती है किंतु रात के समय यह रहस्यात्मकता बढ़ जाती है। मैंने देखा कि शेषनाग सरोवर का जल शांत और गंभीर है। उसकी आधी सतह पर चांदनी छिटकी हुई है और शेष भाग पर पर्वतों की काली छाया पड़ रही है जो एक रहस्यमय ज्योति से दीप्त है। चंद्रिकाच्छादित इस जादू-भरे दृश्य को देखते हुए समय की गति रुक जाती है और देखने वाले को विशुद्ध अस्तित्व मात्र की गहनतर धाराओं के साथ अपने सामंजस्य का भास होने लगता है।

मैं फिर अनिच्छापूर्वक खेमे पर लौट आया, जहां हमारे लिए सादा किंतु प्रचुर भोजन तैयार था। मैं यह भी कह दूं कि यात्रा की परंपरागत प्रथा के अनुसार श्रीनगर से रवाना होने के समय से लेकर वापस वहां लौटने तक हमने पूर्णतः निरामिष भोजन ही लिया। भोजनोपरांत हम सोने चले गए। उतनी ऊंचाई पर नींद बड़ी कठिनाई से आई और वह भी गहरी नहीं थी।

दूसरे दिन प्रातःकाल पांच बजे नींद खुलते ही मैं उन कंबलों के अंबार से जूझता हुआ उठ बैठा जिनसे मैंने रात्रि में उष्णता का सुख पाया था। देखकर आश्चर्य हुआ कि काफी प्रकाश फैला हुआ था। अपने प्रिय स्थल पर पुनः जाने का लोभ-संवरण मुझसे नहीं हो सका। मैंने दिन के प्रकाश और चांदनी दोनों में सरोवर का दृश्य देखा था और अब मैं प्रभात की उस वेला में उसे ज्यादा अच्छी तरह देखना चाहता था, जो गोधूलि वेला को छोड़कर अन्य सभी वेलाओं से अधिक सुखद और रहस्यमय है। मैं पहाड़ी की चोटी तक चढ़ गया। वहां मुझे पहले के समान ही एक अद्‌भुत दृश्य देखने को मिला। इस बार मेरे मुंह और हाथों को प्रपात की ताजी और सुखकर बयार अपने कोमल स्पर्श से सहला रही थी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पर्वत-माला और झील पर पीतवर्णी नीरवता छायी हुई थी और त्रिमूर्ति-स्वरूप तीनों शिखर चिंतन में लीन प्रतीत हो रहे थे। मुझे अपने मन में एक उमड़ते हुए गहरे आनंद की अनुभूति होने लगी और मैं मुखर स्वर में गाये बिना रह ही नहीं सका। पहले तो मैंने चरम अद्वैत दर्शन की अभिव्यक्ति करने वाले शंकराचार्य-द्वारा रचित वे छह श्लोक गाए, जिनमें प्रत्येक का अंतिम चरण 'चिदानंदरूपं शिवोहं शिवोहं' है, फिर प्रभातकाल के आनददायक राग भैरवी तथा तोड़ी में कुछ भजन भी मैंने गाये।

मेरा अंतिम भजन समाप्त होते ही सूर्य की पहली किरण एक सुवर्ण बाण की तरह मध्यवर्ती शिखर पर चमकी। शिखर पर मानो सूर्य के उष्ण प्रेम स्पर्श के फलस्वरूप लालिमा छा गयी। धीरे-धीरे सूर्य का प्रकाश तीनों शिखरों पर छा गया और पर्वत की ढलान पर भी उतरने लगा। शीघ्र ही पूर्व दिशा में पर्वतों के बीच से गोलाकार सुनहरा सूरज स्वयं झांकने लगा और सभी ओर स्वास्थ्यकर धूप की गरमी फैल गई।

मैं उतरकर डेरे पर आया और स्नान किया। शेषनाग सरोवर में स्नान बड़ा मंगलप्रद माना जाता है और हमारे दल के कई सदस्य, जो अधिक जीवटवाले थे, स्नान के लिए आधा मील नीचे उतरकर वहां गए। किंतु मैंने सरोवर का पानी मंगवाया और उसे गरम करवाकर स्नान किया। सरोवर-स्नान की यह पद्धति परंपरागत कम लेकिन मेरे लिए सुविधाजनक अधिक थी। नाश्ते के बाद हम सब शेषनाग से आठ मील दूर स्थित अपने अगले पड़ाव पंचतरणी के लिए निकल पड़े।

अमरनाथ के पावन मार्ग पर चिरकाल से लाखों तीर्थयात्रियों के पग पड़ते रहे हैं। यह विचार, कि जिस मार्ग पर मेरी दाण्डी झूमती चली जा रही है उस-पर कितने ही महान आध्यात्मिक शक्ति-संपन्न पुरुष चल चुके हैं, मुझे श्रद्धामय विस्मय से भर देता है। कितने ही अज्ञातनामा और अख्यात महापुरुषों ने इसी पथ को अपने पावन पाद-स्पर्श से पवित्र किया होगा। इसी मार्ग से 'अमेरिका' पर अपूर्व 'विजय' प्राप्त करके लौटे हुए महान स्वामी विवेकानन्द १८९८ में अमर-नाथ की पूजा करने गए थे। स्वामी रामतीर्थ ने भी यह तीर्थयात्रा की थी। कहा जाता है कि भारत की कोख से जन्मे एक अत्यंत प्रतिभा-संपन्न और गहन बुद्धि-संपन्न महापुरुष स्वामी शंकराचार्य ने एक सहस्र वर्ष से भी पूर्व इसी मार्ग से दूसरे शंकर के तीर्थ की ओर प्रयाण किया था।

जैसा कि मैं बता चुका हूं, स्वयं शेषनाग ही १३,००० फुट की ऊंचाई पर स्थित है, किंतु अब हमारे सामने एक दूसरी दुर्गम पर्वत की चढ़ाई थी। तीन मील तक हम धीरे-धीरे सांस खींच-खींचकर आरोहण करते चले। चारों ओर का दृश्य अत्यंत सुंदर था। हमारी बायीं ओर विशालकाय पर्वत खड़ा हुआ था और दायीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ओर सैकड़ो फुट की नीचाई पर क्रमशः लघुतर होती दीखती धारा थी। पर्वत के वक्ष पर ऊपर आकाश तक घास फैली हुई थी जिसके बीच में सहस्रों कमनीय छोटे-छोटे पीले फूल लहरा रहे थे, जो एक थरथराते हुए पीले कालीन जैसे लगते थे। नीचे धारा के निकट सपाट हरी स्थलियां थीं, जिनपर उल्लास से सीटी जैसा स्वर निकालते हुए दुस्साहसी नटखट हिममूष दौड़-भाग रहे थे। चारों ओर प्रातः-कालीन आकाश की पृष्ठभूमि पर उभरे वृहत् ग्लेशियर और पथरीले शिखर थे।

मार्ग हमें अधिकाधिक ऊंचाई की ओर ले जा रहा था और अंत में हम १५,००० फुट ऊंचे महागनस दर्रे के ऊपर पहुंच गए। वहां हमने उतरकर चारों ओर के ग्लेशियरों की भव्य दृश्यावली के चित्र और चलचित्र खींचे। हमारे आस-पास भी जगह-जगह पर हिम था और आकाश में कुछ धवल मेघ रूई के गोलों जैसे उड़ रहे थे।

यहीं से पंचतरणी तक की लंबी, पांच मील की उतराई आरंभ होती गयी। दृश्य ऊबड़-खाबड़-सा था और कठोर अक्खर पहाड़ों में भी प्रभावशाली सौंदर्य था। इस ऊचाई पर कोई वृक्ष नहीं होते, हरियाली केवल घास की दीखती है, जो उच्चतम स्थलों पर भी उगती है। ये नग्न पर्वत हल्के सुरमई रंग के हैं। दूर पर १८,००० फुट ऊंचा अमरनाथ दीख पड़ता है। इसी पर्वत में अमरनाथ की पावन गुफा स्थित है।

उतराई पर हमारी गति बढ़ गयी और मेरी दांडी फुर्ती से झूलती-झालती आगे बढ़ने लगी। मैं बीच-बीच में दृश्य निहार लेता था और पाल ब्रंटन की अत्यंत रोचक पुस्तक 'सर्च इन सीक्रेट इंडिया' पढ़ता जाता था। कई स्थलों पर हम चित्र खींचने और टहलकर पांव सीधे करने के लिए रुके। स्वच्छ पहाड़ी जल-धाराएं हमारे पैरों के पास से होकर नदी की दिशा में बहती जा रही थीं। इनमें से कुछ ने तो इस स्थल से सैकड़ों फुट ऊंचे पर्वत पर बर्फ के पिघलने से जन्म लिया है और कुछ विस्मयकारी रूप से सूखी जमीन से ही निकल पड़ी हैं। लगता ऐसा है कि प्रकाश में प्रकट होने से पहले वे कुछ दूरी तक भूमिगर्भ में ही बहती हैं। कई बार हिममूषों की तीखी सीत्कार भी सुन पड़ी, किंतु यह छोटा-सा भूरे रंगवाला एक भी जानवर दिखाई नहीं पड़ा। मैं कच्ची उम्रवाले एक जोड़े को पकड़कर पालतू बनाना चाहता था। लेकिन कहा जाता है कि उन्हें जीवित पकड़ना टेढ़ी खीर है, क्योंकि वे हमेशा अपने बिलों के पास ही रहते हैं और किसीकी आहट पाते ही नाराज होकर बिल में घुस जाते हैं।

अंततः पंचतरणी के मैदान का दर्शन हो गया। दंतकथा के अनुसार प्राचीन काल में एक बार शिव तांडवनृत्य कर रहे थे। नृत्य करते-करते वे इतने भाव-विभोर हो गए कि उनका विपुल जटाजूट खुल पड़ा और उसमें से गंगा की पांच धाराएं भूमि पर गिर पड़ीं। ये पांच धाराएं (पंचतरंगिणी) बड़ी पावन मानी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जाती हैं, और उनमें स्नान करना बड़ा मंगलकारी समझा जाता है। पंचतरणी का मैदान लगभग एक मील लम्बा और चौथाई मील से कुछ ऊपर चौड़ा है। उसके बीच में से एक बड़ी धारा (नदी) बहती है जिसमें तीखी-तीखी चट्टानों वाले निर्जीव पहाड़ों पर से बहती हुई चार और जलधाराएं आ मिलती हैं। पूर्व में एक विशाल ग्लेशियर है जिसकी बर्फ पर शायद वायु के थपेड़ों से, अनोखे बड़े-बड़े छिछले गढ़े पड़ गये हैं, जिनके समान आकृतियां मैंने और कहीं नहीं देखी हैं। दूरबीन से देखने में उनमें और फोटो में अंकित चंद्रमा के गढ़ों में बहुत साम्य लगा।

आज भी मौसम बहुत अच्छा रहा। जब-तब मेघखंड उड़ते-उड़ते सूर्य को ढंक देते थे, जिसके कारण अचानक तापमान काफी गिर जाता था और हमें जाड़े के मारे कंपकंपी होने लगती थी। किंतु लगभग तत्काल ही वायु का एक सुखकर झोंका उस अप्रिय मेघ को उड़ा देता था और हम फिर सूर्य की सुखद उष्णता का आनंद लेने लगते थे।

भोजन के उपरांत एक झपकी लेने के बाद मैं खेमे के आसपास के दृश्य देखने के लिए पैदल निकल पड़ा। मेरी आहट पाकर अदृश्य हिममूष शोर मचाने लगते थे, किंतु लाख ढूंढ़ने पर भी लुकने-छिपने वाले इन छोटे जंतुओं में से एक भी दृष्टिगोचर नहीं हुआ। अपने खेमे के पीछे वाले पर्वत पर छोटे-से प्रपात के नीचे तक मैं चलता गया। मैंने देखा कि चारों ओर छोटे-छोटे वनपुष्पों की बहुलता थी। एक स्थान पर तो एक वर्ग गज क्षेत्र में मैंने गिनकर सात प्रकार के फूल पाये, जिनमें से सबके रंग एक-दूसरे से भिन्न थे। इन निर्जन पहाड़ों पर कितनी ही विरल, दुष्प्राप्य जड़ी-बूटियां उगती हैं। कहते हैं, उनमें से कुछ तो अत्यंत महत्त्व-पूर्ण हैं। कितने ही मनोहर पत्थर भी बिखरे पड़े थे, कुछ में हलकी नाजुक धारियां पड़ी हुई थीं और कुछ अभ्रक के पुट के कारण धूप में झिलमिला रहे थे।

शाम को हमने रोज के समान कीर्तन किया। उतनी ऊंचाई पर गाना भी काफी थकाता है। एक गाने के बाद ही सांस उखड़ने-सी लगती है। तदुपरांत भोजन करते ही हम जल्दी ही सोने चले गए, क्योंकि दूसरा दिन तो हमारी तीर्थ-यात्रा का चरमबिंदु था—पावन अमरनाथ गुहा के दर्शन!

दूसरे दिन प्रातःकाल पांच बजे ही तंबू के बाहर 'श्री अमरनाथ स्वामी की जय' की गुहार सुनकर जाग पड़ा। धर्मपरायण यात्रियों का गुहा की ओर प्रयाण आरंभ हो चुका था। ठंड इतनी थी कि एक घंटा और कंबलों के नीचे दुबके रहने के बाद ही मैंने निकलने का साहस किया। आठ बजे तक हम सब तैयार होकर आशा और उत्सुकता से उद्वेलित मन के साथ चल पड़े। प्रथानुसार गुहा के दैव-दर्शन से पूर्व मैंने कुछ भी न खाया, न पिया।

पंचतरणी से गुहा का मार्ग उसी पर्वत का चक्कर लगाता हुआ जा निकलता है जिसके तले हमारा खेमा था। कई सौ गज तक तो मार्ग नदी के साथ-साथ ही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चलता है, फिर मोड़ आते ही खड़ी चढ़ाई शुरू हो जाती है। आगे वड़े तीखे और चढ़ाई वाले मोड़ आते हैं, जिनमें से कुछ पर तो मनुष्य भयत्रस्त ही हो जाता है; क्योंकि राह बहुत संकीर्ण है और पैरों-तले की धरती त्रासदायक रूप से टूट-टूटकर विखरती है। शीघ्र ही हम ऐसी ऊंचाई पर पहुंच गये जहां से इधर-उधर देखो तो चक्कर आते हैं। फिर भी हम और ऊपर चढ़ते चले गए। कई वार, मोड़ आने पर मैंने आंखें मूंद लीं और सव मंगल रहे, यही कामना करता रहा।

तीन मील तक हमें लगातार चढ़ाई मिली। फिर अमरनाथ का महान उत्तुंग पर्वत सामने दिखाई पड़ा। चोटी से लेकर नीचे कई सौ फुट की चट्टानी सतह को छोड़कर शेष सारी ढलान घास से आच्छादित है और उस खतरनाक क्षेत्र पर घास चरते हुए घोड़े और वकरियां दूर से वड़ी शांति से खिसकते हुए काले विंदुओं से दीख पड़ते हैं। ये पशु उन दाढ़ीवाले वकरवाल कंजरों के हैं, जो जाड़ों में तो मैदानों पर उतर आते हैं किंतु गरमी में इस प्रकार के ऊंचे चरागाहों पर चढ़ जाते हैं। मैं देखता हूं कि वहीं उनके तंबू भी तने हैं, जिन्हें देखने मात्र से सिर चकराने लगता है। ये पशु एक कदम भी गलत उठायें तो सीधे दो हजार फुट नीचे गिरकर भुरता वन जायें, किंतु सहज वृत्ति, जो वहुधा मानवीय बुद्धि से अधिक विश्वसनीय है, हमेशा उनके काम आती है और वे सहज ही अपने पैर जमाये रहते हैं।

लगभग तीन मील की चढ़ाई के बाद एकाएक दायीं ओर मुड़कर हमारी तेज उतराई आरंभ हो गयी। शीघ्र ही हम एक खड़े पहाड़ों वाले तंग दर्रे के नीचे जा पहुंचे। दर्रे की चौड़ाई केवल १५० फुट के लगभग है और दोनों ओर के दीवार जैसे विशालकाय खतरनाक पर्वत सैकड़ों फुट ऊंचे हैं। आधा मील तक ठोस बर्फ पर चलते-चलते पहाड़ में एक विराट् विवर के समान अमरनाथ की प्रसिद्ध गुहा हमें दिखने लगी। हम दर्रे के लगभग अंत तक पहुंच गये, जहां गुफा से ५० फुट नीचे हमारे लिए एक तंबू पहले ही खड़ा कर दिया गया था।

गुफा की वायीं ओर पहाड़ पर अमरावती की धारा बहती चली आती है। धारा बहुत ही पावन है और भक्तों को कंदरा में प्रवेश करने से पहले उसमें स्नान करके अपने शरीर पर उसकी मिट्टी का लेप करना होता है। यहां भी मैंने परंपरा से हटकर बाल्टियों में तंबू में ही पानी मंगवाया, किंतु इस बार गर्म करवाये बिना ही उसी हिमशीतल जल से स्नान किया। आकाश स्वच्छ था और हवा में उष्णता थी। इस कारण जल की शीतलता से कोई कष्ट नहीं हुआ। उस ऊंचाई पर धूप बहुत गर्म लगती है और सूर्य भी मैदानों की अपेक्षा आकार में बड़ा दिखाई पड़ता है। फलस्वरूप हम सबकी त्वचा धूप से बुरी तरह तप गयी थी। स्नान के बाद केवल पीतांवर धारण करके मैं गुहा की कड़ी चढ़ाई पर चढ़ चला।

मार्गरेट नोबिल ने, जो सिस्टर निवेदिता के नाम से अधिक ख्यात हैं, स्वामी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विवेकानंद के साथ अपनी कुछ यात्राओं के वृत्तांत में स्वामी विवेकानंद द्वारा पुण्यतीर्थ अमरनाथ के दर्शन का वर्णन इस प्रकार किया है, "गुहा विराट् थी, इतनी विराट् कि एक कैथीड्रल ही उसमें समा जायें और महान हिम-लिंग सघन छायावाले एक विशिष्ट स्थल पर स्थित था, इतना पुनीत मानो अपने मूलाधार पर ही आसीन है।" उन्होंने लिखा है कि स्वामी विवेकानंद इतने भावावेश में थे कि गुहा में प्रवेश करते ही उनकी संपूर्ण देह कंपायमान हो गयी और वे भावावेश से मूर्च्छित हो गये। स्वामी जी ने भी बाद में कहा, "मुझे इतने अधिक आनंद की उपलब्धि हुई कि मुझे यही भान हुआ कि हिम लिंग-रूप में स्वयं शिव मेरे सम्मुख हैं।" वहां कोई लूटने वाले पंडे नहीं थे, कोई सौदेबाजी नहीं थी और किसी प्रकार की कोई असंगत बात नहीं थी। वहां केवल उपासना थी। आज तक किसी भी धार्मिक स्थान में इतना आनंद मुझे नहीं मिला। बाद में वे यह भी बताया करते थे कि उन्हें गुहा में एक विह्वलकारी अलौकिक अनुभव भी हुआ जिसमें शिव ने स्वयं उनके सम्मुख प्रकट होकर उन्हें अमरत्व का वरदान दिया कि वे जब तक स्वयं दैहिक बंधनों को त्यागने का निश्चय न कर लें तब तक मृत्यु नहीं आयेगी। वे उस धवल हिम स्तंभ के काव्यत्व की चर्चा करते हुए कहते थे कि पहले-पहल गड़रियों के एक दल को ही इस स्थान का प्रथम दर्शन हुआ था, जो एक बार ग्रीष्म ऋतु में अपने रेवड़ को दूर-दूर तक ढूंढ़ते हुए इस गुहा में घुस पड़े और उन्हें जमे हुए हिम-स्तंभ में साक्षात् महेश्वर के दर्शन हुए।

गुहा वास्तव में महाकार है। उसका मुखद्वार लगभग चालीस गज चौड़ा और पचीस गज ऊंचा है और मुखद्वार से लेकर गुहा का तला पर्वत के भीतर ढलवां होता-होता लगभग अस्सी फुट गहरी ढलान बन जाता है। अंदर आकर मध्य में भगवान शिव का प्रतीक लगभग पांच फुट ऊंचा ऊपर से गोलाकार एक हिम-निर्मित चमकीला स्तंभ बना हुआ है। उसके दायें बिलकुल श्वेत-रंगी हिम की छह फुट लंबी और तीन फुट व्यासवाली एक शिला है जो गणेश का प्रतीक मानी जाती है और इसी प्रकार बायीं ओर एक और हिम-आकृति है जो शिव की अर्धांगिनी पार्वती का प्रतीक है। ग्रीष्म ऋतु में उभरने वाली इन आकृतियों के संबंध में यह मान्यता है कि चंद्रमा की कला के अनुसार ही इनमें वृद्धि या क्षय होता है। पूर्णिमा के दिन ये अपने चरम उत्कर्ष को प्राप्त होती हैं और अमावस्या को बिलकुल विलुप्त हो जाती हैं।

इस गुहा की गणना भारतवर्ष के अत्यंत पावन तीर्थों में होती है। प्रवेश करते ही मुझे अचानक एक विचित्र अनुभूति हुई कि मैं यहां पहले भी आ चुका हूं। गुहा का वातावरण सचमुच अद्भुत है, जिससे अनेक व्यक्ति अत्यधिक प्रभावित हो जाते हैं। गुहा के पावन प्रांगण में प्रविष्ट होते ही मुझपर वातावरण का प्रभाव छा गया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगवान शिव के हिम-लिंग के सम्मुख मेरी धर्मपत्नी और मैंने पारंपरिक विधि से पूजन किया और धन, वस्त्र तथा मेवे अर्पण किये। फिर करवद्ध हो हम सबने भगवान शिव का एक स्तुति-गान किया। इसी प्रकार गणेश और पार्वती के प्रतीकों के आगे भी पूजन अर्पण किया।

इन भेंटों के बंटवारे की पारम्परिक विधि रोचक है। गुहा में स्थायी रूप से तो कोई रहता ही नहीं, इस कारण तीर्थयात्रियों के भेंट चढ़ाने के उपरांत हमेशा यात्रा के साथ ही आने वाला एक सरकारी अधिकारी सारी भेंटों को एकत्र कर लेता है। नकदी और वस्तु-रूप सारा चढ़ावा तीन बराबर भागों में विभक्त किया जाता है। एक भाग इस तीर्थयात्रा के श्रीनगरवासी महंत को दिया जाता है। दूसरा भाग पहलगांव से बीस मील पहले स्थित एक अन्य तीर्थस्थल 'मट्टन' के पंडों का होता है और तीसरा भाग पहलगांव के ही पास रहने वाले एक मुस्लिम 'मलिक' परिवार के हिस्से में आता है। इन तीनों स्वत्वधारियों के प्रतिनिधि हमारे साथ-साथ गुहा तक गये ताकि उनके भागांश में उन्हें कोई घाटा न पड़े।

पूजा की समाप्ति पर हम गुहा से बाहर चमचमाती धूप में आ निकले। गुहा में ठंडक थी और पतली धोती पहने मैं कांप रहा था। कंदरा से बाहर हमने कबूतरों का वह प्रसिद्ध जोड़ा देखा जो सर्वदा गुहा के समीप ही रहता है, यहां तक कि जाड़ों में भी, जब घास का एक तिनका भी दिखाई नहीं पड़ता। अनुश्रुति के अनुसार ये दोनों शिव जी के गण थे, जिन्होंने एक बार उनके ध्यान में विघ्न डाल दिया था। कुपित होकर शिवजी ने जो शाप दिया उसके कारण वे कबूतर बन गये और तब से सर्वदा उनके निकट ही गुफा में वास करते हैं। विलक्षण बात तो यह है कि ये कबूतर बीसियों साल से देखे जा रहे हैं, जो किसी भी सामान्य कबूतर की जीवनावधि से बहुत लम्बी अवधि है। यह कहना असंभव है कि ये वही कबूतर हैं या उनकी मृत्यु पर किसी रहस्यमय ढंग से उनके स्थान पर दूसरा जोड़ा आ जाता है।

उतराई पार करके हम अपने तम्बू में पहुंच गये, जहां हमारे लिए खाना ताजा तैयार था। खाना खाकर मैं कुछ देर लेट गया। अब तक गुहा फिर से बिलकुल सुनसान हो गयी थी और मैं फिर वहां चला गया। इस बार मुझे गुहा का अंदर से भली प्रकार दर्शन हो पाया और हिम-निर्मित आकारों का भी ठीक से दर्शन हुआ जो सचमुच ही विलक्षण हैं।

अनिच्छापूर्वक मैं गुहा से बाहर निकलने लगा तो अपने एक अवर्णनीय आकर्षण के कारण यह विदाई मर्मस्पर्शी बन गयी। इस चमकीले हिम-लिंग में अद्‌भुत आकर्षण है, और उससे विदा लेने में मुझे कुछ कठिनाई ही प्रतीत हुई!...

पंचतरणी तक की वापसी खूब चुस्ती से तय हुई और हम छह बजे तक पड़ाव पर वापस पहुंच गए। दैनिक संकीर्तन के बाद शांति और संतोष भाव से व्याप्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मन लेकर मैं सोने चला गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल जल्दी ही हमें पंचतरणी से कूच करना था क्योंकि इस बार बीच के पड़ाव पर रुके बिना ही शाम तक चंदनवाड़ी पहुंचना था। दांडी में झूलते हुए जाते समय मुझे एक विचित्र कसक की अनुभूति होने लगी, मानो किसी परम प्रिय मित्र को पीछे छोड़ आया हूं। मुड़कर अमरनाथ पर्वत का अंतिम दर्शन लेकर मैंने मन ही मन अमरनाथ स्वामी को मौन श्रद्धांजलि अर्पित की।

महागनस पर्वत के ऊपर पहुंचने के लिए पांच मील की क्लांतिकारी चढ़ाई आरंभ हुई। राह में हमारे दायीं ओर 'हत्यारा तालाव' नामक स्थल पड़ता है जहां एक वार हिम-स्खलन के कारण चालीस तीर्थयात्री मृत्यु को प्राप्त हो गए थे और इसका कारण उनका भजन गाना ही था। वहुत खतरनाक होने के कारण वह रास्ता अव वंद कर दिया गया है।

पर्वत शिखर पर पहुंचते ही दांडी-वाहकों की गति तेज हो गई और मध्याह्न तक हम शेषनाग पहुंच गए। फौरन ही मैं अपने प्रिय स्थल की ओर चला गया, जहां से सरोवर और प्राचीन हिम-पूरित तीन उत्तुंग भव्य चोटियों के दर्शन होते हैं।

मध्याह्न का भोजन करते ही हम फिर चल पड़े, क्योंकि हम अंधेरा होने से पहले ही दुर्गम पिस्सू घाटी पार कर लेना चाहते थे। जव शेषनाग से ५०० फुट ऊपर के रास्ते पर मेरी दांडी चली जा रही थी तव मेरे मन में सरोवर के तट पर जाने की असंवरणीय उत्कट लालसा जाग उठी। आधी दूर नीचे जाकर अचानक मुझे हिम-मूष की आवाज विलकुल सन्निकट सुनाई पड़ी और मोड़ मुड़ते ही केवल वीस फुट की दूरी पर पिछले पैरों के वल खड़ा एक हिम-मूष मुझे दिखाई पड़ा। वह वहुत ही प्यारा-सा दीखता था और मैं उसका केवल कुछ फुट से चलचित्र खींच ही पाया था कि वह वापस अपने विल में अंतर्धान हो गया। झील के किनारे तक जाकर हमने उसका हिम-शीतल जल पिया। झील खूब गहरी है और कगार सीधे खड़े हैं जिनसे काफी फुट नीचे पानी है।

तट पर चलते-चलते हमें एक चट्टान मिली जिसपर शेषनाग का प्रतिनिधित्व करने वाले सात फन वाले एक सर्प की मूर्ति गढ़ी हुई है। अंततः श्रमपूर्वक दुर्गम पहाड़ पर चढ़ते-चढ़ते हम अपने मार्ग पर जा पहुंचे।

लगातार चौथे दिन भी मौसम विलकुल साफ और सुंदर रहा। हमारे दल में एक दुराग्रही भविष्यवक्ता भी था जो सर्वदा खराब मौसम, पहाड़ टूटने या दूसरी घोर आपत्तियों की भविष्यवाणियां करता रहता था। किंतु हम सबका सौभाग्य कि मौसम ने अपना यथासंभव उत्कृष्टतम रूप ही दिखाया, अन्यथा निश्चय ही पिस्सू घाटी और ऐसी ही दूसरी खतरनाक चढ़ाइयां खराब मौसम में तय करना मुझे रुचता नहीं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शेषनाग को दृष्टि से ओझल करने वाले मोड़ को पार करते ही फिर से पेड़ दिखाई पड़ने लगे और जैसे-जैसे हम चंदनवाड़ी की ओर बढ़ते चले, वृक्षावली भी सघनतर होती चली।

आखिरकार हम पिस्सू घाटी आ पहुंचे, किंतु अब तक मुझे भारवाहकों पर पूरा भरोसा हो गया था, जो कड़ी उतराई आसानी से तय करते जा रहे थे। सूर्यास्त से ठीक पहले ही हम चंदनवाड़ी पहुंच गए और कीर्तन और भोजन के उपरांत सोने चले गए।

दूसरे दिन प्रातःकाल हम अपनी वापसी श्रीनगर-यात्रा के अंतिम पड़ाव पहलगांव के लिए निकल पड़े। दर्रे में साथ-साथ बहती हुई लिद्दर नदी का रंग अभी भी अपने मूल स्रोत शेषनाग सरोवर के हरे रंग जैसा ही था। उल्लास से गाती हुई छोटी-छोटी चिड़ियां पेड़-पेड़ पर फुदक रही थीं। एक स्थल पर एक चट्टान पर बैठा हुआ बंदर चंचल-चकित भाव से हमें निहार रहा था।

मेरी वापसी की खबर मुझसे पहले ही पहुंच गई होगी, तभी कई स्थानों पर गूजर लोग मेरा स्वागत करने को एकत्र थे और उनकी स्त्रियां पहाड़ी स्वागत-गीत गा रही थीं। गूजर कुछ हद तक एक खानाबदोश जाति है। वे भैंसों के रेवड़ पालते हैं और प्रति वर्ष मैदानी क्षेत्रों में उतर आते हैं। उनके गानों का लययुक्त डोगरा पहाड़ी गीतों से बड़ा साम्य है।

रास्ते में भारवाहकों से बातचीत करने लगा। उनमें से एक बूढ़े ने, जिसका मुखमंडल विद्याभ्यास से नहीं, कालांतर से प्राप्त ज्ञान की गरिमा से व्याप्त था, मुझे अपना सीधा-सादा जीवन-दर्शन बताया। वह बोला, "सरकार, खुदा धीरज रखने वालों की मदद करता है। कठिनाइयां और विपत्तियां आती तो हैं, किंतु उनको धीरज के साथ और खुदा में विश्वास रखकर सहना चाहिए। इसी यात्रा को देख लें। पहले दिन खूब वर्षा पड़ी और काफी असुविधा हुई। यदि आप हताश होकर वापस लौट आते तो यात्रा असफल ही रहती। किंतु आपको भगवान में आस्था थी, सो बढ़ते चले। नतीजा यही हुआ कि यह तीर्थयात्रा पूरी तरह सफल हुई।"

शीघ्र ही हम पहलगांव पहुंच गए। पहले से ही मकान के बाहर केवल छोटी-सी कमीज पहने एक छोटा-सा कश्मीरी बालक उत्सुक प्रतीक्षा में खड़ा था। जैसे ही मेरी दांडी पास से गुजरी, वह प्रसन्नता से किलकारता हुआ सबसे अगले भारवाहक से जा लिपटा, जो प्रकट ही उसका पिता था। इस छोटी-सी घटना ने मेरे मन को छू लिया।

पहलगांव में हम क्लब जा पहुंचे और तेजी से बहती नदी के ठीक किनारे लकड़ी के बने खुले बरामदे में बैठ गए। मैं सोचने लगा, 'ओ लिद्दर, मैं उस विराट् त्रिशिखरीय ग्लेशियर में तेरा उद्गम देख आया हूं। मैंने तुझे उसके हिम--

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मंडित ढलानों पर हरहराते हुए हरे शेषनाग सरोवर में मिलते भी देखा है जहां से तू परिवर्द्धित काया और शक्ति लेकर ही आगे प्रकट होती है। तुझे मैंने मुड़ते, बलखाते देखा है, और संकीर्ण दर्रे के बीच तेरे छोटे-छोटे सरोवरों और प्रपातों का मैं साक्षी हूं और अब तू यहां से घहराती हुई बहती जायेगी, जब तक कि अंत में विस्तृत मंदगामी झेलम के जल से तेरा संगम नहीं होता।'

मध्याह्न भोजन करके मैं जल्दी-जल्दी दो स्थानीय मंदिरों में देव-दर्शन करके श्रीनगर के लिए मोटर में रवाना हो गया। दोनों ओर मुस्कराते हुए मक्के और धान के खेतों के और चिनारवृक्ष की दो पांतों के बीच कार से गुजरते हुए बारंबार पावन अमरनाथ गुहा का मुझे स्मरण हो आता था। वे उत्तुंग पर्वत कितने सुदूर, कितने अगम्य, वह संकरा ऊंचा रास्ता कितना खतरनाक लगता है! किंतु गुहा पर पहुंचते ही मन कितना शांत और निरुद्विग्न हो जाता है! इसी कारण मैं यह आशा करने का दुस्साहस करता हूं कि जीवन के दुर्गम गिरि-पर्वतों और गहरी खाइयों को पार करके गहन तथा शाश्वत शांति को प्राप्त होऊंगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मेरा चुनाव-अभियान एक आध्यात्मिक अनुभव

मेरा दृढ़ विश्वास है कि आध्यात्मिक खोज का कार्य हमारे जीवन की समग्रता से अलग नहीं किया जा सकता और कोई व्यक्ति इस आध्यात्मिक खोज को अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य बना ले, तो उसके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि उसे अपनी मानव-प्रवृत्तियों के प्रत्येक पहलू में झांकना पड़ेगा, भले ही वे प्रवृत्तियां कितनी ही गैर-आध्यात्मिक क्यों न प्रतीत हों। आम तौर से ऐसा माना जाता है कि राजनीति से अध्यात्म का विरोधाभास है क्योंकि राजनीति में अनेक प्रकार के भटकाव होते हैं और उसमें व्यक्ति के लिए समझौते करने से बच सकना असंभव है। जैसा कि हमारे भूतपूर्व राष्ट्रपति, श्रद्धेय डा० राधाकृष्णन ने कहा है, "भारतीय राजनीति में श्रीकृष्ण और जनक सदृश व्यक्ति ही आदर्श रहें हैं, जिन्होंने राजनीति और शासनतन्त्र में सक्रिय रूप से भाग लेते हुए भी अध्यात्म के ज्यादा विस्तृत और गहन लक्ष्य को कभी अपनी आंखों से ओझल नहीं होने दिया।"

इस संदर्भ में मुझे अपना पहला चुनाव-अभियान अत्यन्त रोचक प्रतीत हुआ। एक दृष्टि से यह सब कुछ, मेरे लिए एक बिलकुल नयी चीज थी क्योंकि पिछले अट्ठारह वर्षों से सार्वजनिक मामलों में सम्बद्ध रहते हुए भी मैं जनता से अभी हाल-हाल तक अलग-थलग रहा था। सदरे-रियासत और राज्यपाल के रूप यद्यपि मुझे व्यापक दौरे करने पड़ते थे और सार्वजनिक भाषण करने पड़ते थे तथापि संवैधानिक प्रतिबंधों के कारण जन-साधारण और मेरे बीच हमेशा एक दूरी रहती थी। इस बार स्थिति बिलकुल भिन्न थी क्योंकि अब मैं जनता के बीच उसीके एक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सदस्य के रूप में खड़ा हुआ था और उससे उसका आदेश और विश्वास का प्रमाण पत्र मांग रहा था। यह एक रोचक और प्रेरक तथा कई दृष्टियों से विनय की प्रतीति कराने वाला अनुभव भी था।

मैंने अपने चुनाव के सिलसिले में बारह दिनों तक दौरा किया और एक-एक दिन में अट्ठारह-अट्ठारह सभाओं तक में भाषण किया। इन बारह दिनों में लोगों की उमड़ती भीड़, नारेबाजी, स्वागत-भाषण और स्वयं मेरे भाषण एक ऐकांतिक और अविस्मरणीय अनुभव के रूप में मेरी चेतना में घुल-मिल गये। मैंने देखा कि भीड़-भाड़ और शोर और गर्द-गुबार से मुझे जो परेशानी होती थी, वह थोड़े ही समय बाद उतनी परेशानीतलब नहीं रह गयी, और मैं इस कार्य के मध्य भी एक विचित्र प्रकार की अनासक्ति का अनुभव करने लगा। मैं अपने-आपको बराबर उस गहनतर आध्यात्मिक खोज की याद दिलाने की कोशिश करता रहा जिसका कि सार्वजनिक जीवन में घुलना-मिलना मात्र एक पहलू और एक प्रतीक है। कहते हैं कि बवण्डर का केन्द्र-स्थल अक्षुब्ध और शांतिपूर्ण होता है। चुनाव अभियान के दौरान इस शांति को प्रयत्नपूर्वक अपने मन में उत्पन्न करने का यत्न एक मनमोहक प्रयत्न था।

जीप के जरिये लगातार एक स्थान से दूसरे स्थान के लिए चलते रहने की प्रक्रिया ने इस विचित्र अनुभव माला में एक नया अनुभव जोड़ दिया। ऐसा लगता था जैसे सड़क के किनारे मुझे जो थोड़ी-थोड़ी देर के लिए रुकना पड़ता था वे मानव-जीवन के अनिवार्य स्थायित्व के प्रतीक थे, उस कालचक्र की भांति जिसमें हमारे जीवन अनन्त की ओर जा रहे, राजमार्ग पर विश्राम-स्थल सरीखे हैं। एक दिन तीसरे पहर जब मैं और मेरी पत्नी पहाड़ों के मध्य से गुजर रहे थे, सहसा बादलों के एक टुकड़े ने सूरज को छिपा लिया, और जैसे कोई जादू की छड़ी घूम गयी हो, इस प्रकार सारी दृश्यावली ही बदल गयी। सूरज की किरणें रुपहली आभा लिये बादल के बीच इधर-उधर से तीरों की तरह निकलकर फैल चलीं और स्वयं वह बादल का टुकड़ा एक दैवी आभा से दीप्त हो उठा। यह एक ऐसा दृश्य था जो मेरी स्मृति के लिए पूरी स्पष्टता के साथ अंकित हो गया। मेरे मन में उस समय उपनिषद् के ये भव्य शब्द कौंध गए : 'हिरण्मयेन पात्रेन सत्यस्या पिहतं मुखम्'—अर्थात् सत्य का मुख स्वर्ण-पात्र से ढका हुआ है।

और फिर मुझे जनता के साथ सम्पर्क का अनुभव हुआ—स्त्री-पुरुष, आबाल वृद्ध, लड़के-लड़कियां, अमीर-गरीब, हिंदू और मुसलमान, जय-जयकार करती हुई या चुपचाप मेरा भाषण सुनती हुई हजारों की भीड़। समूह के रूप में मानवता को देखने का, जीवन के स्पन्दन को अनुभव करने का यह अनुभव एक ऐसा हृदय-स्पर्शी अनुभव था जिससे मैं राजभवन की परिसीमा में रहते हुए वंचित ही रहा था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बिल्लावर में प्राचीन शिव-मंदिर है, जो कई सौ साल पहले बनाया गया था। इसके निकट एक वृद्ध महिला एक छोटे-से कमरे में रहती है। कहा जाता है कि उसकी आयु एक सौ साल से भी ज्यादा है और स्पष्टतः उसकी यह तीव्र कामना थी कि मैं उससे मिलने जाऊं। जब मैं उससे मिलने गया तब उसने मेरा इस उत्साह और प्यार से स्वागत किया कि मैं ठगा-सा रह गया। एक अन्य अवसर पर एक सार्वजनिक सभा में एक भूतपूर्व सैनिक मेरे पास आया, जिसके सीने पर तमगे ही तमगे लटके हुए थे और उस समय तो मुझे बहुत ही अटपटापन महसूस हुआ जब उसने इस बात की जिद जैसी ठान ली कि वह मेरे पैर छुएगा।

इस तथा ऐसे ही दर्जनों अवसरों पर मेरे मन में विचार आया कि इन लोगों के मन में जो आशाएं और आकांक्षाएं हैं, उन्हें मैं कैसे पूरा कर सकूंगा? इनके प्यार और विश्वास का प्रतिदान किस प्रकार दे सकूंगा, वे अभाव और अक्सर विकट गरीबी में जीवन व्यतीत करते हैं, लेकिन उनके हृदय में जैसी उदारता भरी हुई है वह हमारे अपेक्षाकृत ज्यादा सम्पन्न नगरवासियों में शायद ही होती हो।

मेरी सभाओं में श्रोता वर्ग में ज्यादा संख्या नवयुवकों की होती थी। मुझे लगता था जैसे उनकी आंखों में मुझे एक नये भारत के दर्शन हो रहे हैं, एक ऐसा भारत जिसमें अभाव और गरीबी का नामोनिशान नहीं है, ऐसा भारत जिसमें जनसाधारण के कल्याण का व्यक्ति के निजी धनार्जन के साथ सामंजस्य बैठता है, ऐसा भारत जिसमें प्राचीन के प्रति उचित आदर है और नवीन का पूरा ज्ञान है, एक ऐसा भारत जिसमें हमारे पूर्वजों की प्रार्थनाएं और आगे आने वाली पीढ़ियों की कामनाएं साकार होती हों और यही चीज है जो अंतिम विश्लेषण में राजनीति को मनुष्य की गहनतर खोज के साथ जोड़ती है। हर व्यक्ति अकेला है, और यदि वह एक राष्ट्र को और अच्छा राष्ट्र बना सकने में मदद कर सकता है तो क्या यह स्वयं में उसकी आन्तरिक आकांक्षा की पूर्ति का एक बुनियादी पहलू नहीं है?

हजारों वर्ष पहले ईशावास्य उपनिषद् में कहा गया था: "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतम् समाः।"

अर्थात्, इस संसार में कर्म करते हुए मनुष्य को सौ वर्ष तक जीने की कामना करनी चाहिए और इसके बावजूद यह संसार ईश्वर से कोई भिन्न चीज नहीं है।

ईशावास्यमिदं सर्वंयत्किच जगत्याम् जगत्

—अर्थात् इस जगत् की प्रत्येक गतिशील वस्तु में ईश्वर का निवास है।

इस प्रकार मनुष्य संसार और परमात्मा के बीच की सुनहरी कड़ी है और यदि मनुष्य अपनेको कृतार्थ करना चाहता है तो उसे अपने मन रूपी पात्र में इन दोनों का मेल प्रदान करना चाहिए। मेरी राय में राजनीतिक जीवन में प्रवेश करने का यही एक समुचित कारण हो सकता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हिन्दी का विश्व-दर्शन

मोरिशस की भूमि हमारे पूर्वजों की तपोभूमि रही है, कर्मभूमि रही है। किन दुःसह यातनाओं को झेलकर उन लोगों ने अद्‌भुत धैर्य, सहिष्णुता और गरिमा के साथ इस धरती के भाल पर लगा 'दण्डभूमि' का कलंक पोंछकर इसे विश्व के गण्य देशों की पंक्ति में लाकर खड़ा किया, यह इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। मानव की प्रगति यात्रा में यह प्रक्रम अद्‌भुत और अतुलनीय है। यह उन्हींके परिश्रम का फल है कि हम यहां एकत्रित होकर उस भाषा के विषय में विचार-विमर्श कर रहे हैं जो कठोर प्रतारणाओं के बीच उनके जीवन को रससिंचित करती रही और सुनहरे भविष्य का सन्देश देती रही।

आज इस ऐतिहासिक विश्व-सम्मेलन के अध्यक्ष पद पर बैठे हुए अनेक बातें मेरे स्मृतिपटल पर आकर टकरा रही हैं। मुझे याद आ रहा है विश्व का प्राचीन इतिहास, वे प्राचीन संस्कृतियां जिन्होंने संसार को सर्वप्रथम विश्व-प्रेम का मंत्र दिया, तपस्या और ध्यान के बल से आध्यात्मिक ज्योति को प्रज्वलित किया और भक्ति तथा प्रेम का शाश्वत संदेश मानव-जाति को प्रदान किया। मुझे उन संस्कृतियों की भी याद आ रही है जिन्होंने मानव को संघर्ष दिया, पाषाण-युग की निर्ममता दी। मैं सोच रहा हूं कि भारत और पूर्व के देशों ने संसार को क्या दिया—ससीम में असीम की खोज, काल-सापेक्ष में कालातीत का दर्शन, वस्तुतः यही पूर्व की आत्मा है। बुद्ध ने आज से २५०० वर्ष पूर्व मानवता को नयी चेतना प्रदान की, उसी प्रकार इस युग में गांधी जी ने अहिंसा के माध्यम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से विकीर्ण मानवता के हाथ में संस्कृति का एक सशक्त अस्त्र दिया। जहां एक ओर विश्व के विनाश का कुचक्र चल रहा था वहीं दूसरी ओर गांधी जी हृदय की भाषा में बता रहे थे कि मानव जाति के लिए एक और भी मार्ग है— पारस्परिक विद्वेष और कटुता के मिटाने का। दो महायुद्धों से गुजरी पश्चिम की मानवता सोच रही है कि इस ध्वंस और विनाश से तो कहीं अच्छा ईसा का प्रेम और करुणा का सन्देश था। उनकी युवा-पीढ़ी अनात्मवाद से पीड़ित होकर उस अमृत की खोज में भटक रही है, जो शायद उन्हें पूर्व में मिल सके।

आज प्राचीन मान्यताएँ टूट रही हैं और नवीन की खोज में मानव भटक रहा है। हमारी पीढ़ी अतीत और भविष्य के मध्य में अपने व्यक्तित्व की खोज में है। आज विश्व को दो चीजों की आवश्यकता है, एक तो मस्तिष्क विशाल हो ताकि नये तथ्य को ग्रहण करने की क्षमता उत्पन्न हो सके और दूसरे मानव हृदय नयी चेतना को प्रकट करने का माध्यम बन सके। भारतीय वाङ्मय का अनुशीलन करें तो लगेगा की इन्हीं तथ्यों की अभिव्यक्ति करना सत्यद्रष्टा का उद्देश्य रहा है। उपनिषद् का अमर संदेश है कि जीवात्मा और ब्रह्म का समन्वय ही मानव जाति का सर्वोच्च लक्ष्य है :

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं सन्धयीत।
आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षर सौम्य विद्धि।
प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत् तन्मयो भवेत्।

यह पृष्ठभूमि मैंने इसलिए दी कि हिंदी भाषा के माध्यम से जगत् को प्रेम, बंधुत्व और आध्यात्मिक नवजागरण का संदेश ले जाने से ही उसकी विश्व-भर में प्रतिध्वनि गूंज पाएगी। यह भौतिक शक्ति और बल का सन्देश नहीं है, यह तो मानवता के विभक्त हृदयों को एक-दूसरे के निकट लाने का संदेश है, हृदयों के संगम का संदेश। हिंदी प्रारंभ से ही समन्वय और एकता की भाषा रही है। कबीर, नानक और जायसी; सूर, तुलसी और रहीम; मीरा, रसखान और घनानन्द इन सब महान कवियों का उद्देश्य था जनजीवन को अध्यात्म-सूत्र में पिरोना। इन सबने अधिकांश हिंदी का ही प्रयोग किया, क्योंकि उस समय भी यह भारत के बहुत बड़े भू-भाग की भाषा थी। उस काल के कवियों ने हिंदू, मुसलमान, सिक्ख सभी के बीच एकता और समन्वय का संदेश दिया। उनको चाहे कटु आलोचना का सहारा लेना पड़ा हो, चाहे प्रेम की भाषा का, उद्देश्य एक ही था— धर्म, समाज और साधना के क्षेत्र में घुस आई कुरीतियों और दम्भ का निराकरण तथा समन्वयकारी तत्त्वों की प्रतिष्ठापना। संत तुलसीदास ने अपने अमर ग्रंथ रामचरितमानस में कहा है :

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कँह हित होई॥

यह सर्वैक्य और समन्वय की धारा हिंदी में निरंतर चलती आई और जब कभी संकट आया, जहां कहीं उसका तिरोभाव हुआ वहीं वह पुनः नये वेग से प्रस्फुटित हुई। यह विदेशी आक्रमण और विदेशियों के शासन काल में भी प्रेम और समन्वय के पथ पर ही आगे बढ़ती गई। आधुनिक युग में इसी धारा को जहां भारतेन्दु हरिचन्द्र ने नया मोड़ दिया वहां रत्नाकर और हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त और जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा और रामधारी सिंह 'दिनकर' तथा मुंशी प्रेमचंद और वृन्दावन लाल वर्मा, जैनेंद्र, यशपाल और अज्ञेय जैसे साहित्यकारों ने भी समस्त मनन-चिंतन व हृदय मंथन के अनन्तर नये युग के अनुरूप नयी चेतना का स्वागत हिंदी के माध्यम से किया। इनका संदेश भौतिक तर्कजाल से मुक्ति और भय-संशय-जर्जर विश्व के लिए आशा का पीयूष था। एक आधुनिक कवि के शब्दों में :

असत्य भोग-वासना, असत्य सिद्धि कामना,
मनुष्य सत्य त्याग है, मनुष्य सत्य भावना!
रुको, झुको, करो मनुष्य, प्रेम की उपासना!
मिली तुम्हें न यदि दया, मिली तुम्हें न भावना।
विनाश है मनुष्य तब समस्त ज्ञान साधना।

रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती, श्री अरविंद और महात्मा गांधी जैसे युगद्रष्टा और निर्माताओं से हिंदी का साहित्यकार सदा प्रभावित होता रहा है। नये लेखक और कवि भी जीवन के नये आयामों की खोज में व्यस्त हैं। उनमें आस्था की कमी झलक सकती है, पर वह नये को साकार करने की बेचैनी के फलस्वरूप ही है। वह सारी विगत मान्यताओं को ध्वस्त कर अपनी चेतना का नखशिख रूपांतर करने में सतत प्रयत्नशील है। पश्चिम की वैज्ञानिक प्रगति और पूर्व की आध्यात्मिकता—इन दोनों के प्रति उसका मन उन्मुक्त रहा है।

आज जब हिंदी राष्ट्रभाषा से विश्वभाषा बनने जा रही है, हिंदी साहित्यकारों का दायित्व बहुत बढ़ जाता है। हिंदी विश्वभाषा बनकर मानव को शांति, प्रेम, बन्धुत्व और नई चेतना का संदेश दे, तभी उसकी सार्थकता होगी। हिंदी यूनेस्को की भाषा बन चुकी है और एक न एक दिन संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा भी बनेगी। जनवरी, १९७५ में आयोजित प्रथम विश्व हिंदी-सम्मेलन की कार्यवाही को देखकर और उसमें भाग लेने वाले प्रतिनिधियों के भाषणों को पढ़ने से स्पष्ट है कि हिंदी के विकास की ओर विश्व का ध्यान किस तेजी के साथ जा रहा है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आज हिंदी विश्व के लगभग ९३ विश्वविद्यालयों में एक विषय के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है। मोरिशस में तो १९३५ से ही हिंदी प्रचारिणी सभा स्थापित हो चुकी थी, और १९६८ में आजादी के बाद इस देश ने हिंदी के विकास में जो योगदान किया है उसपर हर हिंदीभाषी को गर्व है। प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन के उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता करते हुए मोरिशस के प्रधानमंत्री जी ने कहा, "हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा तो है ही, लेकिन हमारे लिए इस बात का अधिक महत्त्व है कि वह एक अंतर्राष्ट्रीय भाषा है। मोरिशस, सूरीनाम, गियाना, फीजी और अफ्रीका के कई देश इस बात का मान करते हैं कि भारत की राष्ट्रभाषा को अंतर्राष्ट्रीय भाषा बनाने में उनका हाथ रहा है।" इस तथ्य पर भारतवर्ष को भी बहुत गौरव है।

आज हिंदी सभी प्रकार के विचारों की एक समर्थ वाहिनी बन चुकी है और बोलने वालों की संख्या को देखते हुए यह विश्व की चार प्रमुख भाषाओं में से एक है। इसमें अन्य भाषाओं के शब्दों को ग्रहण करने की क्षमता है। देववाणी संस्कृत के साथ तो हिन्दी का अधिक सामीप्य है, क्योंकि वह हिंदी की ही नहीं, कई भाषाओं की जननी है। इस अवसर पर एकत्र सदस्यगण के सामने मैं यह प्रार्थना करना चाहूंगा कि जहां वे हिंदी के प्रचार-प्रसार में अग्रसर हैं, वहां उनका संस्कृत की ओर भी ध्यान देना आवश्यक हो जाता है। इस सशक्त, सजीव भाषा के सीखने के प्रबन्ध हर उस देश में होने चाहिए जहां हिंदी भाषाभाषी रहते हों। इससे हिंदी साहित्यकारों तथा दार्शनिकों को ही लाभ नहीं होगा बल्कि हिंदी भाषा को समृद्ध बनाने में सहायता मिलेगी। इसके अतिरिक्त हिंदी तथा अन्य भाषाओं का परस्पर अनुवाद के माध्यम से संबंध बढ़ाना भी जरूरी है। भारत में लिखे जाने वाले हिंदी साहित्य को अन्य देशों तक, और अन्य देशों के साहित्यकारों की हिंदी रचनाओं को भारत तक पहुंचाना एक बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसीसे हिंदी जगत् की आंतरिक शक्ति बढ़ेगी और हिंदी का अंतर्राष्ट्रीय रूप अधिक निखरेगा। इसके लिए अंतर्राष्ट्रीय हिंदी पत्रिकाओं की आवश्यकता है जो हिंदी का संदेश विश्व के हर उस क्षेत्र तक पहुंचाएं जहां हिंदीभाषी तथा हिंदीप्रेमी रहते हों। इसके अतिरिक्त हिंदी प्रकाशन के अधिक विस्तार के प्रश्नों पर भी इस सम्मेलन को विचार करना होगा। भारत में साहित्य के अतिरिक्त अन्य ज्ञान और विज्ञान-संबंधी विषयों पर हिंदी के प्रकाशन बढ़ते चले जा रहे हैं, इनको अन्य देशों तक पहुंचाना बड़ा आवश्यक है।

इस द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन के सामने और भी बहुत सारे महत्त्वपूर्ण विषय हैं जिनपर हमें इन तीन दिनों में विचार करना है। इस सम्मेलन पर हिंदी जगत् की ही नहीं, बल्कि समस्त संसार की आंखें लगी हुई हैं। प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम के नेतृत्व में जिस प्रेम तथा कार्यकुशलता से मोरिशस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सरकार एवं जनता ने इस सम्मेलन का प्रबंध किया है उसके लिए मैं आप सबकी ओर से उनको और उनके साथियों को हार्दिक बधाई देता हूं। मेरा विश्वास है कि इस सम्मेलन से हिंदी को बहुत लाभ होगा और हिंदी भाषाभाषियों को तथा हिंदी प्रेमियों को नई प्रेरणा मिलेगी। मैं यह स्पष्ट कर दूं कि हिंदी केवल उन व्यक्तियों तक सीमित नहीं है जिनकी वह मातृभाषा है। मेरी अपनी मातृभाषा डोगरी है और हमारे प्रतिनिधिमंडल के अनेक सदस्य हिंदीतर भाषी प्रदेशों से हैं। जैसे अंग्रेज़ी को लाखों लोग बोलते हैं जिनकी वह मातृभाषा नहीं है, वैसे ही हिंदी भी एक अंतर्राष्ट्रीय भाषा होने के नाते प्रयुक्त होनी चाहिए। इसमें कोई जाति या धर्म का प्रश्न भी नहीं है। ऐसी भाषाएं तो समस्त मानव जाति की निधि हैं। वस्तुतः सब भाषाओं से अधिक महत्त्वपूर्ण मानव जाति तथा उसका भविष्य है, और हर भाषा की यह कसौटी है कि वह कहां तक उस भविष्य को उज्ज्वल बनाने में योगदान कर पाती है। मेरा विश्वास है कि हिंदी इस कार्य में अग्रसर रहेगी।

मैं द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन के सदस्यों के लिए, जो विश्व के हर कोने से इस सुंदर देश में इकट्ठे हुए हैं, भारतवर्ष की नेता श्रीमती इंदिरा गांधी, भारत सरकार तथा भारत की ६० करोड़ जनता की ओर से शुभकामना और प्रेम का संदेश लाया हूं। हमारा यह दृढ़ संकल्प है कि हम मिलकर एक नये विश्व के निर्माण में जुट जाएं—एक ऐसे विश्व का जहां अमीरी और गरीबी, रंग और जाति के भेद सदा के लिए मिट जाएंगे, जहां मानवता ही एक मात्र बंधुत्व की परख होगी, जहां सभी धर्म और मजहब का समावेश होगा, जहां देशों की धनराशि भयंकर अणु युद्ध-सामग्री के बजाय विकास कार्य और बच्चों के पालन-पोषण पर लगेगी; जहां विभिन्न विचारधाराएं होते हुए भी देश एक दूसरे से मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करेंगे, जहां प्रत्येक मानव के भीतर दैविक शक्ति की चिनगारी को आध्यात्मिकता के प्रज्वलित प्रकाश में परिवर्तित किया जाएगा। ऐसे विश्व के निर्माण में हिंदी जगत् पर्याप्त योगदान कर सके—यही इस अध्यक्ष पद से मैं आशा तथा विश्वास प्रकट करना चाहता हूं। मार्ग कठिन है, तलवार की धार के समान, लेकिन यदि मानव जाति का अस्तित्व बनाए रखना है तो हमें इसी पथ पर चलना होगा—हिम्मत से, धैर्य से, आत्मविश्वास से—

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्ग पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥*

*२८ अगस्त, १९७६ को मोरिशस में आयोजित द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधिमंडल के नेता के रूप में दिया गया अध्यक्षीय भाषण।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बहुमुखी चिन्तन के रंग

स्वरों को शब्दों में बांधना न सहज है, न स्थिर। साक्षात्कार एक ऐसी ही विधा है, जिसमें प्रश्न से अधिक उत्तर मुखरित होते हैं। 'विश्व हिन्दी दर्शन' के संपादक तथा हिन्दी के लिए समर्पित यायावर श्री लल्लन प्रसाद व्यास से डा० कर्णसिंह की विभिन्न विषयों पर अनौपचारिक बातचीत।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बहुमुखी चिंतन के रंग

लल्लन प्रसाद व्यास : आप अब जीवन के सक्रिय, सोद्देश्य और सफल ५० वर्ष पूरे कर रहे हैं ऐसे समय देश, देश की स्थिति, समाज और संस्कृति के संबंध में आपके क्या विचार हैं, आपका क्या चिंतन है ?

डाक्टर कर्णसिंह : ५० वर्ष में हमने बहुत परिवर्तन देखे हैं। भगवान की बड़ी कृपा रही। बचपन में जिस समाज और जिस देश में मैं पैदा हुआ वह समाज और देश अब है नहीं। उस समय हम पराधीन थे। इस समय हम स्वतंत्र हैं। उस समय जम्मू-कश्मीर एक अलग राज्य माना जाता था। आज मैं अपने-आपको एक भारतीय मानता हूं, जिसका जम्मू-कश्मीर राज्य से संबंध अवश्य है लेकिन जिसके लिए सारी मातृभूमि एक जैसी पवित्र है। एक तो चूंकि आपने ५० वर्ष का जिक्र किया, एक मैं यह कह दूं कि इसमें जो परिवर्तन आए हैं हमारे देखते ही देखते वे बड़े भयंकर हैं। कुछ अच्छे परिवर्तन भी हुए हैं, हम प्रजातंत्र की ओर गए। जो एक पुरानी राजकीय पद्धति थी उसका युग समाप्त हो गया। प्रजातंत्र के साथ देश एक बन गया यह एक बहुत बड़ी बात है। विभाजन तो हुआ ही फिर भी मैं मानता हूं कि हजार वर्ष के बाद एक स्वतंत्र भारत कश्मीर से कन्याकुमारी तक आसेतु हिमालय पर्यंत गुजरात से अरुणाचल तक उभरा। यह एक बहुत बड़ा ऐतिहासिक परिवर्तन हुआ। तो वहां तक तो यह शुभ परिवर्तन है।

पहले रीजेंट फिर गवर्नर

हमने कुछ दुष्परिवर्तन भी देखे हैं जिनसे यह लगता है कि जो एक प्रकार की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पद्धति थी जिसमें कुछ नैतिक मूल्य थे—वास्तव में समाज में थे कि नहीं यह दूसरा प्रश्न है लेकिन जो कुछ थे—बहुत तेजी से उनका विघटन होता रहा है। राजनीति में, स्तर के लोग उन दिनों थे, भले ही उनको हमने कभी देखा नहीं, जैसे श्री अरविंद, लोकमान्य तिलक इत्यादि। एक बार मैंने गांधी जी के दर्शन किए थे वे पिताजी के घर आए थे कश्मीर में। लेकिन जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, मौलाना आजाद, आचार्य नरेन्द्र देव, डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद, सी० राजगोपालाचारी आदि बड़े-बड़े वरिष्ठ नेताओं को अवश्य देखा-सुना। कुछ लगता है कि राजनीति में उस स्तर के लोग रहे नहीं और हो सकता कि ये दोनों बातें संबंधित हों जो मैंने मूल्यों के विघटन और सामाजिक स्तर के बारे में कहीं। एक तो ये बातें, दूसरे जहां मेरा अपना प्रश्न है मैंने तो जो जीवन आरंभ किया सार्वजनिक क्षेत्र में, वह तो कश्मीर से ही किया। १८ वर्ष का था जब मैं रीजेंट बनाया गया। पहले पिताजी ने नियुक्त किया। तत्पश्चात् जब २१ वर्ष का था तब मैं सदरे-रियासत बनाया गया। मैं १८ वर्ष में रीजेंट बना और १८ वर्ष तक ही मैं वहां का राज्यपाल रहा। पहले रीजेंट, फिर सदरे-रियासत और तब गवर्नर।

तो यह जो क्षेत्र था इसमें मैंने बहुत कुछ सीखा क्योंकि मैं केवल जम्मू-कश्मीर में ही नहीं रहा; हर साल विदेश यात्रा करता था। मैं और मेरी पत्नी वैसे भी हम बहुत-से लोगों से मिलते थे। कश्मीर में बहुत-से लोग बाहर से आते थे, किसी और राज्य में हम होते तो शायद इतने लोगों से नहीं मिलते। वहां सोवियत संघ के बुल्गानिन और ख्रुश्चेव और इंडोनेशिया के डा० हत्ता जैसे बड़े-बड़े लोग साथ ही हेलिन कीलर आदि प्रसिद्ध लोग आते थे देश-विदेश से। इस देश के भी लोग मिलते थे।

अध्ययन का सिलसिला; संस्कृत भी

तो १८ वर्ष के इस प्रकार सिनेमा जैसे सारे देश के चित्र हमारी नजरों के सामने गुजरे चूंकि मैं वहां का राज्यपाल था तो जो भी प्रमुख व्यक्ति आते थे वे शिष्टाचारवश मिलने आते थे। उन दिनों यह भी एक औपचारिकता थी : किताब में नाम लिखना। हम उनको बुलाते भी थे। एक तो इस दौरान लोगों से मिला और दूसरे अपना अध्ययन भी जारी रखा। जब मुझपर जिम्मेदारी आयी तब मैं अंडरग्रेजुएट था। फिर बी० ए० किया, एम० ए० किया और फिर पी-एच० डी० की। भगवान की कृपा से संस्कृत का ज्ञान भी उन्हीं दिनों हुआ। आपको यह आश्चर्य होगा कि संस्कृत हम कभी स्कूल, कालेज में नहीं पढ़े। कुछ संस्कार थे। पं० परमानंद जी हमारे एकाउंटेंट जनरल हुआ करते थे। वे एक दिन आ गए और कहा कि मैं तो आपको संस्कृत पढ़ाऊंगा। मैंने कहा कि पंडित जी, मैं तो जानता नहीं। उन्होंने कहा कि नहीं, मैं तो चाहता हूं कि आप संस्कृत पढ़ें। आप कश्मीर के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महाराजा हैं, यह शारदापीठ कहलाता था; आप क्यों भूल रहे हैं? इस प्रकार उन्हींकी कृपा से कुछ संस्कृत में रुचि हो गई। कुछ संस्कार थे संस्कृत के। इस प्रकार यह १८ वर्ष, मैं समझता हूं तैयारी के वर्ष थे।

ल० प्र० व्यास : और शायद आपके भावी जीवन की आधारशिला भी उन्हीं दिनों पर पड़ रही थी।

राजसी वातावरण में साहित्य-संस्कृति की रुचि

क्या आप जानते हैं कि लोग आपके बारे में ऐसी ही बातचीत करते हैं कि आप एक ऐसे राजसी वातावरण में उत्पन्न हुए जहां आपके लिए सभी सुखसुविधाएं उपलब्ध रहीं। फिर क्या कारण था, क्या संस्कार थे जो उस सबमें मन रमने के बजाय साहित्य-संस्कृति, कला, संगीत इत्यादि में आपकी रुचि हुई?

डा० कर्णसिंह : भगवान की कृपा ही समझिए व्यास जी, और क्या कह सकते हैं हम। संगीत के विषय में तो पिताजी ने बचपन से मुझे शास्त्रीय संगीत सिखाना शुरू किया। थोड़ी-बहुत आलोचना भी उन दिनों राज्य में हुई कि देखिए युवराज को गवइया बना रहे हैं। लेकिन उनका बड़ा भारी वरदान था जो संगीत के साथ मुझे संबद्ध कर दिया और बाकी तो मैं यही कहूँगा कि माता जी के संस्कार थे। वे बहुत धार्मिक थीं। कोई विदुषी या पढ़ी-लिखी नहीं थीं, ग्रामीण परिवार की थीं, गांव की रहने वाली थीं लेकिन धर्म में उनका बहुत अनुराग था।

सूक्ष्म कारण

ल० प्र० व्यास : इसका मतलब है कि कितने सूक्ष्म संस्कार और सूक्ष्म कारण होते हैं जो कि कहां की बात कहां पहुंचा देते हैं।

डा० कर्णसिंह : हां, यदि पंडित परमानंद न आते मेरे पास तो मैं संस्कृत कभी नहीं सीखता। पिताजी मुझे संगीत न सिखवाते तो हो सकता था मुझे संगीत का शौक होता गाना सुनने का जैसे सबको होता है लेकिन स्वयं गाने का मुझे कोई अभ्यास नहीं होता तो यह भी समझिए कि भगवान की कृपा ही थी।

जीवन में कौन व्यक्ति ?

ल० प्र० व्यास : क्या एक-दो व्यक्ति आपके जीवन में ऐसे रहे जिन्होंने आपके जीवन की धारा को आगे बढ़ाया? आपको क्या ऐसा भी ध्यान आता है कि कोई ऐसी घटनाएं आपके जीवन में हैं जिन्होंने जीवन को नया मोड़ दिया हो?

डा० कर्णसिंह : पहले तो व्यक्तियों के विषय में मुझे कहना पड़ेगा। ऐसा है कि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

माता-पिता के तो संस्कार होते ही हैं। दरअसल ब्राह्मणों से ही मैंने शिक्षा प्राप्त की है बचपन में। हमारे टीचर प्रोफ़ेसर चक्कू थे, डाक्टर भान थे, प्रोफेसर वी० के० मदन थे, परमानंद जी थे जिनसे शिक्षा ग्रहण की। फिर उसके पश्चात् सबसे बड़ा प्रभाव मेरे ऊपर किसी व्यक्ति का पड़ा वह जवाहरलाल जी का पड़ा। मैं नेहरू युग का हूं, गांधी युग का नहीं, हालांकि गांधी जी के एक बार दर्शन मैंने किए। मैंने जवाहरलाल नेहरू की पुस्तकें पढ़ी थीं विशेषकर उनकी आत्मकथा 'डिस्कवरी आफ इंडिया' इत्यादि। तो उनसे हमारी पीढ़ी बहुत प्रभावित थी, आप भी तो उसी पीढ़ी के हैं। हमारे लिए वे एक राष्ट्रीय व्यक्तित्व थे जिनमें राष्ट्र की उम्मीदें और उमंगें और इस प्रकार के जो स्वप्न थे वे संवधित हो गये थे। वे मुझे मिले भी। हालांकि उनसे मेरे पिताजी की काफी कुछ राजनीतिक गड़बड़ थी लेकिन व्यक्तिगत रूप से उन्होंने मुझे बड़ा स्नेह दिया। एक प्रकार से उन्हींके स्नेह से मेरा राजनीतिक जीवन प्रारंभ हुआ। उन्हींसे मैं प्रभावित हुआ, उन्हींके कहने पर सदरे-रियासत मैं बना और आगे की जो घटनाएं हुईं वे भी तो उन्हीं-के साथ जुड़ी हुई थीं। राजनीति में तो स्पष्ट है कि जवाहरलाल नेहरू ही ऐसे विशेष व्यक्ति थे जिनका मेरे ऊपर प्रभाव पड़ा।

विवेकानन्द, श्रीअरविंद और प्लेटो

विचारों की दुनिया में दो ऐसे व्यक्ति थे जिनसे मैं कभी मिला नहीं—एक स्वामी विवेकानन्द और दूसरे थे श्री अरविंद। इन दोनों का मेरे ऊपर बहुत प्रभाव पड़ा। तीसरे भी एक थे प्लेटो—सबसे बड़े दार्शनिक पश्चिमी दुनिया के माने जाते हैं। प्लेटो के डायलॉग्स और विवेकानन्द के लेख और फिर उसके बाद श्री अरविंद के लेख—इन तीनों का मेरे ऊपर बहुत प्रभाव पड़ा—इनके लेखों का। फिर बहुत सारे लोग और थे जिनसे मेरा संपर्क हुआ था और मैं प्रभावित हुआ।

ल० प्र० व्यास : शायद पाश्चात्य का समन्वय भी है आपके चिंतन में।

डा० कर्णसिंह : मैंने पत्र-व्यवहार किया—वर्ट्रेण्ड रसल, आल्डुअस हक्सले। ये दो विशेष ऐसे लोग थे जिनकी बहुत पुस्तकें मैंने उन दिनों पढ़ीं और जिनका बहुत प्रभाव मेरे जीवन पर पड़ा, सोचने पर पड़ा।

साधना के क्षेत्र में अंग्रेज गुरु

यह तो एक क्षेत्र है और फिर साधना का दूसरा क्षेत्र है। इन्हीं दिनों १८ वर्ष में ही, हमें अपने गुरु से मुलाकात हुई और उनका भी बहुत प्रभाव हमारे जीवन पर पड़ा और आपको आश्चर्य होगा कि वे जन्म से अंग्रेज थे, (व्यास जी—अभी हैं?) अब भी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं। वे तो अंग्रेज हैं ही उनके गुरु भी अंग्रेज थे। साथ ही वे कृष्णभक्त हैं। तो उनका भी संस्कार और प्रभाव पड़ा।

ल० प्र० व्यास : अपने गुरु जी के संबंध में थोड़ा और विस्तार से बताने की कृपा करेंगे ?

डा० कर्णसिंह : ऐसा है कि एक अंग्रेज राबर्ट निक्सन करके थे, जो प्रथम महायुद्ध में आर० ए० एफ० के पायलट थे। वे बड़े मेधावी थे और आक्सफोर्ड में पढ़े थे। तो वे १९२०-२१ में यहां आ गए और बनारस में इंग्लिश के प्रोफेसर बन गए। यहीं उनकी भेंट अपनी गुरु यशोदा माई से हुई और उनके वे अनुयायी बन गए और हिंदू हो गए। कट्टर वैष्णव बन गए और फिर जाकर मिरतोला में उन्होंने आश्रम बनाया, जो अल्मोड़ा के करीब है; जो उत्तर वृन्दावन कहलाता है। तो यशोदा माई का तो उस समय तक देहांत हो गया था। इनका नाम श्री कृष्ण प्रेम पड़ गया था। इनके एक शिष्य बने श्री माधवाशीष। श्री कृष्ण प्रेम जी बहुत ही अद्‌भुत और बहुत ही प्रभावशाली थे। उनके लेख, उनका व्यक्तित्व सब कुछ बहुत प्रभावशाली था। किसी समय अलग से उनके विषय में मैं बोल सकता हूं। तो उन्हीं से आकर्षित होकर कई वर्ष वहां जाता रहा। ५-८ वर्ष के बाद उन्होंने ही दीक्षा दी। दीक्षा श्री कृष्ण प्रेम ने उस समय देना बंद कर दिया था तो उनके जो प्रमुख शिष्य माधवाशीष थे उनसे हमने दीक्षा ली। कृष्ण प्रेम जी १९६४ में गुजर गए। माधवाशीष जी हैं। तो ये व्यक्ति १८ वर्ष के दौरान मिले—१९६७ तक, ३६ वर्ष की उम्र तक इनसे ये सब संस्कार मिले। देश-विदेश की यात्रा से भी मैंने बहुत सीखा है। व्यक्तियों से सीखा, पुस्तकों से सीखा लेकिन यात्रा से भी बहुत सीखा। करीब-करीब सारी दुनिया हमने देख ली। भगवान की कृपा ऐसी है कि एक तो इस प्रकार के व्यक्ति हरेक को नहीं मिलते और दूसरे यह कि अगर इस प्रकार की कोई स्थिति हो भी तो उससे लाभान्वित होने की क्षमता प्रायः भगवान नहीं देता। तो ये दोनों चीजें भगवान की कृपा से मुझे मिलीं। इस प्रकार की परिस्थिति भी रहीं और भीतर से कुछ प्रेरणा भी रही कि भाई इन परिस्थितियों का लाभ उठाओ, अपने-आपको संमृद्ध करने के लिए।

घटना—अभिशाप में वरदान

ल० प्र० व्यास : कोई विशेष घटना भी उल्लेख करना चाहेंगे ?

डा० कर्णसिंह : व्यास जी, घटना तो जब १८ की उम्र हुई तब मेरे दो बार एक्सीडेंट हुए। मेरी लात दो बार टूटी। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि १८ वर्ष की उम्र में मैं १८ महीने अस्पताल में रह चुका था। दूसरी बार जब एक्सीडेंट हुआ तो छः महीने। इस प्रकार से मुझे बड़ा भारी कष्ट रहा, शारीरिक कष्ट।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक बात जरूर हुई कि उस समय मैं अमरीका चला गया। यह भी बड़ी एक अद्भुत घटना है। जब सन् ४७ में पाकिस्तान की ओर से हमपर आक्रमण हुआ उस समय तो मैं ह्वील चेयर में था, मैं तो चल भी नहीं सकता था। फिर एक दिन सरदार पटेल जम्मू आए तो मेरे कमरे में आए। पिता जी और माता जी साथ थे ही। उन्होंने कहा कि ये आप क्या कर रहे हो, इस लड़के को यहां क्यों रखा है? उन्होंने कहा कि नहीं, इलाज हो रहा। तो उन्होंने कहा, "नहीं भाई, इनको भेजो नहीं तो ये सारी उम्र अपंग रहेंगे। यहां क्या बात है, भेजो इनको अमरीका।" और मैं ठहरा इकलौता बेटा। वहां तो भयंकर परिस्थिति थी। माता जी भेजने की बात कैसे कर सकती थीं। तो इस प्रकार सरदार पटेल के कारण मुझे ४७ के अंत में भेज दिया गया अमरीका और मैं ४९ में लौटा। एक प्रकार से कहूं कि मैं उनका बड़ा आभारी हुआ जो उस समय के दूषित और भयंकर वातावरण से निकल गया और एक नई दुनिया में चला गया। इसका भी मुझे लगता है कि मेरे जीवन पर और मेरे विचारों पर कुछ असर पड़ा।

कश्मीर पर आक्रमण के वे दिन

ल० प्र० व्यास: क्या आपको ऐसा लगा कि कोई दुर्घटना भी कभी-कभी जीवन में आगे चलकर वरदान बन जाती है?

डा० कर्णसिंह: एक प्रकार से यह बनी तो सही। हालांकि कष्ट बहुत सहा। शारीरिक कष्ट तो याद नहीं रहता आदमी को। मानसिक कष्ट अवश्य याद रह जाता है। शारीरिक कष्ट यदि आदमी को याद रहता चले तो जीवन ही असंभव हो जाए। लेकिन शारीरिक कष्ट, क्योंकि मेरा एक्सीडेंट हुआ और फिर आपरेशन हुआ फिर क्या-क्या हुआ। बावजूद उसके मैं समझता हूं (न) कि फिर भी कुछ लाभ हुआ कि मैं अमरीका चला गया। उस समय वातावरण बहुत ही दूषित था, रोज लड़ाइयां चल रही हैं, पाकिस्तान के हमले रोज महल से हम देखते थे। आज वो गांवरह जला है, कल वो गांव जल रहा है, हजारों शरणार्थी आ रहे हैं, हा-हाकार, चीखो चिल्लाहट, भयंकर परिस्थिति थी। उसमें से मैं निकलकर अमरीका चला गया, एक तो मैं ठीक भी हो गया। वाकई अगर मैं रह जाता तो शायद ठीक भी नहीं होता और दूसरा इससे निकला और तीसरा अमरीका एक बिल्कुल नया देश था मेरे लिए, इसलिए और भी कि मैं एक रांजकीय वातावरण में रहा और वहां एकदम एक प्रजातांत्रिक वातावरण। एक और प्रकार की ही दुनिया थी। उसका भी मुझपर कुछ प्रभाव हुआ। मुझे लगता है कि बचपन से ही मैं बहुत जल्दी ही चीजों को सीख लेता हूं, यानी मुझे यदि थोड़ा-सा भी आभास हो तो मैं एकदम ग्रहण कर लेता था। बचपन से मैंने जो कुछ देखा चाहे वह शतरंज हो या कोई खेल हो तुरंत सीख लेता था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ल० प्र० व्यास : जो विचार-विमर्श चल रहा है उससे लगता है कि आपका जीवन तो भाग्य और पुरुषार्थ दोनों का समन्वय है और पिछले जीवन के जो संस्कार होते होंगे उनका भी कुछ प्रतिविंव लगता है। आपके क्या विचार हैं इस संवंध में ?

डा० कर्णसिंह : ऐसा है कि हरेक प्राणी का जो जीवन है उसमें ये दोनों वातें होती हैं। एक तो भाग्य है, आप उसको संस्कार कह दें, आप वेस्टर्न टर्मिनालाजी में जीनेटिक कंसीडरेशन कह दें। जो भी है एक तो जो वह साथ लाता है अपने और उनके अलावा अपने जो पुरुषार्थ हैं—दोनों का परस्पर संवंध रहता। लेकिन मैं समझता हूं कि पुरुषार्थ के अतिरिक्त भी कुछ भगवान की कृपा जो है वह बहुत अद्‌भुत है। मुझे लगता है कि जिसे डिवाइन ग्रेस कहते हैं यह एक वात है जो पिछले भाग्य से भी और अपने पुरुषार्थ से भी अतीत है और जव तीनों का संगम होता है—भाग्य, पुरुषार्थ और देव कृपा का पवित्र सगम—तव जाके वात वनती है।

सहयोगी परिवार

ल० प्र० व्यास : स्वाभाविक है कि लोग आपके परिवार के संवंध में भी जानना चाहेंगे। विशेष रूप से यह कि जो आपका जीवन है, आपका चिंतन है उस सवमें आपका परिवार क्या योगदान कर रहा है ?

डा० कर्णसिंह : वचपन में तो वहुत छोटा हमारा परिवार था—पिताजी, माताजी और मैं। न मेरा कोई भाई और न मेरी कोई वहिन। और इन्हीं दिनों में ये जो ३६ वर्ष मैंने आपको वताए इनमें पहले पिता जी का और फिर माता जी का देहांत हो गया।

मेरा विवाह हुआ था १९५० में। मेरी वहुत छोटी उम्र थी उन दिनों में। मैं १९ वर्ष का था और आपको आश्चर्य होगा कि मेरी पत्नी उस समय १३ वर्ष की थी। कोई हमने कानून का उल्लंघन किया होगा या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। तो एक प्रकार से मैं और मेरी पत्नी हम एकसाथ ही बड़े हुए हैं। यानी यह नहीं है कि मैं बड़ा था और वो भी बड़ी थीं। मैं भी पढ़ रहा था ओर वो भी पढ़ रही थीं। जहां मैंने बी०ए०, एम०ए०, पी-एच०डी० की, उन्होंने भी जो हिंदी की परीक्षाएं हैं प्रभाकर इत्यादि, ऐसी तीन-चार परीक्षाएं उन्हीं दिनों में कीं। साथ ही उनका वड़ा सहयोग रहा। जव भी हम विदेश जाते हैं, हमेशा इकट्ठे जाते हैं। घर में भी मेहमानों का आना-जाना रहता है। उसमें उनका बहुत सहयोग रहा। फिर हमारी लड़की पैदा हुई १९५७ में। बाद में भगवान की दया से दो लड़के हो गए। जीवन निर्माण में परिवार का भी वड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह भी भगवान की वड़ी कृपा रही कि पारिवारिक दृष्टि से वड़ी सुख-शांति रही। क्योंकि बहुत सारे लोगों का तो परिवार की उलझनों में ही जीवन बहुत कुछ अस्तव्यस्त हो जाता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है। घर के क्षेत्र में केवल अस्तव्यस्त न होने की ही बात नहीं बल्कि हमें बड़ा लाभ मिला उनसे। आप तो मेरी पत्नी से मिले हैं? उनकी साहित्य में भी रुचि है। मैं समझता हूं कि सारे कामों में उनका सहयोग मिला। उनका अपना काम का क्षेत्र है विशेषकर जो मंदबुद्धि बच्चे हैं उनका उन्होंने देहली में एक बहुत बड़ा केंद्र बनाया है। उसमें स्वयं अपना एक लाख रुपया स्त्री धन से दिया है और उन्होंने एक बड़ा भवन भी बनवाया है। इस कार्य में वो लगी रहती हैं। उनकी अपनी भी रुचियां हैं लेकिन हमारी जो रुचि है उनके साथ भी उनका मेल रहता है।

ल० प्र० व्यास: आप तो अत्यंत समृद्धशाली राज-परिवार में उत्पन्न हुए। धरती के सामान्य लोगों से आपका संबंध किस रूप में है? पहले कैसा रहा है और फिर परिवर्तन के अनुसार अपने आपको ढालने में आप कैसा अनुभव करते हैं?

जीवन के अध्याय

डा० कर्णसिंह: मैं अपने जीवन के अध्याय इस प्रकार बनाता हूं कि—पहले तो १८ वर्ष तक हम युवराज रहे, फिर १८ वर्ष से लेकर ३६ वर्ष की आयु तक हम राज्यपाल रहे, ३६ के पश्चात् जो हमारा अध्याय आरंभ हुआ, उसमें हम प्रजातंत्र में सीधे आए और चुनाव पद्धति के माध्यम से आए। एक बात मैं बताऊं कि इस राजनीति से भी शिक्षा होती है और यह धरती के करीब भी लाती है—यहां तक कि धूल खानी पड़ती है। लेकिन इस प्रकार से भी व्यक्ति को अपने-आपको उस स्तर पर ले आना पड़ता है, जमीन पर ले आना पड़ता है हवा से। यह हमने राजनीति से सीखा क्योंकि उससे पहले ठीक है कि हम एम०ए० हो गए थे पी-एच० डी० भी हो गए थे, राजा रहे इत्यादि, लेकिन कुछ हम हवा में थे।

राजनीति में गुरु की आज्ञा

हमारे गुरु ने एक बात कही; उस समय जब हम यहां आने को हुए यानी देहली में। एक आपको नयी बात बताऊं, जब यह चर्चा चल रही थी कि हम कश्मीर को छोड़कर यहां आएं कि न आएं और जब इंदिरा जी ने आमंत्रित किया कि आप यहां आएं तो हमने अपने गुरुजी से पूछा। उन्होंने कहा कि देखो, कश्मीर में रह करके आप एक प्रकार से किले में रहते हो जहां कि कोई आक्रमण नहीं कर सकता। उससे जो तुम्हारी आध्यात्मिक प्रगति है उसमें रोक आएगी। मेरा आदेश यह है कि ऐसे क्षेत्र में आओ जहां कि तुमपर हमले हो सकें। देखिए उनके शब्द थे—यू आर टू इनवल्नरैबल इन कश्मीर। यू मस्ट कम टू ए प्लेस ह्वेअर यू कैन आल्सो बी अटैक्ड, ह्वेअर यू हैव टु डिफेंड योरसेल्फ" यानी आप कश्मीर में बहुत सुरक्षित हैं। अब आपको ऐसी जगह आना चाहिए जहां आप पर भी हमले

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हो सकें और आपको अपनी रक्षा करनी पड़े।

और हम राजनीति में आए। एकदम मंत्री बन गए तो पार्लियामेंट में कोई प्रश्न पूछ रहा है, कोई चिल्ला रहा है, कोई धमका रहा है। हमारे लिए तो वह एक नयी दुनिया थी। किसीने उस समय तक आवाज उठाकर हमसे बात नहीं की थी। यानी जो भी मिला आदर से बात की थी। यहां कोई कुछ कह रहा है, कोई कुछ। फिर क्षेत्र में जाओ तो विरोधी दल के लोग हैं वो अपना कह रहे हैं, कोई विरोधी पोस्टर निकाल रहे हैं। तो यह एक पक्ष जो मेरा नहीं था, उसे भी हमने देखा। यह हमने देखा इस तृतीय अध्याय में। यह जो राजनीति का तृतीय अध्याय, अगर १८-१८ वर्ष के अध्याय हम बना दें—एक १८, फिर १८ और तृतीय अध्याय अब चल रहा है। इसमें हमने यह सीखा कि केवल हवा में रहना काफी नहीं, जब तक धरती के साथ संबंध न हो तब तक पूरा व्यक्तित्व उभरता नहीं। बहुत कुछ सीखा। जैसे हमने बचपन में सीखा राजकीय प्रशासन, फिर हमने राज्यपाल के समय सीखा। इस समय भी हमने बहुत सीखा। एक तो कैबिनेट में होने के नाते प्रशासन चलाने, मीटिंग्स किस प्रकार से लेनी हैं, किस प्रकार बात करनी हैं—यह भी एक बड़ी भारी शिक्षा है। दूसरा यह कि लोगों के साथ व्यवहार कैसा हो। अनेक प्रकार के लोग हैं, कोई विरोधी है, कोई पक्ष का, कोई चालाक, कोई बेईमान, कोई दुष्ट, कोई भला। तो सबके साथ निर्वाह कैसे करना चाहिए। यह सब सीखा हमने इस तृतीय कांड में। सीख का यही सिलसिला जारी है।

११ वर्ष तक मैं मंत्री रहा। पिछले दो-तीन साल से मुक्त हूं। आराम में हूं, स्वतंत्र हूं। तो इस स्थिति से भी कुछ सीखा जा रहा है। वैसे भगवान की बड़ी दया है मुझपर कि मंत्री न रहने से कोई परिवर्तन नहीं हुआ बल्कि मैं समझता हूं कि कुछ लोग अधिक प्रसन्न हैं। कश्मीर में इस बार जब हमारा चुनाव हुआ यानी चतुर्थ चुनाव हुआ, आप तो जानते हैं कि शेख अब्दुल्ला की-हमारी पुरानी खटपट है। ५० वर्ष मेरी आयु है और ५० वर्ष की उनकी राजनीति है। पिता जी से भी उनका संघर्ष था। फिर मैंने १९५३ में उन्हें पद से हटाया, पंडित जी के कहने से तो उन्होंने उस बार तो यहां तक कि रात को हमारी गाड़ी चल रही थी उन्होंने रोड ब्लाक कराया था। क्या था, क्या नहीं। पर भगवान की कृपा हो गयी, हो सकता था हमपर हमला भी होता; हम दोनों ही थे—पति-पत्नी। तो यह सब कांड हमने देखा। सुबह आठ बजे हम निकलते थे और रात में आकर भोजन करते थे। दिन-भर भोजन हमें नहीं मिलता था। ये चीजें तो हमने राज-परिवार में कभी देखी नहीं। तो यह दीक्षा है जैसे एक तो राज-परिवार की दीक्षा होती है और एक क्रांति की दीक्षा होती है। जैसे हमारे पूर्वज महापुरुष श्रीराम का हम उदाहरण ही क्या दें। राम को वशिष्ठ ने शिक्षा दी लेकिन वशिष्ठ की शिक्षा संपूर्ण नहीं हुई जब तक कि विश्वामित्र ने,जो अपने युग के एक सबसे बड़े क्रांतिकारी थे, उन्हें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शिक्षा नहीं दी। तो एक प्रकार से जहां हमें पहले वशिष्ठ पद्धति की शिक्षा मिली वहीं विश्वामित्र और चाणक्य पद्धति की शिक्षा हमें इस तृतीय कांड में मिली।

परिवर्तन में कैसा अनुभव ?

ल० प्र० व्यास : राजा-महाराजाओं की जो प्रथा थी वह जब समाप्त हुई उस समय आपके विचार क्या थे ? यह जो नया परिवर्तन जमीन-आसमान का हुआ उसमें आपने कैसा अनुभव किया ?

डा० कर्णसिंह : हमने इस परिवर्तन को केवल देखा ही नहीं, इसमें हमने योगदान भी किया। आपको यह याद होगा कि जब यह प्रिविसर्सेज और प्रिविलेजेज का प्रश्न आया उस समय हम कैबनिट में थे और उस समय ऐसा धर्मसंकट आ गया कि एक राज के हम प्रिंस तो थे ही, हमें प्रिवीपर्स भी मिल रही थी। तो प्रिंस या राजाओं का जो समाज था वे तो यह समझ के चले थे कि ये तो हमारे साथ हैं, विरोध करें लेकिन वहां जो परिस्थिति थी और जो जवाहरलाल नेहरू की विचारधारा थी और जो आधुनिक भारत का तकाजा था, उसको मद्देनजर रखते हुए मुझे लगा कि ये सुविधायें अब और अधिक जारी नहीं रह सकतीं। तब मैंने राजा-महाराजाओं को कहा कि भारत सरकार कुछ देने को तैयार है—दस गुना, पंद्रह गुना, बीस गुना। तो उनकी बात भी रह जाय, इनकी भी बात रह जाय। लेकिन राजा लोग सख्त नाराज हो गए हमसे। कहने लगे कि आप तो द्रोही हैं, ट्रेटर हैं। मैंने कहा कि भई, हम तो देश का हित करेंगे, किसी वर्ण विशेष या वर्ग विशेष का हित नहीं। हमने कहा कि ठीक है, चार करोड़ कोई ऐसी बड़ी राशि नहीं थी। अगर भारत सरकार उसे समाप्त नहीं भी करती तो ऐसी बड़ी बात नहीं हुई होती लेकिन जब एक बार उसका निर्णय हो गया तो हमने उसका साथ दिया।

दिल्ली की राजनीति

इसी प्रसंग में दूसरी बात यह है कि हम तो दिल्ली आ चुके थे। भगवान की दया से बड़े आराम से रहते थे। हमारा यह शौक तो था नहीं कि विदेशी गाड़ियां खरीदें या रेस के घोड़े खरीदें या हीरे-जवाहरात खरीदें, इसी प्रकार के बड़े-बड़े फिजूल खर्चे करें। भगवान की दया से हम इसमें पड़े नहीं। इसलिए परिवर्तन से कोई ऐसा बहुत कष्ट भी नहीं हुआ। एडजस्टमेंट तो करनी ही होती है। निभ गई बात।

महाराज नहीं डाक्टर

ल० प्र० व्यास : जैसे अभी भी बहुत-से राजा-महाराजाओं का एक मोह है कि वे अपने को राजा-महाराजा कहलाने में ज्यादा गौरव अनुभव करते हैं बल्कि जो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विश्व हिन्दी सम्मेलन, मोरिशस में भारतीय प्रतिनिधिमंडल के नेता के रूप में चाचा रामगुलाम को श्रीमति इंदि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

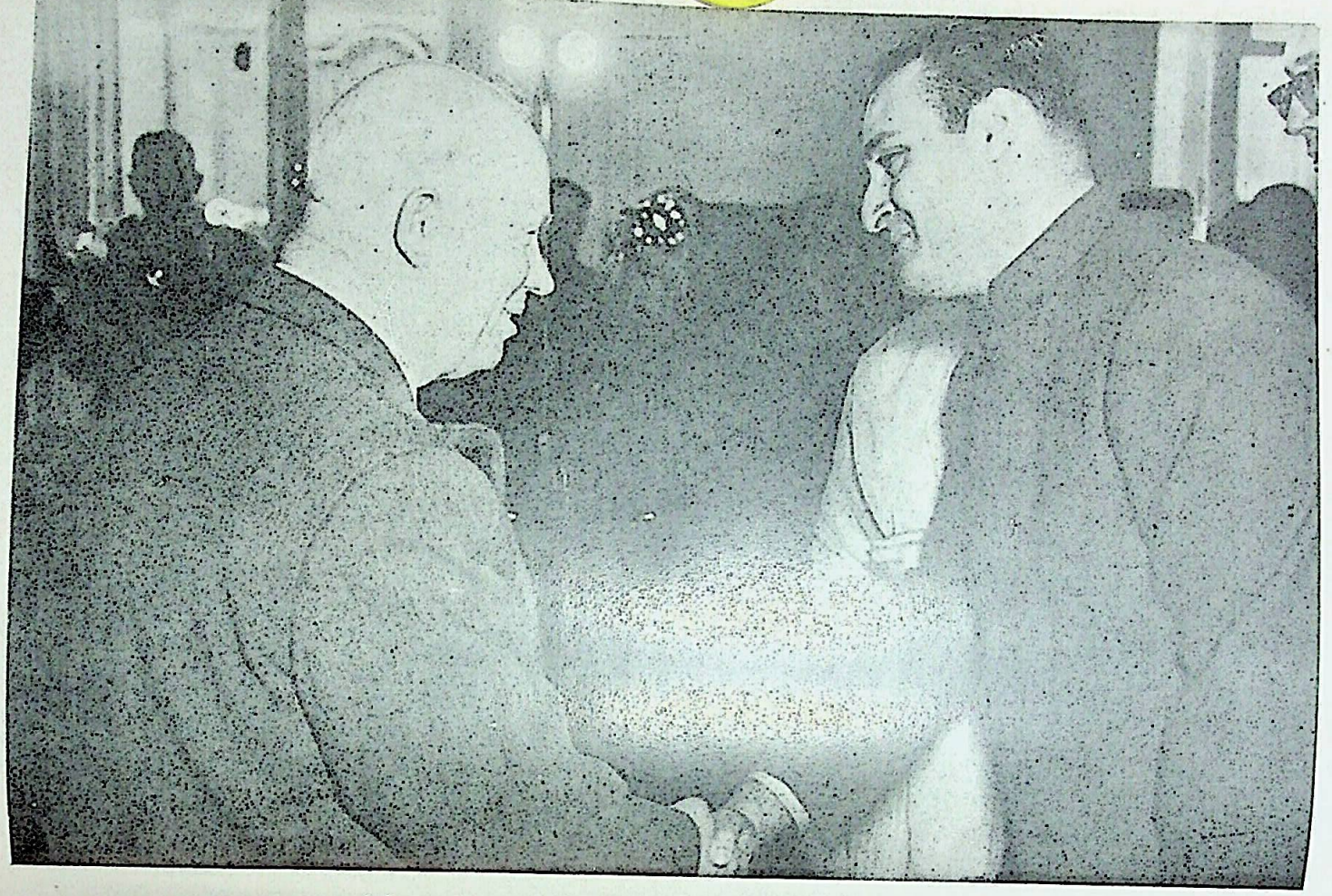

महान सोवियत नेता ख्रुश्चेव से मिलन : हाथों का ही नहीं आंखों का भी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

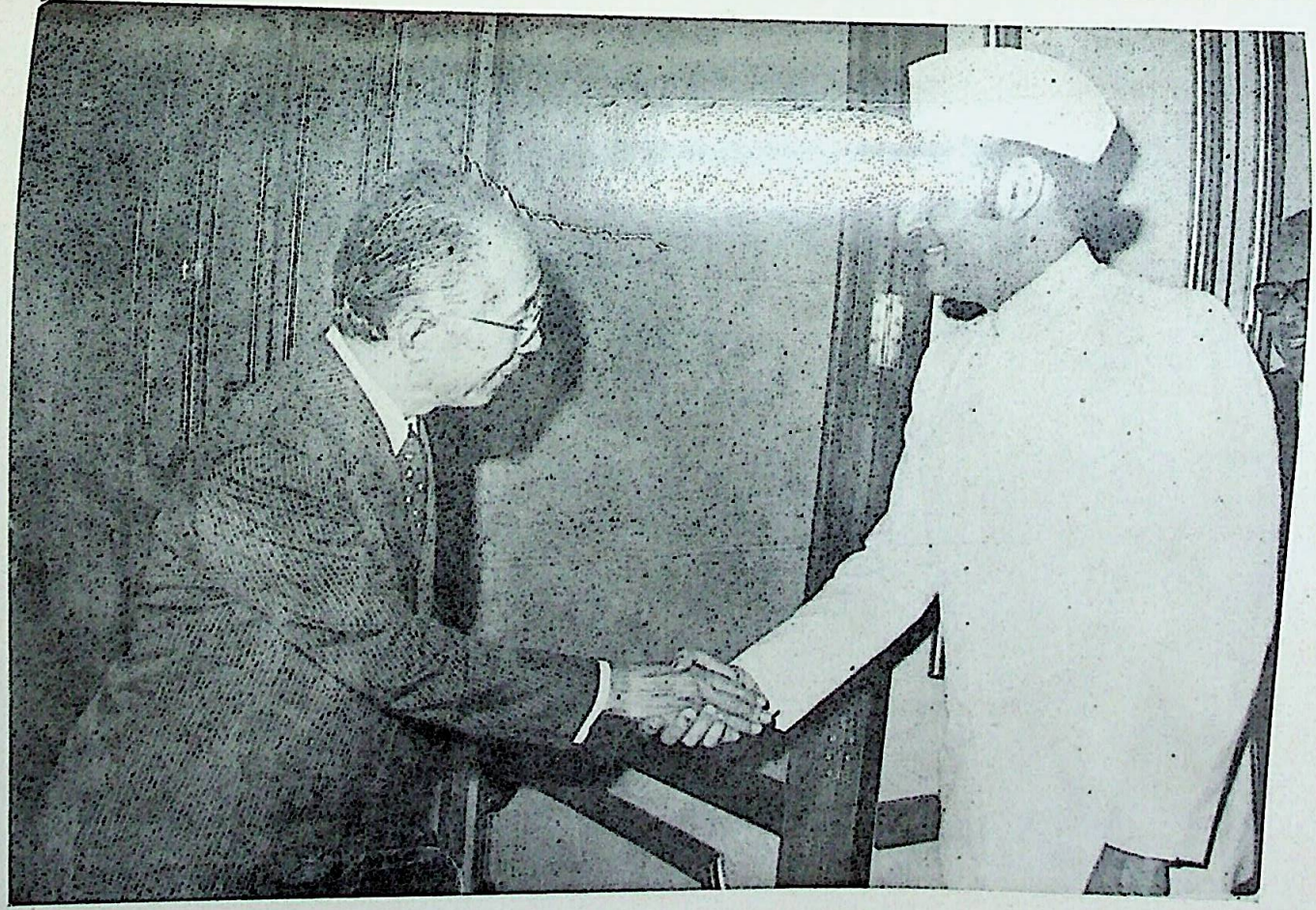

जापानी राजदूत के साथ भूतपूर्व पर्यटन मंत्री

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

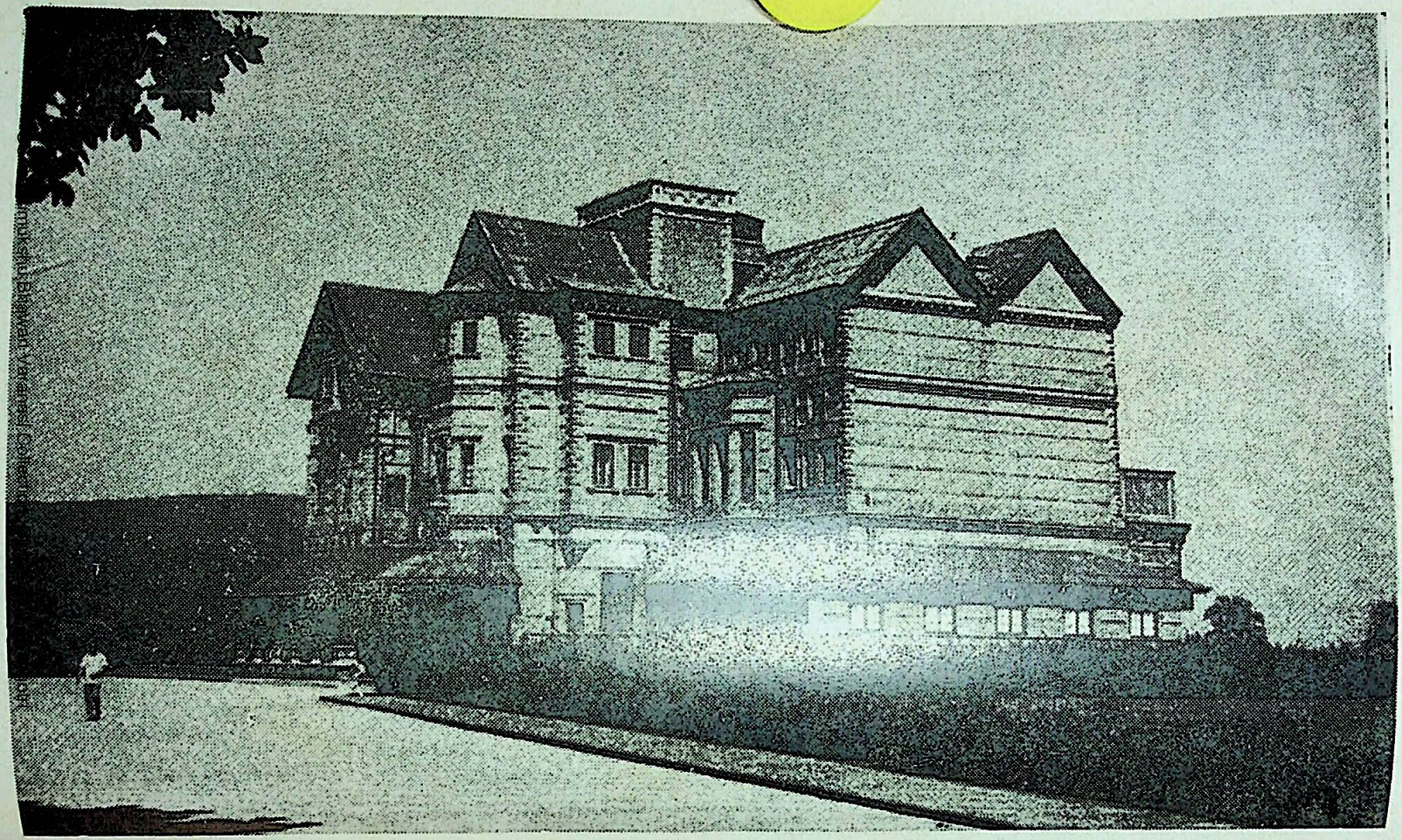

जनपद में कवि के वंश पर स्थापित स्मारक, 'असरमंजिल' जो अब एक इण्टरकॉलेज संस्थानालय है

लोग नहीं कहते हैं तो उनसे उनका ज्यादा प्रेम नहीं रह पाता है लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि आपमें ऐसा कोई मोह नहीं है और आपने तो एक विद्वान के रूप में अपने को प्रतिष्ठित करने में शायद सम्मान का अनुभव किया है?

डा० कर्णसिंह : यह अजीब इत्तिफाक है, जैसे जवाहरलाल नेहरू हमेशा कहते थे, उनका यह फ्रेज था कि अजीब इत्तिफाक है। मेरे लिए अजीब इत्तिफाक यह है कि पिताजी का देहांत हुआ और मुझे पी-एच० डी० की उपाधि मिली, लगभग एक ही समय। तो प्रश्न यह जो उठता था कि जब तक पिताजी थे तब तक तो वे महाराजा थे और हम तो युवराज कहलाते थे—युवराज कर्णसिंह। तो जब उनका देहांत हुआ तब यह प्रश्न उठा कि अब हम क्या कहलाएं। उस समय हमने पी-एच० डी० कर ली थी। तब हमने कहा कि हम तो डाक्टर कहलवाएंगे अपने-आपको। तो इस प्रकार यह समस्या अपने-आप ही खत्म हो गई। अब भी जब कुछ लोग मित्रता के नाते समझिए या सम्मान के नाते कई बार स्टेज पर महाराज इत्यादि कहते हैं तो मैं कहता हूं कि भई, मुझे कर्णसिंह कहिए या कोई विशेषण लगाना हो तो डाक्टर कह दीजिए लेकिन महाराजा रहने दीजिए।

ल० प्र० व्यास : तो यह तो हुआ आपका चिंतन परिवार और समाज के संदर्भ में लेकिन जो सबसे बड़ा माध्यम आपके जीवन में बना और जिसके कारण आप बताते हैं कि आपकी शिक्षा हुई यानी राजनीति। तो आपके अपने सपनों की राजनीति क्या है? राजनीति के बारे में क्या कल्पना रही है आपकी और उस संदर्भ में देश के बारे में?

कैसी राजनीति ?

डा० कर्णसिंह : देखिए राजनीति के बारे में तो कई लोग विभिन्न कल्पनाएं करते हैं। एक तो रामराज्य की कल्पना है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्॥

—सब प्रसन्न रहें, सुखी रहें इत्यादि। यह तो एक आदर्श है ही। लेकिन मेरा जो अनुभव है वह यह है कि राजनीति का स्वधर्म है उथल-पुथल। राजनीति का स्वधर्म है कि यह कभी स्थायी नहीं रहती। अगर आप रामायण को ही देखें, अवतार जैसे महापुरुष श्रीराम को घर से निकाल दिया गया। यह भी राजनीति के अंतर्गत था। महाभारत की आप राजनीति देखिए—हजारों क्या लाखों व्यक्तियों का वध हो गया राजनीति के पीछे। एक-दूसरे पर झपट रहे थे। चाणक्य नीति आप देखिए तो पता चलेगा कि राजनीति संघर्षमय होती है। राजनीति में उथल-पुथल होती है। यह मानकर हमको चलना होगा। कोई पूछे कि सूर्य गर्म क्यों है, तो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसका स्वधर्म है। पानी गीला क्यों है, तो वह तो होता ही गीला है। इसी प्रकार से राजनीति तो संघर्षमय होगी ही। एक तो यह बात हमको लेकर चलना है। क्योंकि हम कोई ऐसा आदर्श बनायें कि एक ऐसा युग आएगा कि जब यह राजनीति बिल्कुल बिना संघर्ष के चलेगी तो कभी होने वाली बात नहीं है। एक दूसरा यह प्रश्न है कि इस संघर्षमय राजनीति के भीतर, और यह जो परिस्थितियां इस समय हैं, देश की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक, इनके परिप्रेक्ष्य में अधिक से अधिक लाभ देश को सामूहिक रूप से और व्यक्ति को क्या हो सकता है यह हमें सोचना है। हमें राजनीति के इस संघर्षमय वातावरण में से इस देश को आगे निकालना है, इसकी ओर हमें ध्यान देना है। उसमें आदर्श की राजनीति यह है कि प्रजातंत्र पद्धति बहुत अच्छी है। इससे अच्छी पद्धति मुझे कोई और लगती नहीं है। एक बार विंस्टन चर्चिल ने कहा था कि प्रजातंत्र बहुत बुरी पद्धति है सिर्फ दुःख है कि इससे अच्छी पद्धति और किसी ने नहीं बनाई है। मतलब यह है कि इसमें त्रुटियां हैं। जो भ्रष्टाचार इस समय फैल रहा है, राजनीति के नाम से लोगों ने अपना पेशा बना लिया है, प्रोफेशन बना लिया है···। अब मैं क्या बताऊं, हमारे पुराने मित्र शेख अब्दुल्ला का ही अखबारों में बयान है—किसी ने पूछा, आप राजनीति से अलग हो रहे हैं ? तो उन्होंने कहा कि भाई, मेरा तो प्रोफेशन है। मैं कैसे छोड़ूं ? यह उचित नहीं कि लोग राजनीति को अपना पेशा मान लें। प्रोफेशन क्या है ? प्रोफेशन से आजीविका चलती है। तो इसका यह अर्थ हुआ कि आजीविका के नाम पर ठीक है लाखों-करोड़ों रुपये बनाइये। तो मैं यह नहीं कहता कि राजनीतिज्ञों को भूखा मरना चाहिए। राजनीति में जो कार्यकर्ता हैं उनको मिलना चाहिए; जैसे किसी भी क्षेत्र में आवश्यक है। लेकिन राजनीति में हम इसलिए हैं कि यह पेशा है और उसमें हम पैसा कमाएं तब यह बात कहां ख़त्म होगी ? या तो फिर आप पेशे की सीलिंग रख दीजिए कि आप ५,००० रु० तक कमा लीजिए। अन्य सब पेशों में सीलिंग है, लेकिन राजनीति एक ऐसा पेशा है जिसमें कि आदमी लाखों-करोड़ों बना जाय कोई पूछने वाला नहीं। तो जब भ्रष्टाचार राजनीति में आ गया तब इसका स्तर गिर गया। एक प्रकार से दूषित वातावरण राजनीति का हो गया है। अगर विरोध भी करना है तो इतने क्रूर, अभद्र शब्दों में होता है, संसद में कभी आदमी दुःखी हो जाता है। कुछ लोग मुझे कहते हैं कि तुम तो राजपरिवार में पले हो इस प्रकार की भाषा तुमने कभी सुनी नहीं, इसलिए तुम्हें बुरी लगती है। यह बात नहीं। जो विरोध करना है उसका भी कोई तरीका-ढंग होना चाहिए। गाली-गलौज सीधे-सीधे आ जाए किसी संसद में या विधानसभा में तो कोई शोभा की बात नहीं। और एक प्रकारसे नेताओं को तो एक पथ-प्रदर्शन करना चाहिए जैसे गीता में कहा गया है कि श्रेष्ठ लोग जैसा आचरण करते हैं, प्रमाण प्रस्तुत करते है लोक उसका ही अनुगमन करता हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रेष्ठ लोगों का आचरण

प्रमाण तो नेता ही देंगे। प्रमाण किस प्रकार से मिल रहा है, यही बातें राजनीति को, प्रजातंत्र को दूषित कर रही हैं। कुछ तो संघर्ष हमेशा रहेगा और हमारी परिस्थितियां भी देश की कुछ ऐसी हैं कि सरल उपाय कोई नहीं है। देखिए, आप एक का विरोध करें, दो का करें, तीसरे का करें, जो भी प्रधानमंत्री होगा या जो भी शासक होगा उसको बहुत कठिनाई होगी। जनसंख्या बढ़ रही है करोड़ों की तादात में, करीब डेढ़ करोड़ जनसंख्या हर वर्ष बढ़ रही है। आप बताइए, क्या होगा इस देश का? परिस्थितियां कितनी भयंकर हैं। लेकिन इन परिस्थितियों को देखते हुए मैं कह रहा हूं कि जवाहरलाल नेहरू ने जो प्रारंभ किया था एक प्रकार का नेशनल कंसेंसस जिसकी चली आ रही थी गाड़ी जिसमें अमीर भी हैं गरीब भी हैं, हरिजन भी हैं, ब्राह्मण भी हैं, हर वर्ग के लोग हैं, यह जो कंसेंसस टूट गया है जिसके कारण बस एक-दूसरे के जानी दुश्मन सब हो जाते हैं, मुझे लगता है कि यह कुछ अच्छा सगुन नहीं है।

ल० प्र० व्यास : इस दृष्टि से आप क्या प्रयास कर रहे हैं?

डा० कर्णसिंह : अब हम तो दो ही बात कर सकते हैं—एक तो व्यक्तिगत रूप से स्वयं हमने हमेशा यह प्रयत्न किया कि कुछ स्तर राजनीति में रहे। आपको याद होगा कि जब एवरोविमान का क्रैश हुआ तो हमने त्यागपत्र दिया। कभी हमने तनख्वाह नहीं ली, अपने घर में रहे इसलिए कि हमने कहा कि जब भगवान ने दिया है तो हम राजनीति से लें क्यों? अपने ढंग से हमने कोशिश की है। दूसरे सामूहिक रूप में। इधर पिछले एकाध वर्ष से हम कुछ लोग मिल रहे हैं और कोशिश कर रहे हैं कि जो नैतिक मूल्यों का पतन हो रहा है इसके संबंध में कोई ऐसी नयी संस्था या नयी प्रेरणा हो जिससे यह दुष्ट परंपरा बढ़ती जा रही है इसको कुछ बदला जाए। तो एक नया मंच 'न्यू इंडिया मूवमेंट' करके हम सोच रहे हैं। और हो सकता है कि अप्रैल १९८१ में एक राष्ट्रीय सम्मेलन ऐसा हो जिसमें हमारा यह विचार है कि बहुत सारी संस्थाएं कार्य कर रही हैं इस क्षेत्र में उन्हें आपस में मिलजुलकर काम करना चाहिए। हाल में बंबई में बहुत सारी संस्थाएं और बहुत सारे व्यक्ति इस क्षेत्र में काम कर रहे हैं। लेकिन सब अलग-अलग हैं। इनको किसी एक मंच पर क्या हम बैठा सकते हैं? क्या शिक्षा-पद्धति या सार्वजनिक जीवन के संबंध में या समाज-सुधार के संबंध में कुछ ऐसी बातें सर्वसम्मति से की जा सकती हैं?

संघर्ष पर संयम

ल० प्र० व्यास : इसका मतलब यह है कि राजनीति का स्वधर्म संघर्ष का होते हुए

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भी उसपर संयम की आवश्यकता है और वह संयम 'नैतिकता' के माध्यम से संभव हो सकता है ?

डा० कर्णसिंह : संघर्ष भी आसुरी हो सकता है, संघर्ष दैविक हो सकता है। श्रीकृष्ण ने भी संघर्ष किया और दुर्योधन ने भी संघर्ष किया। संघर्षमय तो दोनों थे लेकिन एक दैवी पद्धति को लेकर चल रहा था और दूसरा आसुरी पद्धति को लेकर।

ल० प्र० व्यास : यह जो सबसे बड़ा प्रश्न राजनीति का है, राष्ट्रीय एकता का—राष्ट्रीय एकता के बारे में लोगों के तरह-तरह के ख्याल हैं, इस संबंध में हिंदू-मुश्लिम समस्या भी सामने आती है और विशेष रूप से आजादी के ३३ वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद भी इस तरह के सवाल आते हैं। तो इस सारे संदर्भ में आपके क्या विचार हैं?

राष्ट्रीय एकता

डा० कर्णसिंह : देखिए मैं तो एक मुस्लिम अक्सरियत या मुस्लिम बहुमत राज्य से आया हूं। इसलिए मुसलमानों के साथ हमारा बड़ा पुराना संबंध है और यह प्रसन्नता की बात है हमारे परिवार का और हमारा तो बहुत ही अच्छा संबंध मुसलमानों से रहा है। कश्मीर में एक ऐसी पद्धति है कि मुसलमान और हिंदू के बड़े अच्छे संबंध रहे हैं। जो उनके तीर्थस्थान हैं उनपर हम जाते हैं।इस प्रकार के स्थान हैं जहां हिंदू और मुसलमान दोनों जाते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर, उत्तर भारत में अधिकतर यह कठिनाई आती है यू० पी० में और बिहार में। इस विषय में अधिक हम क्या कहें? हमारा तो अपना विश्वास है कि जो सब धर्म हैं वे एक ही लक्ष्य की ओर ले जाने वाले अलग-अलग मार्ग हैं। ऋग्वेद का जो है :

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति

यदि इसको हम मान लें तो बहुत हद तक संघर्ष कम हो सकता है। जब एक ही लक्ष्य की ओर हम जा रहे हैं भले ही अलग-अलग हमारी मांगें हैं तब शिक्षा-पद्धति, नेताओं का अपना आचरण, प्रचार के माध्यम आदि का प्रयोग करके तथा जो धार्मिक नेता हैं उनका प्रभाव सबको लेना पड़ेगा ताकि यह जो एक जहर है परस्पर विरोध का वह दूर हो सके। मैं दोष किसीको नहीं दे रहा हूं कि मुसलमान का दोष है या हिंदू का दोष है। दोष तो सबका होगा समय-समय पर अलग-अलग परिस्थितियों में। लेकिन अब पाकिस्तान के टूटने के बाद मुझे लगता है कि जो मुसलमान—भारतवर्ष के मुसलमान जिनके उनमें से एक वर्ग की यह आदत थी कि वे पाकिस्तान की ओर देखा करते थे बजाय इसके कि वे हिंदुस्तान की ओर देखें; मुझे लगता है कि उसमें तो अब परिवर्तन आ गया है जब से पाकिस्तान टूट गया। बंगला देश अलग हो गया, पाकिस्तान अभी है लेकिन वह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक बहुत छोटा देश रह गया है। उसके बाद मुझे आशा तो थी कि धीरे-धीरे लोग जो विदेश की तरफ देखते हैं उनकी आंखें अपने देश की तरफ आ जाएंगी क्योंकि कुछ लोगों का तो यह कहना है कि यह जो तनाव बढ़ा है वह इसलिए बढ़ा है कि वहां उनकी आशाएं थीं, वे समाप्त हो गयीं—तो वे अपना हक अपने देश में मांगने के लिए उठे हैं। यानी यह भी एक विचार है लेकिन इसके ऊपर मैं टिप्पणी न करते हुए यही कहूंगा कि यह एक जटिल समस्या है और जम्मू-कश्मीर ने इसमें एक आदर्श प्रस्तुत किया है। देखिए, हमारे यहां कितनी कठिनाइयां हैं, कितने आक्रमण हुए, लेकिन हिंदू-मुस्लिम फसाद की बात आपने जम्मू-कश्मीर में नहीं सुनी। तो मैं तो वहां का प्रतिनिधि हूं। गांधी जी ने कहा था कि मुझे आशा की किरण कहीं से दिखाई देती है। एक छोटे-से ढंग से मेरा प्रयत्न इस क्षेत्र में यही रहता है कि वह जो किरण उनको दिखाई देती थी वह प्रकाश बनकर सारे भारतवर्ष में फैले।

ल० प्र० व्यास : आपको क्या ऐसा कभी लगता है कि यह जो अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक वाली बात है क्या यह एक विदेशी कल्पना है क्योंकि यहां तो एक मुख्य धारा होनी चाहिए कि कैसे इस देश में बसने वाले सभी लोग एक धारा में प्रवाहित हों।

डा० कर्णसिंह : यह इतना सरल नहीं है। देखिए जब राष्ट्रीय उत्थान हुआ था उसी समय से कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों थे। और अब केवल हमारे लिए कहना कि नहीं अब ऐसा नहीं हो तो मैं समझता हूं कि यह हकीकत से अपनी आंखें बंद करने वाली बात है। जो बंटवारा इस देश का हुआ, हम कुछ भी कहें, हम जानते नहीं हैं कि किस नाम से हुआ, लेकिन हुआ। क्यों हुआ? क्योंकि एक प्रकार की समस्या थी। अब हम कहते हैं कि अंग्रेजों ने बनाई थी, अंग्रेजों की चालाकी थी। हो सकता है कि चालाकी हो लेकिन हमारा बीच में कुछ था तभी तो चालाकी उनकी भी चली। इसलिए जो कुछ लोग कहते हैं कि भाई, यह प्रश्न ही नहीं होना चाहिए और यह क्यों उठता है? तो जैसे हैं कि जम्मू-कश्मीर में हिंदू अल्पमत में हैं उनकी अपनी समस्याएं हैं, लद्दाख में बौद्ध हैं उनकी अपनी समस्याएं हैं तो यह भी इस संघर्ष की राजनीति का एक अंग है इससे हटा नहीं जा सकता। इसे स्वीकार करके ही इसका कोई समाधान हो सकता है। ऐसा मैं समझता हूं।

आशा की किरण

ल० प्र० व्यास : हमारा बड़ा देश है और इसमें विग्रह होना स्वाभाविक भी है, उसमें आप आशा की किरण किसको मानते हैं और एकता के कौन-से सूत्र हो सकते हैं जिनको बढ़ाया जाय?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

डा० कर्णसिंह : एकता के दो-चार प्रमुख सूत्र मैं समझता हूं। एक तो हमारी सांस्कृतिक परंपरा जो है इसमें कोई शक नहीं कि यह एकता का सूत्र है। कश्मीर से कन्याकुमारी तक एक जो संस्कृति हमारी चली आ रही है हजारों वर्ष से उसमें अनेक धर्म भी हैं लेकिन प्रमुखतया उसमें हिंदू संस्कार हैं। तो हमें मानकर चलना पड़ेगा एक सांस्कृतिक एकता है—एक प्रकार से बड़ी भारी नदी है उसमें और भी धर्मों का मिलन हुआ है; मुसलमानों का हुआ है जैसे सूफी मत का हुआ इत्यादि। बौद्ध, जैन, सिख इत्यादि भी। ये सब हैं। हमें अपनी संस्कृति का पुनर्मूल्यांकन ऐसे करना है कि उसमें जो गुण हैं उन्हें तो हम ग्रहण करें और जो अवगुण भी कुछ हैं जैसे छुआछूत इत्यादि तो आजकल के जमाने में चलेगा नहीं। जैसे विवेकानंद ने किया, जैसे गांधी जी ने किया—जो अच्छी बातें हैं उन्हें लिया बाकी छोड़ दीं। लेकिन संस्कृति को हम त्याग नहीं सकते जैसे कुछ लोग कहते हैं कि नहीं संस्कृति कुछ नहीं है और हम जाकर किसी विदेशी विचारधारा को कैपिटलिज्म हो, केंस का अथवा मार्क्स का कम्युनिज्म हो, वही लेंगे और अपना त्यागेंगे तो यह बात तो चलेगी नहीं।

दूसरा हमारे यहां जो रक्षा सेनाएं हैं—थल सेना है, नौ सेना है, वायु सेना है —यह भी एकता के सूत्र हैं। आप इंडियन आर्मी की किसी यूनिट में चले जाइए—यदि लद्दाख में हों तो वहां आपको मद्रासी भी मिलेगा, बंगाली भी मिलेगा, सिख भी मिलेगा। तो वहां भी एक सूत्र है, जिसे हमें ध्यान में रखना है।

तीसरे, जो हमारी राजनीति है; जहां राजनीति के कुछ दुष्परिणाम हैं वहां राष्ट्रीय राजनीति इस देश को इकट्ठा भी रख सकती है—यानी गांधी जी ने जिस प्रकार की राष्ट्रीय राजनीति पेश की जैसे कांग्रेस ने; उसमें दस अवगुण हों, उनमें मैं नहीं जाता, लेकिन एक प्रकार से देश को बांधा। लद्दाख में भी एक दफ्तर होगा और कन्याकुमारी में भी एक दफ्तर होगा। यह भी आज के परिप्रेक्ष्य में एक सूत्र है।

चौथा, आर्थिक प्रगति। जब आर्थिक प्रगति होगी, आदान-प्रदान होगा, रेलें चलेंगी, हवाई जहाज चलेंगे, लोग चलेंगे, युवापीढ़ी के लोग एक-दूसरे से मिलेंगे तब जाकर एकता होगी। अंत में युवापीढ़ी से हमें बहुत आशा है और देश के भविष्य में, देश के भाग्य में आस्था रखनी पड़ेगी।

ल० प्र० व्यास : भाषा के संबंध में क्या विचार हैं आपके ? क्या इससे सांस्कृतिक एकता नहीं होती ?

डा० कर्णसिंह : इस संबंध में मेरा विचार यह है कि मैं तो हरेक भाषा को पवित्र मानता हूं। मैं सरस्वती की पूजा करता हूं—वाग्देवी के स्वरूप में। तो सरस्वती की कोई मातृभाषा नहीं, सरस्वती स्वयं भाषा है। इसलिए किसी भी भाषा का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हम विरोध या अपमान करें वह सरस्वती का अपमान है, ऐसा हम मानते हैं। दूसरा, यह है कि हमारे देश में तीन-चार भाषाएं हैं जिनका प्रमुख स्थान है। एक तो अपनी-अपनी मातृभाषा, जिसकी जो मातृभाषा है उसके लिए वह महत्त्वपूर्ण है—चाहे वह छोटी हो या बड़ी। हमारी मातृभाषा डोगरी है, अभी तक राष्ट्रीय संविधान में नहीं आयी है लेकिन हमें उससे प्यार है। मातृभाषा का अपना स्थान है। दूसरी एक राष्ट्रभाषा हिंदी का अपना स्थान है। एक भाषा जो इस देश के बहुमत के लोग बोलते हैं समझते हैं। हिंदी राष्ट्रभाषा का रूप ले रही है या लिया है संवैधानिक रूप से। भले ही कहीं-कहीं विरोध है लेकिन प्रचार अगर प्रेम से किया जाए तो विरोध कम होगा। तो हिंदी का अपना एक स्थान है।

राष्ट्रभाषा का प्रश्न

ल० प्र० व्यास : यानी राष्ट्रभाषा और राजभाषा को अलग करने की जरूरत नहीं ?

डा० कर्णसिंह : हां, दोनों के रूप-स्वरूप अलग-अलग हैं। हिंदी के रूप अनेक हैं। हिंदी का एक तो मातृभाषा का रूप है यानी वह जिन लोगों की मातृभाषा है, एक एक राजभाषा का रूप है; एक राष्ट्रभाषा का रूप है और एक विश्व-भाषा का रूप है। आप और हम सब जानते ही हैं, हम सभी इस कार्य में लगे हुए हैं।

अंग्रेजी का विरोधी नहीं

तीसरे, अंग्रेजी। मैं अंग्रेजी का बिल्कुल विरोधी नहीं हूं। मैंने यह हिंदी-प्रेमियों के सामने कई बार कहा है कि आप हिंदी की प्रशंसा करें, प्रचार करें, प्रसार करें—राष्ट्रभाषा होने के नाते मैं इसका सेवक हूं, प्रचारक हूं। लेकिन अंग्रेजी की अप्रशंसा मैं सुनने को तैयार नहीं हूं। ऐतिहासिक कारणों से २०० वर्षों से एक भाषा इस देश में उभरी और बहुत हद तक हमारे राष्ट्रीय आंदोलन में इसका लाभ हुआ। जिस भाषा में जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा लिखी, जिस भाषा में अरविंद ने अपना महाकाव्य लिखा, जो आज न जानें; दो हजार वर्ष तक लोग उसको समझते रहेंगे। जिस भाषा में राधाकृष्णन ने अपने हिंदू धर्म का विश्लेषण किया, उसको हम विदेशी भाषा मानने को तैयार नहीं हैं। उसका राष्ट्रीयकरण करना है और चौथी है देववाणी संस्कृत। संस्कृत एक ऐसी भाषा है जिसका विशेष स्थान हमारे देश में है। मैंने तो यहां तक कहा है कि जिस दिन भारत से संस्कृत लुप्त हो जाएगी तो उस दिन यह भारत नहीं रहेगा, कोई अन्य नाम आप रख लें। तो इसलिए भाषा के संबंध में मेरा यह विचार है कि जितनी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाषाएं हमें आती हों उतना अच्छा है। किसी भाषा का विरोध न करके अपना प्रचार-प्रसार करें।

ल० प्र० व्यास : भारत में संपर्क भाषा के रूप में किस भाषा का प्रयोग उचित समझते हैं ?

डा० कर्णसिंह : संपर्क के लिए तो दोनों भाषाओं का प्रयोग करना पड़ेगा, कुछ देर तक हिंदी और अंग्रेजी दोनों। देखिए, लोकसभा में जब मैं आया उस समय मुझे याद है कि अधिकतर ९०-९५ प्रतिशत अंग्रेजी का प्रयोग होता था लेकिन मैंने देखा ३० वर्ष में करीब-करीब अब लोकसभा द्विभाषी हो हो चली है, क्योंकि माइक्रोफोन्स होते हैं। अब तो स्मरण भी नहीं रहता कि कोई व्यक्ति अंग्रेजी बोले या नहीं। मैं तो खैर दोनों ही समझ लेता हूं। लेकिन जो लोग नहीं भी समझते वे माइक्रोफोन्स का इस्तेमाल कर लेते हैं। तो हिंदी को समाप्त करने का प्रश्न नहीं उठता लेकिन अंग्रेजी को भी मुझे लगता है कि समाप्त करने से लाभ नहीं होगा; देश को हानि होगी। इसलिए उस स्तर पर हम द्विभाषी रहें···क्योंकि हिंदी तो करोड़ों लोगों की मातृभाषा है, अंग्रेजी बहुत थोड़ों की है। तो अपने समय में हिंदी अपना स्थान ग्रहण कर लेगी, अंग्रेजी अपना कर लेगी। लेकिन जब दोनों को परस्पर विरोधी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है तो उसमें हानि हिंदी की होती है, अंग्रेजी की नहीं। इस प्रकार के संघर्ष में हिंदी का हम नुकसान करते हैं, लाभ नहीं करते। तो हिंदी-अंग्रेजी दोनों चलती रहें। क्या पता अगले १५-२० वर्षों में इतना परिवर्तन हो जाय कि लोकसभा में ७५-८० प्रतिशत लोग हिंदी ही बोलें। इसको कोई संघर्ष या विवाद का विषय बनाना, मैं समझता हूं, उचित नहीं है।

भारत का भविष्य

ल० प्र० व्यास : भारत के भविष्य के विषय में आपकी क्या आस्था है ?

डा० कर्णसिंह : जैसा मैंने कहा कि मुझे भारत के भाग्य में विश्वास है, पूर्ण विश्वास हैं और हमारी तो यह आस्था है कि एक न एक दिन भारतवर्ष वास्तव में एक महान देश होगा, केवल महान इसमें नहीं कि शक्ति है, बहुत सेना है, बल्कि जो एक आंतरिक महानता है, उसके विचारों की और आंतरिक मूल्यों की, उसके साथ मिलकर सुख-समृद्धि से युक्त होगा। यदि इस शताब्दी के अंत तक भी ऐसा होता है तो मैं समझता हूं कि बहुत बड़ी बात होगी। अभी तो ३३-३४ वर्ष हुए हैं स्वतंत्र हुए। अतएव अगर २० वर्ष में हम कम से कम और नहीं तो पर्याप्त भोजन, वस्त्र, रहने का स्थान, शिक्षा ही उपलब्ध कराने का प्रयास करें। आप सोचिए, जब हम रात को सोते हैं और जब हमें इस बात का स्मरण आता है कि लाखों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्यक्ति ऐसे हैं जिनको दो समय रोटी छोड़कर एक समय रोटी भी नहीं मिलती तो हमारी स्वतंत्रता संपूर्ण कैसे कही जा सकती है?

ल० प्र० व्यास : तो क्या आप अनुभव करते हैं कि उज्ज्वल रेखा कहीं है?

डा० कर्णसिंह : जी हां, मुझे लगता है कि यदि इस देश में नयी चेतना जागृत हो, स्वावलंवन का एक नया विचार जागृत हो जैसे इकट्ठे मिलकर कार्य करने की क्षमता उत्पन्न हो और एक ऐसा नेतृत्व हो जो कि अधिकतर लोगों को अपने साथ लिए लक्ष्य की ओर बढ़ सके और युवा पीढ़ी पर कुछ प्रभाव डाल सके तो मैं समझता हूं कि २० वर्ष में हम इस देश में परिवर्तन ला सकते हैं।

एक व्यक्ति का नेतृत्व या सामूहिक नेतृत्व ?

ल० प्र० व्यास : आपने नेतृप्व की वात की, तो क्या आप इतने बड़े देश में किसी एक व्यक्ति के नेतृत्व को महत्त्व प्रदान करते हैं या किसी सामूहिक नेतृत्व की कल्पना आपके मस्तिष्क में है?

डा० कर्णसिह : व्यक्तियों का अपना प्रभाव और अपना महत्त्व तो रहेगा ही लेकिन किसी एक व्यक्ति के ऊपर निर्भर रहने में यह रहता है कि यदि उस व्यक्ति में कोई त्रुटि आ जाए या वह व्यक्ति चला जाए तो सारी वात खराब हो जाती है। तो मैं समझता हूं कि राजनीति में सामूहिक नेतृत्व की आवश्यकता है। एक नेता तो होगा उसमें भी, सभी नेता हो जाएं तो जो हाल हुआ उसे भी आपने देख लिया। एक नेता तो होता है लेकिन उस नेता के साथ सहयोगी हों। यह नहीं कि केवल जी-हुजूरी हो। ऐसे सहयोगी हों जो राय दे सकें, जो अपने पैर पर खड़े हो सकें। हरेक दल में भी यह हो। तव जाकर यह देश उठेगा क्योंकि एक व्यक्ति प्रधानमंत्री हो तो एक प्रधानमंत्री कितनी देर इस देश को आगे ले चल सकेगा? यदि हम यह मानकर चलें कि प्रधानमंत्री ठीक रास्ते पर चल रहे हों न तो सिर्फ एक व्यक्ति तो कहीं ले जा नहीं सकता। इसलिए राजनीति में एक ऐसा वातावरण वनना चाहिए कि जहां सहयोगियों का एक ग्रुप हो। इस संदर्भ में गांधीजी को ही देखिए, उन्होंने कैसे ग्रुप बनाया। गांधीजी प्रथम थे। उन्हें कोई चुनौती नहीं दे सका। लेकिन गांधी जी के रत्न देखिए। जवाहरलाल जी हालांकि हमारे वड़े आदर्श पुरुष थे लेकिन उनकी इसमें थोड़ी-सी कमजोरी रही क्यों कि मौलाना और पंत जी के जाने के वाद अगर आप देखें तो वे कोई ऐसा व्यक्ति नहीं लाए हालांकि एक बात कहनी पड़ेगी कि उन्होंने जयप्रकाश जी को निमंत्रण दिया था। जवाहरलाल जी की दूरदर्शिता का यह एक प्रमाण है। उन्होंने कहा, आप आइए, आप मेरे सक्सेसर होंगे। आप उपप्रधानमंत्री बनकर आएं। उस समय वे अपने चक्कर में—लोहिया जी और वो···उसमें हम क्या जाएं—उन्होंने नहीं किया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हो सकता है कि अगर जयप्रकाश जी जवाहरलाल के उस निमंत्रण को स्वीकार कर लेते तो भारतवर्ष का दूसरा ही इतिहास बन जाता। इसलिए मुझे लगता है कि जहां एक नेता होना चाहिए वहां उसके साथ बहुत अच्छे-अच्छे व्यक्ति भी होने चाहिए।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कला और जीवन

किसी सांस्कृतिक व्यक्ति के जीवन की मूलभूत रेखाएं विभिन्नताओं से ही उजागर होती हैं। इस ग्रन्थ के लिए प्रस्तुत पांच निबन्ध अपनी आत्मधर्मिता में भिन्न होते हुए भी संस्कार को कलात्मक अभिव्यक्ति को द्योतित करते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

□ श्रीमती कमला रत्नम्

देवी : भारतीय चिंतन में

संसार में परम-तत्त्व की खोज में भारत का प्रमुख स्थान रहा है। परम-तत्त्व को ही हमारे यहां सत्य माना गया है और सत्य की खोज को ब्रह्म-जिज्ञासा कहा गया है। ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति से यह ज्ञात हुआ कि सर्वप्रकारेण स्वात्मना संपूर्ण होने पर भी ईश्वर की क्रियाशीलता शक्ति के ऊपर निर्भर है। ईश्वर और उसकी क्रिया-शक्ति को दर्शनशास्त्रियों ने शिव और शक्ति कहकर भी संबोधित किया है। यही शक्ति देवी है। देवी की कल्पना अथवा उपासना हमारे देश में प्रागैतिहासिक काल से ही होती आयी है। ईसा से लगभग ४००० वर्ष पूर्व सिंधुघाटी सभ्यता के अवशेषों में जो मूर्त्तियां पायी गयी हैं, उनसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि उस प्राचीनतम काल में भी भारतीय जन-मानस ने ईश्वरीय शक्ति को माता या देवी के रूप में ही जाना। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई में अनेक स्त्री-मूर्तियां मिली हैं जिनमें अल्पवस्त्रावृत अथवा विवस्त्र स्त्री स्वरूप को खड़े हुए दिखाया गया है, वह अपनी कटि पर मेखला धारण किये हुए है, मुख और कंठ में आभूषण पहने हुए है और कानों के पास अपेक्षाकृत दीर्घाकार टोपियां-सी हैं। इन टोपियों पर धूप और दीपादि के जलने के चिह्न हैं, जिनसे अनुमान होता है कि मातृदेवी के कानों के निकट प्रार्थनादीप जलाए जाते थे, जिससे कि वे शरणागत प्रार्थी की प्रार्थना सुनें।

मातृदेवी को सिंधु-घाटी सभ्यता में प्रकृति-देवता भी समझा जाता था। हड़प्पा से प्राप्त एक मुद्रा में विवस्त्र स्त्रीमूर्त्ति को टांगें ऊपर किये दिखाया गया है। उसकी जंघाओं के बीच से योनिमार्ग से एक वृक्ष निकल रहा है। मुद्रा के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूसरी ओर एक पुरुष हाथ में हंसिया उठाये खड़ा है और उसके समक्ष एक स्त्री उब्दाहु जानु के वल बैठी है। स्त्री प्रार्थनामुद्रा में है, और पुरुष मातृदेवी के तर्पणार्थ उसकी बलि देने के लिए उद्यत दिखाई देता है। इसी प्रकार की अन्य मुद्राएं गुप्त-काल तक वनती रही हैं, जिनमें मातृ-देवी के किसी-न-किसी अंग से वनस्पतियां उत्पन्न होना अंकित है। भारत में प्राणदायिनी शक्ति के रूप में देवी की पूजा सर्वत्र प्रचलित है। प्रत्येक ग्राम में देवी 'ग्राम-देवता' के रूप में प्रतिष्ठित है; उसे माता, अंवा, अम्मा, काली, कराली, दुर्गा अनेक नामों से संबोधित किया जाता है। हमारे आदि पूर्वज आर्यों को भी सृष्टि को सक्रिय करने वाली शक्ति का ज्ञान था। प्रारंभ में उन्होंने उसे 'द्यावापृथिवी' (द्यौः आकाश और पृथिवी पृथ्वी) के रूप में जाना और उसकी स्तुति में अनेक सूक्त कहे। पृथ्वी यद्यपि माता है परंतु द्यौः अथवा आकाश से जलवृष्टि के विना उसकी प्रजनन शक्ति प्रकट नहीं हो पाती। अतएव स्थूल मूर्त्ति रूप में पृथ्वी को माता कहा गया और द्यौ को पिता और दोनों के मिलने से जो शक्ति अथवा ऊर्जा उत्पन्न हुई उसे ही देवी कहा गया। इसीलिए ऋग्वेद में जहां 'द्यावापृथिवी' के रूप में पृथ्वी और आकाश के रूप में सम्मिलित उल्लेख किया गया है, वहां कहीं-कहीं एक ही सूक्त में द्यौः-पृथिवी और देवी का उल्लेख है।

वयं स्याम यशसो जनेषु तद्यौश्च धत्तां पृथिवी च देवी ॥

(ऋग्वेद, ४-५३)

वेदों में देवी की जहां अधिक मूर्त्त, अधिक सघन कल्पना है, उसकी तुलना में दक्षिण में देवी को समस्त जगत् की अन्तर्यापिनी अमूर्त्त शक्ति के रूप में जाना गया है। प्रकृति के सभी प्रतीक जड़ के समान निश्चल शव माने गये जब तक उनमें उनकी सहगामिनी क्रियाशक्ति का उद्रेक नहीं हुआ। अतएव सभी देवताओं के लिए उनके शक्ति-रूप की भी कल्पना की गयी। अग्नि की अग्नायी, ब्रह्मा की ब्रह्माणी, इंद्र की इंद्राणी, रुद्र की रुद्राणी, विष्णु की वैष्णवी। इसी प्रकार वरुण की वारुणी और वायु की वायवी शक्ति हुई। यहां तक कि तंत्रकार ने देवी-शक्ति का आवाहन करते हुए कहा—

शवारूढां महाभीमां घोरदंष्ट्रां वरप्रदाम्।
हास्ययुक्तां त्रिनेत्रां च कपाल कर्तृकाकराम् ॥
मुक्तकेशीं लोलजिह्वां पिवन्तीं रुधिरं मुहुः।
चतुर्बाहुयुतां देवीं वराभयकरां स्मरेत् ॥

पार्थिवत्ता के शव पर ही आरूढ़ होकर, सुंदर और भयंकर, हास्य और क्रोधयुक्त, सृष्टिसंहारकारी और लोकसर्जनकारी अपने उभयरूपों से देवी हमारे सामने नित्य प्रकट होती हैं।

इस परमदैवी शक्ति को हमारे यहां अनेक रूपों में देखा गया है। अधिकतर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसके प्राणदायी, आश्वासनकारी मातृरूप ने ही लोगों को स्पंदित और आंदोलित किया है। इस रूप में माता स्वयं इस ग्रंथ के अभिवंद्य राजश्रीः डा० कर्णसिंह के मुख में सदा विराजमान रहती हैं, राजा साहब ने यहां देवी को महालक्ष्मी रूप में स्मरण किया है :

या सा पद्मासनस्था विपुलकटितटी पद्मपत्रायताक्षी
गंभीरावर्त्तनाभिः स्तनभरणनता शुभ्रवस्त्रोत्तरीया।
लक्ष्मीर्दिव्यैः गजेन्द्रैः मणिगणखचितैः स्नापिता हेमकुम्भैः
नित्यं सा पद्महस्ता मम वसतु गेहे सर्वमांगल्ययुक्ता ॥

देवी को यहां महालक्ष्मी का रूप देकर उनके विग्रह के जिन विपुल अभिकरणों को शब्दायित किया गया है, उन्हें मात्र स्थूल अर्थ में समझकर आगे बढ़ जाना हमारी भारी भूल होगी। महालक्ष्मी को 'पद्मासनस्था' कहकर, उन्हें कमल के आसन पर बिठाकर, संसार में समृद्धि के नाना-पटलों को जलासक्ति से विलग शतदल कमल पत्रों के समान ही समझना और सेवन करना चाहिए, यही स्तुतिकार का अभीष्ट अर्थ प्रतीत होता है। विपुलकटितटी, पद्मपत्रायताक्षी तथा गंभीरावर्त्तनाभिः आदि विशेषण समृद्धि लक्ष्मी के सांसारिक व्यापार-व्यवहार की विभिन्न दशाओं को भलीभांति रूपायित करते हैं।

सती पार्वती के रूप में देवी की दांपत्यमयी आह्लादकारिणी मुद्रा का भी निर्देश किया गया है। उनके इस रूप से अनेक प्रकार की तंत्र-मंत्र-साधनापद्धतियों का विकास हुआ है। जहां देवी के रचनात्मक, आनंदप्रद रूपों की जी-भरकर स्तुति की गयी, वहां उनके रौद्र और भयंकर रूप से भी अंतरंग परिचय हुआ। दुर्गा और काली के रूप में उनका दुष्ट दमनकारी, अशुभ संहारकारी रूप ही प्रकट हुआ।

हन्तुं शुम्भं निशुम्भं बिबुधगणनुतां हेमडोलां हिमाद्रावारूढां व्यूढदर्पान्युधि निहतवतीं धूम्रदृक् चण्डमुण्डान्।
चामुण्डाख्यां दधानामुपशमित महारक्त बीजोपसर्गां
दुर्गां देवीं प्रपद्ये शरणमहमशेषापदुन्मूलनाय ॥

उपर्युक्त स्तोत्र में शुंभ-निशुंभ नामक दैत्यों का वध करती हुई दुर्गा की स्तुति चामुंडी के रूप में की गयी है। देवी के रौद्र रूप में उन्हें 'भैरवी' कहा गया है, अन्य व्यपदेश इस प्रकार हैं, भवानी, भ्रमरी, भूतनायकी, चामुंडा, चंडी, छिन्नमस्तका, दशभुजा, देवी, काली, दुर्गा आदि। इसी प्रकार देवी की विभिन्न मुद्राओं में उनके विभिन्न नाम हैं, गौरी, गिरिजा, हैमवती, हरसिद्धि, जगद्धात्री, जगन्माता, कामाक्षी, कामेश्वरी, कांतारवासिनी आदि। दुर्गा के रूप में देवी का विस्तृत वर्णन ऋषि मृकंडु ने अपनी प्रसिद्ध दुर्गा सप्तशती में किया है।

वास्तव में सर्वव्यापिनी शक्ति ही देवी है, उसे किसी एक ही रूप अथवा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आयाम में सीमित करना संभव नहीं है। लौट-फिरकर हमें पुनः वेदों के पास जाना पड़ेगा जहां ऋग्वेद के 'देवी-सूक्त' और सामवेद के 'रात्रि-सूक्त' में देवी ने स्वयं अपना वर्णन किया है :

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानां।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयंती ॥

(ऋग्वेद, १०-३)

"मैं ही सर्व जगत् की ईश्वरीय हूं, मैं ही लोगों को धन-धान्यादि प्राप्त कराती हूं, यज्ञकर्त्ता उपासक सर्वप्रथम मुझे ही प्राप्त करना चाहते हैं; देवताओं ने मेरे इसी रूप को सर्वत्र विस्तृत किया है, मैं बहुत होकर बहुत प्रकार से बहुत स्थानों पर लोगों को आवेष्टित करती हूं।"

ये शब्द हैं ऋग्वेद की ऋषि परमविदुषी वाग् देवी के। उन्होंने इस सूक्त की आठ ऋचाओं में अपने यथार्थ स्वरूप का विस्तृत वर्णन किया है। वाक् ब्रह्मविद्या में पारंगत थीं, पराशक्ति का साक्षात्कार करके उन्होंने उसे अपनी आत्मा के भीतर पाया था और बड़े साहस और निर्भीकता से अपनी सर्वभौमिकता का उद्-घोष किया था। "मुझी से वह अन्न खाता है, मेरी ही शक्ति से देखता है, सांस लेता है, सुनता है, जो मेरे विषय के ज्ञान से अनभिज्ञ हैं उनका क्षय हो जाता है। ओ! बहुपठित विद्वान् श्रद्धावान् श्रोता, सुनो, मैं तुम्हें श्रद्धास्पद वाक्य सुनाती हूं।"

"जिस व्यक्ति की मैं रक्षा करना चाहती हूं उसे उग्र, ब्रह्मा और ऋषि बना देती हूं। उसकी बुद्धि को संवार देती हूं।"

"मैं रुद्र के लिए उनका धनुष तानती हूं; ब्रह्मज्ञान से द्वेष करने वाले, हिंसक, हत्यारे पर उस धनुष से छूटा वाण जाकर गिरता है। सज्जनों के संग्राम मैं ही लड़ती हूं। मैं ही समस्त द्यावापृथिवी में प्रविष्ट हूं।"

कितने प्रेरक, उन्नायक ये शब्द हैं वाग्देवी के। यह हमारा ही देश है जहां समस्त ज्ञान एवं मेधा की अधिष्ठात्री देवी को वाग्देवी सरस्वती माना गया है। यहां तक कि अन्य सभी देवताओं की उपासना भी वाक्-शक्ति की प्राप्ति के लिए की गयी है। शब्दों के महान शिल्पी कविकुलगुरु कालिदास ने शिव-पार्वती के अर्धनारीश्वर रूप की आराधना वाणी और अर्थ की प्राप्ति के लिए ही की थी :

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥

(रघुवंश, १-१)

वाणी ही क्या संसार में सभी प्रकार के श्रेयस की प्राप्ति के लिए देवी की उपासना की गई है। यथा महाभारत युद्ध आरंभ होने से पहले श्री कृष्ण भगवान ने अर्जुन से दुर्गा की आराधना करने के लिए कहा था, "पराजयाय शत्रूणां दुर्गा-स्तोत्रमुदीरय!"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्जुन ने भी श्रीकृष्ण का आदेश पालन करते हुए तुरंत प्रार्थना की :

भद्रकालि ! नमस्तुभ्यं महाकालि ! नमोऽस्तुते ।
चण्डि चण्डे नमस्तुभ्यं तारिणि वरवर्णिनि ।।

(भीष्मपर्व २३-४-२५)

यहां स्मरणीय है कि श्रीराम ने भी रावण पर अंतिम विजय प्राप्त करने से पूर्व देवी की आराधना की थी। तंत्संबंधी महाकवि निराला की काव्य रचना 'राम की शक्तिपूजा' स्वयं अपने-आप में देवीपूजा का ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत करती है।

मुंडक उपनिषद् में देवी की गति और कार्यशक्ति को 'मनोजवा' बताया गया है। जिस प्रकार विद्युत् से भी तीव्र गति से मन में विचार आते और जाते हैं, उसी प्रकार देवी के कार्य भी उसी विद्युतोत्तर गति से संपादित होते हैं। केनोपनिषद् में उमा-हैमवती के उदाहरण से देवी की परादर्शिनी शक्ति को इंद्र, वायु, अग्नि आदि देवताओं से सूक्ष्मतर बताया गया है। देवी के विपुल विग्रहों और अनंत शक्तियों का जिस विस्तार और मेधा से हमारे भक्ति एवं दर्शन साहित्य में वर्णन किया गया है उसका विवेचन यहां संभव नहीं है। परंतु उस साहित्य के अनुशीलन से इतना स्पष्ट है कि देवी की शक्तियां क्रमशः स्थूल से सूक्ष्मतर, और सूक्ष्मातिसूक्ष्म होती चली गई हैं। यहां तक कि कालिकोपनिषद् में देवी को ब्रह्मस्वरूपिणी कहा गया है, "अथ हैनां ब्रह्मरंध्रे ब्रह्मस्वरूपिणी-माप्नोति सुभगाम्"। देवी-उपनिषद् में कथा आती है। देवी के अलौकिक तेज-वर्चस्व से अभिभूत होकर सब देवता देवी के पास उपस्थित हुए। बोले, "कासि त्वं महादेवि ?"—हे महादेवी तुम कौन हो ? तब देवी ने उत्तर दिया, "अहं ब्रह्मस्वरूपिणी !"—यह प्रकृति-पुरुषात्मक जगत् मुझसे ही प्रसूत है। शून्य और अशून्य, आनंद और निरानंद, विज्ञान और अविज्ञान, ब्रह्म और अब्रह्म, पंचमहाभूत, पंचतन्मात्र यह सब मैं ही हूं। "अहंमखिलं जगत् !" समस्त जगत्, जड़ और चेतन मैं ही तो हूं। आत्मपरिचय की यह पराकाष्ठा है। देवी का यह परिचय आत्मा द्वारा ही किया जा सकता है, वह शब्द-संवेद्य नहीं है। (देवी उपनिषद् २, २)

देवी की उपासना में सर्वाधिक हृदयस्पर्शी उद्गार श्री शंकराचार्य के हैं जिन्होंने विधवा माता के गर्भ से जन्म लेकर ८ वर्ष से भी कम की अवस्था में संन्यास लेकर घर त्याग दिया। समस्त वेदविद्या और दर्शन शास्त्रों को ग्रहण कर चुकने के बाद उन्हें जब दूर दक्षिण में मृत्युशय्या पर पड़ी मां की सूचना मिली, तब उन्होंने मातृमूर्त्ति में देवीमूर्त्ति के दर्शन किये और जगद्धात्री देवी से अपराध-क्षमापन की प्रार्थना की। "न मंत्र जानता हूं न तंत्र, स्तुति करना भी मुझे नहीं आता। ध्यान, आह्वान की तो बात ही क्या ? हे देवी, मुझे तुम्हारी मुद्राओं का भी ज्ञान नहीं है, तुम्हारे सामने विलाप कैसे किया जाता है यह भी मैं नहीं जानता, परंतु इतना हे माता ! मैं जानता हूं कि तुम्हारा अनुसरण क्लेशहरण करने वाला है। त्वदनु-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सरणं क्लेशहरणम् !"

"शायद मेरा भाग्य ही खोटा था, शायद मेरे पास धनसामर्थ्य नहीं था, या शुद्ध आलस्य के कारण तुम्हारे प्रति जो कर्त्तव्य था मेरा, उसमें बार-बार च्युति हुई, तो हे सकल जगत् का उद्धार करने वाली शिव-कल्याणमयी माता, तुम उस सबको क्षमा करना। क्योंकि कुपुत्र का जन्म तो कभी भी हो सकता है, परंतु कोई माता कुमाता नहीं होती ! "कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवन्ति !"

इसके बाद संन्यासी होकर भी शंकराचार्य ने अपने घर के आंगन में अपनी प्रिय माता का दाहसंस्कार किया। विरोध करते लोगों की भीड़ घर को घेरे थी, कोई व्यक्ति मातृ-शव को शवस्थान ले जाने के लिए तत्पर नहीं था। निदान विवश होकर मातृस्नेहाभूत् पुत्र शंकर ने अपने घर की डेवढ़ी पर मां के पार्थिव शरीर को अग्नि दी। उस क्षण उस प्रज्वलित अग्नि से जो दैवी ज्योति उठी, जो प्राणशक्ति मुक्त हुई वही आजतक इस भारत की दुर्दशा दलित संतान की रक्षा कर रही है, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। ऐसी प्राणदायिनी देवी सर्वदा हमारी रक्षा करें यही कामना है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

□ डा० आनन्द कृष्ण

बसोहली शैली के कतिपय चित्रों का रसास्वादन

पहाड़ी चित्रकला के क्षेत्रीय वर्गीकरण और काल निर्धारण पर बहुत अनुसंधान हो चुका है और महत्त्वपूर्ण तथ्य भी सामने आ चुके हैं। अतएव मेरा प्रस्तुत प्रयत्न बाल्य ही है। परन्तु संभवतः इस लेख का उद्देश्य थोड़ा हटकर है। यहां मैं कुछ चित्रों की केंद्रीय भावना उपस्थित कर रहा हूं। पहाड़ी शैली में अनेक उपशैलियां हैं। प्रत्येक क्षेत्र में बहुत बड़ी संख्या में चित्र बने और अच्छे चित्र बने। यहां पहाड़ी क्षेत्र की मूर्धन्य बसोहली शैली के कुछ चित्रों पर संक्षिप्त टिप्पणियां हैं, इन दृष्टियों से मैंने कुछ विशिष्ट चित्रों को चुना है। इन चित्रों में से अनेक प्रकाशित हो चुके हैं और पाठक वर्ग इनसे परिचित होगा।

बसोहली शैली के अब तक ज्ञात प्रारम्भिक चित्रों को हम प्रायः १६७० ई० का मान सकते हैं। उस समय भी यह शैली परिपक्व थी। इस काल में भानुदत्त के रीति काव्य रसमंजरी की एक उत्कृष्ट चित्रावली तैयार हुई। संयोगवश इसके पचास एक चित्र डा० कर्ण सिंह जी की ही कृपा से डोगरा आर्ट गैलरी, जम्मू तथा सर प्रतापसिंह म्यूजियम, श्रीनगर में हैं।

बसोहली शैली का यह वास्तविक स्वर्णयुग था। यहां उसके कृतित्व का पूर्ण विकास मिलता है। इसमें नायिकाओं की मनोदशा की अद्‌भुत अभिव्यक्ति दीखती है। वस्तुतः चित्रण की दृष्टि से यह एक जटिल स्थिति है। क्योंकि बसोहली शैली स्वयं में अत्यन्त परंपरावादी और आलंकारिक है। उसमें रूप और रंग दोनों ही सामान्य जगत् से परिवर्तित होकर प्रकट होते हैं। चित्रकार को इन विधाओं के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्तर्गत चित्रण करना था। सामान्य रूप से चित्रकार इन सीमाओं में बंधकर शुद्ध परम्परावादी हो जाता, परन्तु इस काल में बसोहली चित्रकार ने इन सूत्रों का पूरा उपयोग किया। इतना ही नहीं, उनमें एक नई जान डाल दी। उन पारम्परिक विधाओं को और अधिक उत्तेजना प्रदान की। इस परिप्रेक्ष्य में हम इस शैली के कुछ चित्रों का अवलोकन करेंगे।

प्रोषितपतिका नायिका (डोगरा आर्ट गैलरी, जम्मू संग्रह)

यहां हम एक कक्ष में स्त्रियों की मंडली देखते हैं। इनमें विराहिणी खिन्न भाव से बैठी है। उसकी झुकी हुई मुखमुद्रा उसकी अव्यक्त वेदना प्रकट करती है। परकीया होने के नाते वह इसे व्यक्त भी नहीं कर सकती। चित्रकार ने इस बेबसी को भली भांति प्रकट किया है।

कृष्णाभिसारिका (डोगरा आर्ट गैलरी, जम्मू संग्रह)

यह बहुत लोकप्रिय चित्र है और प्रकाशनों में प्रायः छपता है। चित्रकार ने नायिका को एकदम सुनसान में उपस्थित किया है। इस हेतु एक ओर दूर पर कुछ वस्तु है, दूसरी ओर क्षितिज के पास कुछ छोटे-छोटे वृक्ष हैं। ऊपर लहराए हुए बादल हैं। इन्हें चित्रकार परम्परागत सफेद कपड़े की बंदनवार जैसा दिखलाता है। कहीं-कहीं सोने की नागिन-सी बिजली की चमक है। बादलों से पानी की बूंदें मोतियों की लड़ियों के समान गिर रही हैं। सर्वोपरि ये बूंदें नायिका के चारों ओर एक सुन्दर हाशिये की भांति दिखलाई गई हैं। स्वयं नायिका और सखी तक आते-आते वे सहसा रुक जाती हैं।

इस चित्र का एक प्रमुख आकर्षण इसकी ठोस काली पृष्ठभूमि है। चित्रकार ने पुष्ट काले रंग का प्रयोग किया है जिसके सम्मुख नायिका समेत, अन्य सभी आकृतियां स्वयमेव प्रकाशित हो जाती हैं। ऐसे घने अंधकार की किसी अन्य अभिव्यक्ति से तुलना करनी हो तो हमें कालिदास की प्रसिद्ध उक्ति में मिलती है: सूचि भेद्यैस्तमोभि :।

इस पृष्ठभूमि के सामने नायिका और सखी की अवतारणा है। चित्रकार ने नायिका को अपनी धुन में मस्त, तेजी से आगे बढ़ते दिखलाया है। ऐसी त्वरा को प्रकट करने के लिए तथा पानी से दामन बचाने के लिए उसने तनिक-सा अपना घाघरा उठा लिया है। इससे उसके स्त्री सौन्दर्य को चित्रकार तनिक-सा और प्रकाशित करता है।

नायिका से सखी कुछ पूछ रही है, संभवतः नायिका पीछे मुड़कर देखती है। चेहरे का इस प्रकार पूरी तरह पीछे घूम जाना चित्रकार की परंपरा के अन्तर्गत था, अतः उसका अनायास प्रयोग हुआ है, इतना ही नहीं, उससे एक विशेष भंगिमा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्पन्न हुई है। नारी भंगिमाएं भारतीय कला को अथ से इति तक संचारित करती रही हैं। फिर उलटकर देखने और आगे बढ़ते जाने की त्वरा, जो सामान्य रूप में परस्पर विरोधी गतियां हैं, इन दोनों का ही इस चित्र में बड़ा सुन्दर संयोग हुआ है।

रसादभिसर्तुं मुद्यतानां, वनितानां सखि वारिदो विवस्वान्।
रजनी दिवसोंऽधकारमर्चिर्विपिनं वेश्म विमार्ग एव मार्ग :॥

ज्येष्ठा-कनिष्ठा (डोगरा आर्ट गैलरी, जम्मू संग्रह)

भारतीय साहित्य और संगीत की ही भांति चित्रकला में भी नायक को कृष्ण के रूप में उपस्थित किया गया है। इस विशिष्ट चित्र में हम कृष्ण को एक ही शय्या पर दो नायिकाओं के साथ सोए हुए पाते हैं। फिर भी दोनों नायिकाओं के मनोभावों के अंतर को चित्रकार ने बड़े मार्मिक ढंग से व्यक्त किया है। कनिष्ठा के आते ही ज्येष्ठा उपेक्षित हो जाती है। शय्या के एक छोर पर वह चुपचाप सोई है। उसकी सीधी-सादी भंगिमा, हल्के ठंडे रंग की आसमानी चादर उसकी निरीह अवस्था प्रकट करती है। दूसरी ओर कनिष्ठा नायिका कृष्ण के स्पर्श से ही कितनी चंचल हो उठी है, यह उसकी वक्र भंगिमा से अभिव्यक्त हुआ है। उसकी चादर की उद्वेलित रेखाएं, इस भाव को और भी उत्तेजना प्रदान करती हैं।

इस प्रकार रसमंजरी के इस वर्ग के चित्रों में एक से बढ़कर एक अभिव्यक्तियां हैं। उनमें अनेक दृश्यों को दिखलाने का लोभ संवरण कर रहा हूं। परन्तु उनमें एक दृश्य अत्यन्त विशिष्ट है।

अज्ञात यौवना (डोगरा आर्ट गैलरी, जम्मू संग्रह)

यह वयःसन्धि का चित्रण है जब मनुष्य एक नई अवस्था में क्रमशः प्रवेश करता है और अपने-आपके विकास को क्रमशः पहचानता है। यह मानव मात्र के लिए जीवन का एक अनुभव है। कभी भी व्यक्ति सहसा इस परिवर्तन से जैसे चौंक उठता है, कभी इसके पूरे अर्थ को ठीक-ठीक पहचान नहीं पाता।

नायिका भेद काव्य में वयःसंधि एक परिचित अभिप्राय (मोटिफ) है। संस्कृत और ब्रजभाषा दोनों में ही इस पर एक से एक उक्तियां हैं। सत्रहवीं शती के कवि बिहारी ने कहा है :

गई न सिसुता की झलक
जोबन दमक्यो अंग

पर भानुदत्त ने रसमंजरी में तो इस विषय में कमाल ही कर दिया है। मार्के की बात है कि इसे स्नान के प्रसंग से जोड़ते हुए भी उन्होंने इतना कवित्वमय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रूप दिया है :

नीरात्तीरमुपागता श्रवणयोः सीम्नि स्फुरन्नेत्रयोः
श्रोत्रे लग्नमिदं किमुत्पलमिति ज्ञातुं करं न्यस्यति ।
शैवालांकुरशंकया शशिमुखी रोमावलीं प्रोंछति,
श्रान्तास्मीति मुहुः सखीमविदित श्रोणीभरा पृच्छति ।

इस प्रकार स्नान करके बाहर निकलते हुए नायिका को सहसा यह प्रतीत होता है कि मेरे शरीर में शैवाल (सेवार, यहां रोमावलि) लग गई है और कान पर भी किसीने उत्पल लगा दिया। यह उसी मानसिक चेतना का एक-एक प्रतीक है जो सहसा किसी किशोरी के मन में बिजली की तरह कौंध जाता है। फिर वह स्तब्ध रह जाती है। चित्रकार को काव्य की समूची भावनाओं को समेटना था फिर दृश्य को एक चित्रात्मक रूप देना था। यदि वह मूल श्लोक के छोटे-छोटे विवरणों में बंध जाता तो संभवतः इतना सफल न हो पाता। एक सुन्दर पद्म सरोवर के किनारे दृश्य उपस्थित कर उसने कई बिंबों को एक में पिरो दिया। ऊपर दी हुई पद्म और शैवाल आदि की उद्भावनाओं को दृश्य में अंतर्निहित कर दिया गया है। एक तन्वंगी किशोरी राजकुमारी चौकी पर खड़ी है। उसके गीले वस्त्र और भी लहराते हुए उतर ही रहे हैं; कुछ नीचे बिखरकर एक सुन्दर लहर-सी पैदा कर रहे हैं। पर सहसा अपने गंडस्थल पर हाथ धर यह किशोरी ठिठक-सी गई है। उसे सहसा अपनी इस नई स्थिति का भान हुआ है। चित्रकार ने इसी हठात् क्षण को चित्र में मार्मिकता से पकड़ लिया है। यही संस्कृत शिल्प शास्त्रों में विद्ध है। उसके मन की हलचलें, उसके बिखरे हुए दामन की चंचल रेखाओं में प्रकट होती हैं।

चित्रकार ने नायिका के सम्मुख एक सखी को भी दिखलाया है, वह मानो बढ़कर नायिका को जीवन का चषक अर्पित कर रही है, उसीसे नायिका को अछूते जीवन का स्वाद मिलेगा। पर दोनों की भंगिमाओं में ही उनके शारीरिक और मानसिक अवस्था भेद प्रकट हो जाते हैं। इतना ही नहीं, दोनों की पृष्ठभूमि वाले वृक्ष भी भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं, इन्हीं दोनों अवस्थाओं के द्योतक एक बहुत घनी और गहरे हरे रंग की पत्तियों वाला तो दूसरा छोंकर का पेड़(बाटलब्रश) है जो नायिका की लचीली देह यष्टि को प्रतिबिम्बित करता है। जीवन की इन्हीं अवस्थाओं को कमल भी प्रतिबिंबित करते हैं, कोई स्फुट, कोई अस्फुट, कोई पूर्ण विकसित।

अब हम एक अन्य चित्रमाला के कुछ उदाहरणों को लेंगे। खेद है, इस चित्रमाला के मूल ग्रंथ का पता नहीं है क्योंकि इन पर कोई लेख नहीं है, परंतु ये भी किसी नायिका भेद जैसे विषय पर आधारित हैं। इस चित्रमाला के थोड़े ही (प्रायः आठ) चित्र ज्ञात हुए हैं जिनमें कम से कम एक विशिष्ट उदाहरण अमेरिका के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बोस्टन म्यूज़ियम आफ़ फाइनल आर्ट्स, बोस्टन में है। शैली की दृष्टि से यहां उपर्युक्त रसमंजरी चित्रों की अपेक्षा थोड़ा विकास प्रकट होता है। रसमंजरी चित्रों में जैसी घनी आलंकारिकता और तनावपूर्ण चित्रण है उसमें यहां परिवर्तन दीखता है। इन चित्रों में पूर्ववर्ती चित्रों की भांति नाटकीयता तो नहीं है, पर समग्र दृश्य की एक छाप-सी दीख पड़ती है। न्यूयार्क वाले उक्त चित्र में वर्षा का वातावरण है। बादल छाए हैं, कठिन काली रात है, उसमें नायिका और सखी वृक्षावलि के बीच खड़ी है। काली पृष्ठभूमि में मानो वे रत्न की भांति दिप रही हैं। ऐसी आकृतियों का यद्यपि अतिरेक युक्त (एक्जरेटेड) पारंपरीण-रूप विधान में चित्रण है, पर वह उनकी कमनीयता को छिपा नहीं पाती। इस चित्र में बीचों-बीच बादलों को उतरकर धुएं-सा घुमड़ते हुए, बड़े विलक्षण रूप में दिखलाया गया है। स्वभावतः इस प्रकार के निसर्ग निरीक्षण को कोई यूरोपीय लैंडस्केप चित्र कार अथवा इंप्रेशनिस्ट कलाकार एक भिन्न ही प्रकार से अभिव्यक्त करता। बसोहली शैली के इस कवि हृदय चित्रकार ने अपनी इस नयी उद्भावना को अपनी पारंपरीण शैली के ही अनुरूप एक आलंकारिक स्वरूप दिया, और उस रूमानी दृश्य की अवतारणा भी की।

इसी चित्रमाला का एक चित्ररत्न एक चित्र विक्रेता के पास था। खेद है, वह अंतर्धान हो गया। इस प्रकार राष्ट्र ने एक 'कोहेनूर' ही खो दिया। इसमें प्रेमी-प्रेमिका एक वनस्थली में बैठे हैं। कुछ दूर पर दो-तीन युवतियां इस युगल को संगीत सुना रही हैं। इस चित्रकार ने सभी व्यक्तियों का शारीरिक आलेखन अथवा मुखाकृति अत्यन्त कोमल और नवयौवन युक्त चित्रित किया है। साथ-साथ उनके वर्ण के चुनाव में भी अद्भुत प्रयोग किया है। उन्नीसवीं शती के फ्रांसीसी चित्रकार रेनुआ के विषय में प्रसिद्ध है कि उसकी आकृतियों में त्वचा का एक प्रकाशमान पारदर्शी अंकन हुआ है। यहां भी नवयौवन की झलकती त्वचा का अद्भुत टटकापन है जो अन्यत्र खोजे न मिलेगा। इससे भी अद्भुत वनराजि है। इसचित्रमाला के सभी दृश्यों में घनी वृक्षावलि है जो भारत जैसे वृक्ष-श्यामल देश के अनुरूप पृष्ठभूमि है। बसोहली शैली में वृक्षों का अंकन वास्तविक जगत् और भाव जगत् की सीमा के किसी अज्ञात बिंदु पर होता है। यहां हम वृक्षों में उनके सभी गुण को पाते हैं, परन्तु उनके पत्ते आदि हमारे सामान्य अनुभवों से भिन्न हैं, कुछ मिलते-जुलते-से हैं। उनकी ये विलक्षणताएं पर्याप्त रूप में आकर्षक हैं। ये पेड़ पहले हमें चौंकते हैं, पर फिर उनमें एक आत्मीयतापूर्ण वातावरण मिलता है। उन्नीसवीं शती का प्रसिद्ध चित्रकार एनरी रूस्सो ने ऐसे ही विलक्षण ऊष्ण-कटिबंधीय (ट्रापिकल) वृक्षों की सृष्टि कर वहां की कला चेतना उद्वेलित की थी।

हमारे इस चित्रकार ने वन का अपूर्व वैभव दिखलाया है। परंपरागत रूपों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को अपनी कल्पना से और भी विस्तृत किया, सर्वोपरि इनकी ऊपरी डालियों को भिन्न-भिन्न प्रकार से मोड़कर, उनमें अद्भुत घुमाव पैदा कर, उन्हें एक से एक आकर्षक रूप प्रदान किए हैं। उनपर बगुले जैसे पक्षी भी बीच-बीच में बैठे हैं।

किरपाल पाल की रसमंजरी

बसोहली के राजा किरपाल पाल के लिए १६९४ ई० में रसमंजरी का चित्रण हुआ। इस चित्रमाला का तिथियुक्त एवं लेखयुक्त पृष्ठ भारत कला भवन संग्रह में है जिसके आधार पर अन्य चित्रों का स्थान और कालगत निर्णय करने में बहुत सुविधा हुई। इस समय तक बसोहली शैली की तनावपूर्ण चित्रण प्रणाली थोड़ी परिवर्तित हो चुकी थी। फिर भी परंपरा वही है। आलंकारिक आलेखन थोड़े हल्के हुए। रंगों में एक आकर्षक तीखापन था, उसके स्थान पर तनिक मुलायम रंगों का प्रयोग हुआ। फिर भी बसोहली शैली का व्यक्तित्व बहुत कुछ ज्यों का त्यों बना रहा।

यहां हम इस रसमंजरी चित्रमाला के दो चित्रों का उदाहरण लेते हैं :

वाग्विदग्धा नायिका (भारत कला भवन संग्रह, बनारस)

यहां हम एक बड़े भवन के बाहर वृत्तों के बीच नायक और नायिका को पाते हैं। दोनों की मनोदशा में बहुत बड़ा अंतर है। इस चित्रकार ने बड़े सूक्ष्म परन्तु धार्मिक ढंग से सब कुछ प्रकट किया है। नायिका बहुत कुछ भावहीन दृष्टि से खड़ी है। उधर नायक पथिक रूप में है, मानो चला आ रहा हो। उसके वस्त्र अस्त-व्यस्त हैं जो उसकी विकलता को सूचित करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो नायिका ने किसी गहरी बात से नायक को असंतुलित कर दिया है। इसीको उसकी भाव-भंगिमा द्वारा भी दिखलाया गया है। दूसरी ओर नायिका में तटस्थता जैसा भाव है। नायक के उद्वेग को चित्रकार ने पृष्ठभूमि तक विस्तारित किया है। प्रासाद के ऊपरी कक्ष में उसी प्रकार बड़े प्रबल रूप में घूमी हुई रेखाओं द्वारा वैसी ही चंचलता है। वहां एक परदा भी हवा के झोंके से उड़ता हुआ-सा है जैसे नायक के वस्त्र विन्यास में उद्वेग की रेखाएं हैं। परंतु वास्तु के निचले भाग में परंपरानुसार अलंकृत दीवारें हैं। ये इस चित्र में अलंकृत नायिका के बहुत कुछ समान हैं। इस वास्तु का दरवाजा भी आधा खुला हुआ है। बसोहली शैली के चित्रों में यह भी एक परंपरा थी, पर यहां नायिका की सीमित प्रेमाभिव्यक्ति अथवा हिचक जैसी मनोदशा को मानो वह प्रकाशित करता है। इस प्रकार अनेक ज्ञात परंपराओं को चित्रकार ने नये अर्थ प्रदान किए।

हम ऊपर देख चुके हैं कि पृष्ठभूमि के वृक्षों के अंकन में भी चित्रकार कुछ अभिप्रायों (मोटिफ़) को अर्थवत्ता प्रदान करता है। यहां दोनों वृक्ष उसके अच्छे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उदाहरण हैं। नायिका की मनोदशा के समान ही एक अत्यन्त गहरा हरा-काला-सा वृक्ष खड़ा है। उस वृक्ष का व्यक्तित्व भी कुछ अस्पष्ट है, वह निस्तब्ध जैसा जान पड़ता है। दूसरी ओर नायक के पीछे वाला वृक्ष पुष्पित है। साथ-साथ उसका आकार-प्रकार उसी रूप में उद्वेलित है जैसा नायक। उसकी डालियां घुमावदार हैं और भंगिमायुक्त। नायक के मनस्ताप को क्षितिज पर आता हुआ सूर्य प्रतिबिंबित करता है। नायक उस ताप को दूर करने के लिए पंखा झल रहा है।

परकीय वासकसज्जा नायिका (पंजाब संग्रहालय, पटियाला)

यहां कवि भानुदत्त ने दो पीढ़ियां दिखलाई हैं। अतः चित्रकार ने दृश्यों को दो कक्षों में दिखलाया है। परंपरागत रूप में ये दोनों कक्ष सामने की ओर से खुले बरामदे की भांति हैं—मानो किसी मंचीय दृश्य के समान दोनों स्थितियां दर्शक के सामने खुली हुई हैं। एक ओर नायिका की सास निश्चित सोई हुई है। यदि हम ध्यान से देखें तो हमें उसकी भंगिमा में स्पष्ट अंतर मिलेगा। उसकी भंगिमा से बुढ़ापा प्रकट होता है। बीच में केवल एक खंभे को देखकर चित्रकार ने दूसरे कक्ष को दृश्य से पृथक् कर दिया है। इसमें विकल नायिका है जो अपने प्रेमी की प्रतीक्षा में जग रही है। उसकी अंगभंगी में छटपटाहट-सी दीखती है। सबसे कमाल तो भारी पलकों वाली उसकी उनींदी आंखों में है।

श्वश्रूं स्वापयतिच्छलेन च तिरोधत्ते प्रदीपांकुरा—
न्धत्ते सौध कपोत-पोत निनदैः सांकेतिकं चेष्टितम्।
शश्वत्पार्श्वविर्तितांगलतिक लोलत्कपोलद्युति
क्वापि-क्वापि करांबुजं प्रियधिया तल्पान्तिके न्यस्यति॥

सुवावति सासुहि साँझहि आनिपलंचल दीपक ज्योति निवारे
लोल-कपोल दुहू ढिग डोलत बोलति ये धरि धीर सँभारे॥
नाहहि जानन को हरयें ही पिया पलिका परि पानि पसारे।
कोक कपोतिनि की किलकारिनि आपुहि देत जनाइति नारे॥

यहां हम स्वयं किरपाल पाल की शबीह (व्यक्ति चित्र, पोर्ट्रेट) का भी संक्षेप में उल्लेख करेंगे। इन्हीं किरपाल पाल (१६७८ से १६९३ ई०) के लिए रसमंजरी के उत्तर परवर्ती चित्र तैयार हुए थे। संयोगवश इनका एक चित्र भी मिल गया है। बसोहली शैली जैसी पारम्परिक विधा में आलंकारिकता और वास्तविकता का सुन्दर समन्वय हुआ है। इसे जानने के लिए हमें एक शबीह का अवलोकन करना अपेक्षित है। किरपाल पाल के पूर्व से बसोहली शैली में शबीहें मिलती हैं, इनमें से कुछ तो पूर्ववर्ती रसमंजरी के समकक्ष हैं। अतः किरपाल पाल की यह शबीह उसी धारा में है। कुछ विद्वान इसे समीपवर्ती मानकोट शैली का मानते हैं, पर वह बसोहली शैली की एक शाखा ही है, अतः एक प्रकार से उसमें अन्तर्भुक्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है। पर बसोहली चित्रकार ने किरपाल पाल की शारीरिक विशेषताओं को व्यक्त करते हुए, आंखों का अंकन अपनी परम्परागत शैली में ही किया है। हम इस चित्र को देखकर यह अनुभव करते हैं कि यह किसी व्यक्ति का चित्र है, उसके व्यक्तित्व समेत। उसकी वाह्य शारीरिक विशेषताओं को यह अभिव्यक्त करता, है, बल्कि उन्हें एक उत्तेजित और (परम्परागत) आलंकारिक रूप में प्रकट करता है।

इस प्रकार बसोहली शैली में एक से एक चित्र हैं। इस शैली का तीसरा (अथवा चौथा) काल प्रायः १७१०-१५ का है। यह पूर्व परिपाक का स्तर था। पर हम यहां उस उत्थान को छोड़कर इसके अंतिम वर्ग को लेते हैं। यह प्रायः १७२५-३० ई० वाला काल था। इसमें (१७३० ई० में) मानकू नामक चित्रकार ने गीतगोविन्द की एक विश्वविश्रुत चित्रावली तैयार की। एक दृष्टि से यह बसोहली शैली का अंतिम उत्कर्ष काल है। यह शैली इन बीच वाले वर्षों में काफी परिवर्तित हो गई थी। संक्षेप में सभी दृष्टियों से पूर्ववर्ती तनावपूर्ण आलेखन में कमी है। काल प्रवाह में परम्पराएं परिवर्तित होती गईं। पहाड़ी क्षेत्र के अन्य केन्द्रों में मुगल शैली की लहरें आ रही थीं, संभव है बसोहली शैली पर उनका प्रभाव पड़ रहा था। अतएव स्त्री-पुरुषों के चेहरों में थोड़ी स्वाभाविकता है और आंखें भी कटाक्षयुक्त हैं। परन्तु स्त्रियों का निचला भाग थोड़ा भारी है।

कालान्तर में बसोहली शैली में कुछ और विकास हुए। एक और शैली अधिक रूढ़ हुई। जैसे, पृष्ठभूमि में वृक्षों के सामान्य आकार एक-से दीखने लगे। इनके सिरे प्रायः एक ही आकार—तीन-चार सीढ़ीदार तिकोने आकार—के होने लगे। तने मोटे और गांठदार हो गए। सर्वोपरि वे एक निश्चित ऊंचाई तक और प्रायः एक पंक्ति में अंकित किए जाते।

बसोहली शैली की यह एक अनोखी स्थिति थी। हम कह चुके हैं पहाड़ी शैली के अन्य क्षेत्रों में प्रायः १७२५ ई० से मुगल प्रभावित स्वभावोन्मुख अंकन की प्रवृत्तियां आ रही थीं। यह बसोहली की मौलिक आलंकारिकता से बिल्कुल भिन्न थी। फिर भी एक विशिष्ट रूप में उसका प्रभाव भी इस काल में बसोहली शैली पर पड़ने लगा था। इसका सबसे प्रत्यक्ष प्रमाण रंगों के चुनाव में मिलता है। यद्यपि अभी भी चुहचुहाते रंगों का प्रयोग है, परन्तु कुछ सीमा तक अब उनका तीखापन कम हो गया है। थोड़े-बहुत निश्चित रंगों का प्रयोग मिलता है, उनमें एक नये कवित्वपूर्ण रंग बोध का प्रमाण मिलता है।

अन्य क्षेत्रों में भी परिवर्तन मिलता है। पूर्ववर्ती बसोहली शैली परम्परागत और आलंकारिता प्रधान थी। फिर भी उसमें छाया-प्रकाश (लाइट-शेड) का एक पारस्परिक और घनीभूत (इंटेंसिफाइड) प्रयोग था। स्वाभाविकतापूर्ण अंकन में इस प्रवृत्ति में भी अन्तर आया, छाया-प्रकाश हल्का हुआ। मानव आकृतियां-विशेषरूप से स्त्री आकृतियों में हम परिवर्तन पाते हैं। इनमें आकृतियों का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निचला भाग अनुपात से कुछ अधिक लम्बा और भारी है। इसके साथ उनमें एक प्रकार की अकड़-जकड़ है, मुद्राओं में एक झटका-सा लगता है। अब पूर्ववर्ती रसमंजरी अंकनों वाली भंगिमाएं नहीं हैं।

इन अनेक विशेषताओं के साथ बसोहली शैली में १७३० में गीत गोविन्द की एक विशिष्ट चित्रमाला बनी—चित्रकार था मानकू। सौभाग्यवश इसके अनेक चित्र बच रहे हैं: मुख्यतः चंडीगढ़ संग्रहालय और राष्ट्रीय संग्रहालय में। यहां हम उदाहरण के लिए दो चित्रों का विवरण दे रहे हैं:

अभिसारिका राधा—यहां भी अंकन बहुत कुछ इस प्रकार हुआ है, मानो हम किसी रंगमंच पर यह दृश्य देख रहे हैं। कृष्ण वृक्षों के झुरमुट में, सहेट-स्थल में छिपे हैं, पर दर्शक के लिए प्रत्यक्ष हैं। उनकी उत्कंठा देखिए। राधा का प्रथम अभिसार है। अब वे उस कुंज में प्रवेश करने ही वाली हैं, जिसमें बैठे कृष्ण उनके प्रतीक्षमाण हैं। उसके पूर्व उनका ऊहापोह चित्रकार ने बड़े सूक्ष्म संकेतों से प्रकट किया है। कृष्ण के आकर्षण में उनके पैर हठात् आगे बढ़ते जा रहे हैं। परन्तु वे झिझक-सी रही हैं। अंतिम पग आगे बढ़ाते, वे पीछे मुड़कर सखी की ओर देख रही हैं।

सलज्ज राधा: गीतगोविन्द की समूची भाव-भूमि राधाकृष्ण के प्रेम-व्यापार पर आधारित है। यहां सलज्ज राधा को कृष्ण से मिलने के लिए सखी प्रेरित कर रही है, जयदेव ने इस श्लोक द्वारा अंकित किया है:

अभिगतमखिलसखीभिरिदं तव वपुरित रतिरणसज्जम्
चल वलयक्वणितैरवबोधय हरिमपि निजगतिशीलम्।

पूर्ववर्ती चित्र की भांति यहां भी कृष्ण कुंज में छिपे हैं। राधा से सखी प्रार्थना कर रही है कि लज्जा छोड़ कृष्ण के पास चलो। पहले वाले उदाहरण में अनुभवहीन राधा का ऊहापोह है। यहां दूसरी मनःस्थिति है। यहां राधा की **बैरनि लाज भई री मों कों मैं गंवार मुख ढाक्यौ** वाली भावना है। राधा कृष्ण से मिलन के लिए उत्सुक हैं। सखी उन्हें प्रेरित भी कर रही है। पर बीच में लज्जा की बाधा है। चित्रकार ने कवि के एक भाव को इस चित्र में विस्तारित किया है—**अभिसर सरसमलज्जम्**, अथवा लज्जा छोड़कर अभिसार करो। चित्र का मूल उद्देश्य राधा की उसी लज्जा की चित्रमय अभिव्यक्ति है। फिर कवि कहता है: **स्मरशरसुभगनखेन करेण सखिमवलंब्यसलीलम्**। इस स्थिति को चित्र में चित्रकार ने एक अभिनयात्मक परिस्थिति द्वारा उपस्थित किया है। चित्रकार ने दूती या सखा के प्रयासों को इस रूप में दिखाया है कि वह नायिका या राधा को बलात् खींच रही है। उससे इच्छा अथवा अनिच्छा से राधा का एक पैर थोड़ा ऊपर उठ गया है। पर नायिका अभी भी अर्न्तद्वन्द्व की अवस्था में है। इसी से उसने अपना मुखबिंब भी अवगुंठन में हलका-सा छिपा लिया है। इन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सभी अनुभवों के द्वारा चित्र में अपेक्षित नाट्यधर्मी आकर्षण आ गए हैं। पर चित्रकार ने कमाल तो सूक्ष्म संकेतों से किया है—इस ऊहापोह में उसका तनिक-सा उठा हुआ पैर और सर्वोपरि शिथिल हाथ !

यह उदाहरण प्रस्तुत चित्रमाला की एक विशिष्ट उपलब्धि है। एक प्रकार से यह चित्रमाला बसोहली शैली की निश्चित परम्परा में उत्कृष्ट अंतिम कृति है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, इसके बाद बसोहली शैली पर अन्य प्रभाव आने लगे, फलस्वरूप इसका व्यक्तित्व बदल गया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

□ प्रो० ई० पी० चेलीशेव

सोवियत संघ में संस्कृत साहित्य

हमारे देश में प्राचीन भारतीय साहित्य के अनुसंधान, अनुवाद और प्रकाशन की जड़ें बहुत गहरी हैं। हमारे प्राच्य-विद्या विशेषज्ञों और साहित्यकारों के प्रयत्नों के फलस्वरूप १८वीं शताब्दी के अंत में ही रूसी पाठकों को संस्कृत साहित्य की कुछ कृतियों से परिचय प्राप्त करने का अवसर मिल गया था। सन् १७५६ में ही रूस में हितोपदेश का एक दूर का रूपांतर 'फेबुल्स आफ पिल्वाया' नाम से फ्रेंच से अनूदित किया जा चुका था। सन् १७८८ में ए० ए० पैत्रोव ने 'भगवद्गीता' का अनुवाद प्रकाशित किया था और सन् १७९२ में लेखक और इतिहासकार ए० यू० करमजिन ने 'शकुन्तला' के चार सर्ग जी० फोस्टर द्वारा किये गये जर्मन अनुवाद से अनूदित करके प्रकाशित किए थे। उत्कृष्ट रूसी कवि वी० ए० जूकोव्स्की द्वारा 'नल और दमयंती' का जो काव्यानुवाद १८४४ में किया गया था उसकी कलात्मक महत्ता आज तक कम नहीं हुई है। उन दिनों प्रसिद्ध रूसी आलोचक वी० जी० बैलिन्स्की ने लिखा था कि इसका श्रेय वी० ए० जूकोव्स्की को है कि···"रूसी साहित्य को बहुत कुछ उपलब्ध हुआ।"

रूसी लोगों के समक्ष एक नये अपरिचित संसार के द्वार खुल गए, एक ऐसा संसार जिसके जादुई आवरण के भीतर से वे वास्तविक जीवन में प्रवेश पा सकते थे। भारतीय आत्मा की महानता को वे समझ सके और उर्वरा भारत भूमि से निःसृत सौंदर्य का रसास्वादन कर सके। एन० बर्ग ने, जो पहले-पहल महाभारत का रूसी भाषा में अनुवाद करने वालों में से एक था, उस महाकाव्य में अंतर्निहित

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जीवन के सत्य का उल्लेख किया है। सन् १८५१ में उसने 'मोस्क्विटयनिन' पत्रिका में सुंद और उपसुंद की कहानी का अनुवाद प्रकाशित किया। उसने लिखा, "वह सब कुछ जो व्यवस्था और सामाजिक जीवन को पोषित करता है, जो वासनाओं को प्रदीप्त करता है और मानव को उनसे ऊपर उठाता है यदि उसका समावेश 'महाभारत' में है तो जीवन में भी उसका अस्तित्व होगा। पर यदि 'महाभारत' में उसे स्थान प्राप्त नहीं हो सका तो वास्तविक जीवन में भी वह तुम्हें नहीं मिलेगा।"

यह उल्लेखनीय है कि इसमें संस्कृत साहित्य-संबंधी विचारधारा विदेशों की तत्संबंधी विचारधारा से काफी समीप से प्रभावित होकर विकसित हुई और उसी ने इसकी उपलब्धियों को बहुत सीमा तक निर्दिष्ट भी किया। इसीसे, उदाहरणार्थ, एफ० आदेलुंग (१७६८-१८४३) की रचना 'द एक्सपीरियेंस आफ संस्कृत लिटरेचर' (१८३०) को, जो यूरोपीय भारत विद्या-विशेषज्ञों की रचनाओं का एक ग्रंथ-सूचीपरक सर्वेक्षण है, संस्कृत साहित्य को सुव्यवस्थित करने और अध्ययन की दिशा में एक उपयोगी योगदान माना जाता है। रूसी विद्वानों को यूरोप की संस्कृत साहित्य-संबंधी विचारधारा के विकास की पूरी जानकारी थी और उन्होंने अपने देश में उसकी उपलब्धियों को लोकप्रिय बनाने का पूरा प्रयास किया तथा विदेशी विद्वानों में सर्जनात्मक संपर्क बनाए रखा।

इस प्रकार १८वीं शती के अंत में तथा १९वीं शती के प्रारंभ में रूस में प्राचीन भारतीय संस्कृति के अध्ययन और लोक-प्रतिपादन की आधारशिला रखी जा चुकी थी। इसीसे प्रेरणा पाकर हमारे देश में भारत विद्या विषयक विचारधारा का निर्माण हुआ। उसके अग्रदूत प्रोफेसर पी० वाई० पैत्रोव (१८१४-१८७५) और के० ए० कोस्सोविच (१८१५-१८८३) थे। पैत्रोव की कृतियों—'आन द स्पिरिचुअल लिटरेचर आफ हिंदूज' (१८४३), 'आन द कैरेक्टरिस्टिक्स एंड कंटैंट्स आफ संस्कृत' (१८४२), महाकाव्य के अनुवाद, के० ए० कोस्सोविच द्वारा किया गया शूद्रक के 'मृच्छकटिक नाटक' का अनुवाद (१८४९), संस्कृत महाकाव्य पर दिये गए उसके भाषण (१८६०), प्रथम 'संस्कृत-रशियन डिक्शनरी' (१८५४) और अन्य अनेक कृतियों ने रूस में संस्कृत साहित्य-संबंधी विचारधारा को नई महत्त्वपूर्ण दिशाएं दीं। भारतीय साहित्य-सृजन प्रक्रिया का अध्ययन करते समय पी० वाई० पैत्रोव ने प्राचीन भारतीय साहित्य का संबंध समसामयिक भारतीय भाषाओं के साहित्य से स्थापित करने का प्रयत्न भी किया।

इस परंपरा को जारी रखते हुए प्रसिद्ध रूसी विद्वान जे० पी० मिनयेव (१८४०-१८९०) ने प्राचीन भारतीय साहित्य पर एक निबंध प्रकाशित किया। आई० पी० मिनयेव द्वारा भारत और श्रीलंका के बौद्ध मत, जातकों, पालि साहित्य तथा भारतीय संस्कति के संबंध में लिखी गई रचनाओं का महत्त्व आज भी कम नहीं हुआ है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हमारे देश में आई० पी० मिनयेव के शिष्यों—एस० एफ० ओल्डेनवर्ग (१८६३-१९३४) एवं पी० आई० खेरवत्स्की (१८६६-१९४२) द्वारा संस्कृत विद्या के प्रति दिया गया योगदान उल्लेखनीय है। ओल्डेनवर्ग प्रमुखतः बौद्ध संस्कृति और भारतीय लोकवार्ता के संबंध में किए गए अनुसंधान के कारण लोकप्रिय हुए और खेरवत्स्की ने अपना प्रमुख ध्यान बौद्ध-दर्शन और संस्कृत काव्य पर केन्द्रित किया। आज भी बुद्धिस्ट लाजिक्स, 'इंडियन पोइटिक थ्योरी' और दंडी की रचना का अनुवाद और टीका 'द एड्वेंचर्स आफ द प्रिंसेज' में लोगों की रुचि है। इसी तरह 'विब्लिओतेका बुद्दिका' है जिसकी रचना एस० एफ० ओल्डेनवर्ग के सहयोग से प्रारंभ की गई थी। हमारे देश में जिन विद्वानों ने संस्कृत विद्या के विकास में योगदान दिया उनमें 'एसेज़ आन आर्यन माइथोलोजी इन कनेक्शन विद ऐंश्येंट कल्चर' के लेखक वी० एफ० मिलर (१८४८-१९१३), प्राचीन वैदिक साहित्य के विद्यार्थी डी०एन० ओवयनिको कुलिकोव्स्की (१८५३-१९२०), भारतीय नाट्य-शास्त्र पर एक पुस्तकमाला के लेखक एम० वाई० कलिनोविच (१८८८-१९४९) तथा कालिदास, दंडी, भवभूति और अन्य साहित्यकारों की कृतियों का अनुसंधान और अनुवाद करने वाले पी० सी० रित्तर (१८७२-१९३२) के नामों का उल्लेख किया जा सकता है। वृहद् संस्कृत-जर्मन कोश के पीटर्सवर्ग में प्रकाशित हो जाने से, जिसका संकलन ओ० बेर्तलिंग और आर० रात ने किया था, क्रांति-पूर्व रूस में और सोवियत संघ में भी संस्कृत विद्या के सफलतापूर्वक प्रचलन को काफी वल मिला।

१९वीं शती के अनेक उत्कृष्ट रूसी साहित्यकारों ने जैसे आर० रदिश्चेव, ए० पुश्किन, ए० गेत्सेंन, वी० वेलिन्स्की, एन० चेर्निचेव्स्की, एन० दोब्रोत्यूबोव आदि ने भारतीय प्राचीन परंपरा में काफी रुचि प्रदर्शित की है। रूस में प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक परंपरा के अध्ययन और उसे लोकप्रिय बनाने में एल० तोल्स्तोय की जो भूमिका थी वह तो महान थी ही। इसने रूसी जनता में भारत के प्रति रुचि को बढ़ावा दिया और उनमें भारत के लोगों द्वारा राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए किए जाने वाले संघर्ष के प्रति सहानुभूति उत्पन्न की।

जिन रूसी विद्वानों और साहित्यकारों ने भारतीय संस्कृति और कला की प्रमुख कृतियों को देखा, उनमें उन्हें अपने देश के लोगों के लिए सौंदर्यबोध की विपुल मान्यताएं दिखलाई पड़ीं। उन्होंने अपने इस कार्य को विश्व संस्कृति की शृंखला में जो कड़ी छूटी हुई थी, उसकी प्रतिपूर्ति के रूप में लिया—एक ऐसे कार्य के रूप में, जिसका उद्देश्य रूसी जनता में भारत के लोगों के प्रति आदर और प्रेम की भावना का विकास करना था।

यह एक विशेष बात है कि रूसी संस्कृत विद्या विशेषज्ञों के वर्ग ने अपने को केवल भारतीय संस्कृति के प्राचीन तथा अर्वाचीन मूल्यों के विश्लेषण तक ही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सीमित नहीं रखा, बल्कि उन्होंने समसामयिक जीवन से भी संबंध स्थापित किया। आई० पी० मिनयेव ने एक बार लिखा था, "प्राचीन और नवीन भारत का गहन अध्ययन नितांत आवश्यक है।"

रूस में अक्तूबर की महान समाजवादी क्रांति की विजय के साथ-साथ विज्ञान और संस्कृति के सफल विकास के लिए नयी परिस्थितियां और अवसर उत्पन्न हुए।

यदि क्रांति के पहले विज्ञान और सांस्कृतिक मान्यताओं की उपलब्धियां समाज के थोड़े-से सुविधा-संपन्न वर्गों के लिए ही प्राप्त थीं तो अब उन्हें संपूर्ण राष्ट्र के लाभ के लिए प्रस्तुत कर दिया गया था। ऐसे वातावरण में जब विशाल जन-समुदायों की ज्ञान-पिपासा जागृत हो, तब विद्वानों और सांस्कृतिक व्यक्तियों का दायित्व बहुत बढ़ जाता है। वे करोड़ों लोगों के शिक्षक बन जाते हैं। क्रांति के पहले विद्वानों के अध्ययनों में संचित जो सूचना एक सीमित मंडल की संपत्ति थी, क्रांति की विजय के पश्चात् ज्ञान के कपाट सामान्य जन-समुदाय के लिए खोल दिए गए।

भारत के प्रति सोवियत लोगों की रुचि और प्रेम बढ़ते ही गए। विशेष रूप से औपनिवेशक पराधीनता से मुक्ति पाने के पश्चात् जैसे-जैसे स्वतंत्र, प्रजातंत्र-वादी भारत एक महान शक्ति बनता जा रहा है और मानव मात्र पर उसका प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है, वैसे-वैसे भारतीयों के जीवन के प्रति रुचि और भी बढ़ती जा रही है। संयुक्त सोवियत समाजवादी गणराज्य की विज्ञान अकादमी के अनेक संस्थानों में और हमारे देश के विश्वविद्यालयों में भी भारत-संबंधी अध्ययन किए जा रहे हैं।

भारतीय कथा-साहित्य के अनुवाद और प्रकाशन के क्षेत्र में कार्य बहुत बड़े पैमाने पर किया जा रहा है। सोवियत शासन की अवधि में हमारे देश में १०५ से अधिक भारतीय लेखकों की लगभग ८०० पुस्तकें सोवियत संघ के विविध राष्ट्रों की ३४ भाषाओं में प्रकाशित हुई हैं, जिनकी ३२५ लाख से अधिक प्रतियां छापी गईं। इनमें अधिकांश भारत के प्राचीन गौरव-ग्रंथ सम्मिलित हैं।

संस्कृत साहित्य के अनुवाद और प्रकाशन का कार्य दो तरह से किया जा रहा है। उसका एक भाग, जो सभी तरह के आम पाठकों के लिए है, बड़ी संख्या में छापा जाता है। प्राचीन साहित्य का दूसरा भाग इतिहासकारों, साहित्यिक विद्वानों, मानव जाति विशेषज्ञों, भाषा-वैज्ञानिकों आदि विशेषज्ञों के लिए है।

शास्त्रीय प्रकाशनों में अशहाबाद में बी० एल० स्मिर्नोव द्वारा और लेनिनग्राद में वी० आई० कल्यनौव (उसके अनुवाद का ५वां खंड १९७५ में प्रकाशित हुआ था) द्वारा किये गये 'महाभारत' के अनुवादों का उल्लेख किया जा सकता है। तब फिर आते हैं शूद्रक के 'मृच्छकटिक' का वी० एस० वौरोव्योव देस्यतोव्स्की द्वारा किया गया अनुवाद और 'धम्मपद' का वी० एन० तोपोरोव द्वारा किया गया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवाद, जिसकी तिथि ५० के दशक में है।

ऐसा भी होता है कि उन्हीं गौरव-ग्रन्थों के दोनों तरह के अनुवाद प्रकाशित हों—शास्त्रीय अनुवाद भी और कलात्मक अनुवाद भी। इस प्रकार, उदाहरणार्थ, हमारे प्रकाशन गृह 'साइन्स' (नौका) द्वारा १९५८ में लिटरेरी मोन्यूमेंट्स माला में प्रकाशित 'पंचतंत्र' के शास्त्रीय अनुवाद के साथ-साथ ३०,००० प्रतियों का एक और संस्करण है जो 'वैलेस-लैत्रेस' (हुदोज़ेस्त्वेनय लितरेतुरा) के राजकीय प्रकाशन गृह द्वारा १९६२ में प्रकाशित किया गया था। इसी प्रकाशन-गृह ने कालिदास की चुनी हुई रचनाओं के हमारे क्रांतिपूर्व कवि वल्ल्यांत और संस्कृत-साहित्य विशेषज्ञ पी० रित्तर द्वारा किए गए अनुवादों को अनेक बार प्रकाशित किया है; तब आते हैं 'वैतालपचीसी' और 'सिंहासनबत्तीसी' के आई० डी० सैटेव्यकोव द्वारा किये गए अनुवाद और संस्कृत साहित्य की अन्य अनेक रचनाएं। इन सभीने सोवियत पाठकों के बीच बड़ी लोकप्रियता प्राप्त की। प्रकाशन गृह 'साइन्स' (नौका) का यह कार्य ६० के दशक में और ७० के दशक में भी चलता रहा। यहां अनेक उपनिषदों और ऋग्वेद की चुनी हुई ऋचाओं के (१९७२) और अथर्ववेद के टी० वाई० येलिज़रेन्कोव द्वारा किये गए अनुवाद, आनंदवर्धन रचित प्राचीन भारत के काव्य-शास्त्र के गौरवग्रन्थ 'ध्वन्यालोक' का जे० एम० अलिह-नोव द्वारा किया गया अनुवाद, कश्मीर के कवि सोमदेव के 'कथासरित्सागर' का आई० डी० सेरेब्यकोव द्वारा किया गया अनुवाद (१९७६) और अनगिनत अन्य रचनाओं का उल्लेख करना भी उचित होगा।

इस देश में संस्कृत विद्या के विकास की बात करते समय इस तथ्य को भुलाया नहीं जा सकता कि वह हमारी भारत विद्या के गंभीर अध्ययन की एक शाखा बन चुकी है। इस शाखा के अंतर्गत अनेक नयी प्रगतिशील प्रवृत्तियों की ओर ध्यान देना भी आवश्यक है, जिनका, कारण हमारे ख्याल से, यह है कि हमारे विद्वान ग्रंथों के केवल पाठगत अथवा भाषाशास्त्रीय विश्लेषण तक ही सीमित नहीं रहते, बल्कि उससे आगे भी जाते हैं। भाषाशास्त्रीय विवरणात्मक पद्धति से परि-णत होकर वे विशुद्ध साहित्यिक अध्ययन और सैद्धांतिक सामान्यीकरण की ओर उन्मुख हो जाते हैं। यह सोवियत प्राच्यविद्या के अध्ययन में आधारभूत परिवर्तनों के परिणामस्वरूप हुआ है। हमारा प्राच्यविद्या अध्ययन जिस दिशा का अनुसरण कर रहा है वह है विशिष्टीकरण की, इस अध्ययन की विभिन्न वैज्ञानिक शाखाओं को अलग-अलग करने की और इस प्रकार प्रत्येक को अनुसंधान की एक स्वतंत्र शाखा बनाकर सामान्य साहित्यिक अध्ययन और विश्व साहित्य के अध्ययन का एक अंग बनाने की। प्राच्यविद्या की अध्ययन प्रणाली में इस प्रकार के परिवर्तन करते-करते ही आए, यानी विश्व इतिहास को दस खंडों में तैयार करने के निर्णय के परिणामस्वरूप यह कार्य इस देश में लगभग १५ वर्षों से किया जा रहा है और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसमें प्राच्य विद्या विशेषज्ञ सक्रिय भाग ले रहे हैं। (लेखक स्वयं इस जटिल कार्य के पर्यवक्षकों में से एक है) हमारे प्राच्यविद्या विशेषज्ञ अपनी समस्याओं के संबंध में, विशिष्ट साहित्यिक रचनाओं के संबंध में, तटस्थ होकर विचार नहीं करते, बल्कि उन्हें संपूर्ण विश्व-साहित्य का एक अंग मानकर उन पर विचार करते हैं, उनकी सामान्य नियमितताओं को दर्शाते हैं और प्राच्य तथा पाश्चात्य साहित्य के बीच ऐतिहासिक तथा वर्गगत संबंधों का निर्देश करते हैं। पी० ए० ग्रिंत्जर सोवियत संघ के एक अत्यंत सक्रिय और अग्रगण्य प्राच्य एवं संस्कृत विद्या विशेशज्ञ माने जाते रहे हैं। सन् १९७४ में उन्होंने 'ओल्ड इंडियन ईपोज जैनेसिस एंड टाइपोलोजी' नाम से एक प्रबंध प्रकाशित किया। संस्कृत साहित्य के प्रति किस प्रकार का दृष्टिकोण होना चाहिए—इसका यह पुस्तक एक उदाहरण प्रस्तुत करती है। इस पुस्तक में 'महाभारत' और 'रामायण' का विश्लेषण एक ऐसी पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में किया गया है जिसमें उनकी विस्तृत वर्गगत तुलना प्राचीन और मध्य युग के अन्य गौरव ग्रंथों से और लोक-साहित्य की महाकाव्य परंपरा से की गयी है।

यह उल्लेखनीय है कि ऐसी रचनाओं के साथ-साथ, जिनमें इस प्रकार का सामान्यीकरण किया जाता है, हमारे संस्कृत विद्या विशेषज्ञ, अलग-अलग कृतियों पर भी कार्य करते रहते हैं और इनका अध्ययन करते समय वे पाठगत और भाषा-शास्त्रीय विश्लेषण के साथ सैद्धांतिक और सौंदर्यपरक विश्लेषण भी मिला लेते हैं। इस संबंध में हमारे लेनिनग्राद के संस्कृत विद्या विशेषज्ञ ई० एन० त्योम्किन के प्रबंध 'द वर्ल्ड आउटलुक आफ भामह एंड डेटिंग आफ हिज ट्रीटिस 'काव्या-लंकार' '(१९७५) का उल्लेख किया जा सकता है। यह प्रबंध प्राचीन और मध्य-युगीन भारत के उस विलक्षण सैद्धांतिक विचारधारा के विश्लेषण के प्रति समर्पित है, जिसका योगदान उसने विश्व-साहित्य के इतिहास को दिया है। कुछ सीमा तक प्रबंध में संस्कृत-काव्य के उसी अध्ययन को आगे विकसित किया गया है जिसका प्रारम्भ लेनिनग्राद के एफ० आई० श्चेरबत्स्कोव और उसके अनुयायी बी० ए० लरिन (१८९३-१९६४) द्वारा किया गया। इस प्रबंध में इस अध्ययन को एक नये स्तर तक ऊंचा उठाया गया।

हमारे अनुसंधानकर्त्ता, संस्कृत साहित्य को एक ऐसी साहित्यिक परंपरा के रूप में देखने का प्रयास करते हैं जो जीवंत और विकासशील है और जिसका आज की संस्कृति पर भी प्रभाव है। उसका यह प्रभाव न केवल लोगों की चेतना पर पड़ता है बल्कि संस्कृति के सभी क्षेत्रों पर, संस्कृति के क्षेत्र में औपनिवेशिकता को समाप्त करने की प्रक्रिया पर भी पड़ता है। इस समस्या की वास्तविकता विशुद्ध 'अकादमिक' रुचियों से आगे बढ़कर समसामयिक भारत के आध्यात्मिक विकास का प्रवेश सिद्धांत और राजनीति के क्षेत्र में कराती है। सांस्कृतिक परंपरा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के प्रति अपनी प्रवृत्ति में ही सभी सामाजिक शक्तियां और उनके नेता अपने वैचारिक दृष्टिकोण प्रदर्शित करते हैं। भारतीय परंपरा में ऐसा क्या है जो अपने समय से परे जीवित रह गया है और कौन-कौन-सी बात आधुनिक भारत के सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विकास में बाधक हो रही है? कौन-से तत्त्व आज भी अपनी जीवंतता और सृजनात्मकता बनाये हुए हैं? यह प्रश्न केवल विज्ञान का नहीं है, इसकी एक व्यावहारिक महत्ता है। आज हम अपने देश में इसी प्रश्न पर विचार-विमर्श कर रहे हैं, जो पहले-पहल ए० डी० लित्मेन और ई० पी० चेलीशेव ने 'द पीपुल्स आफ एशिया एंड अफ्रीका' (एन० ६, १९७६) नामक पत्रिका में प्रकाशित अपने लेख 'द प्राब्लेम्स आफ कल्चर एंड क्लासिकल हेरिटेज इन डेवेलपिंग कंट्रीज एंड प्रजेंट डे आइडियालाजिकल फाइट' में उठाया था।

हमारे विद्वान संस्कृत साहित्य में निहित सामाजिक तत्त्व को खोज निकालने और उसे प्रदर्शित करने का प्रयास करते हैं, वे उसका संबंध युग के साथ, लोगों के इतिहास के साथ—उन लोगों के साथ जिन्होंने उसका सृजन किया है, जोड़ने का प्रयत्न करते हैं और भारतीय संस्कृति के सामान्य विकास में उसका क्या स्थान है, इसे दर्शाते हैं। यहां हम इस संदर्भ में अपने इतिहासकारों की कृतियों का उल्लेख करते हैं, जिनमें जी० एम० बौंगार्ड, लेविन और आई० एफ० इल्यिन (१९६२) द्वारा लिखित 'ऐंश्येंट इंडिया', आई० डी० सैरेब्यकोव (१९६३) की लिटरेचर आफ ऐंश्येंट इंडिया' और उसी लेखक द्वारा लिखित 'रिव्यू आन ओल्ड इंडियन लिटरेचर' (१९७१) को सम्मिलित किया जा सकता है। इन रचनाओं को संस्कृत साहित्य के सामान्य इतिहास-लेखन के प्रति किंचित् भेंटस्वरूप समझा जा सकता है।

हमारे प्राच्य विद्या विशेषज्ञ संस्कृत साहित्य और पड़ौसी देशों की संस्कृतियों के बीच पारस्परिक संबंधों और प्रभावों की बात बार-बार उठाते हैं। दूसरे एशियाई देशों की संस्कृतियों के ऊपर जिन विविध रूपों में उसका प्रभाव पड़ा है उनका अनुसरण करते हुए हम इस तथ्य को सामने लाना चाहते हैं कि यह प्रभाव केवल साहित्य और कलाओं तक ही सीमित नहीं है बल्कि उसका असर संस्कृति और विचारधारा के अन्य अनेक पक्षों पर भी लक्षित होता है। इस प्रकार के अनुसंधानकर्त्ता जैसे पी० ए० ग्रिंत्जर, ओसिपोव, बी० बी० परनिकेल, वाई०एम० परफियोनोविच आदि इस समस्या पर कार्य करते हैं कि संस्कृत साहित्य ने किस प्रकार मंगोलिया, तिब्बत और दक्षिण-पूर्व एशिया के अन्य देशों की संस्कृतियों को प्रभावित किया। यहां मैं मंगोली विद्वान—दम्दिन सुरेन और पी०ए० ग्रित्जर की सम्मिलित रचना 'रामायण इन मंगोलिया एंड सेंट्रल एशिया' का उल्लेख करना चाहूंगा। यह रचना अनेक अग्रणी संस्कृतविद्या विशेषज्ञों द्वारा खूब समादृत हुई।

वाई० एन० रेचिव, जो इस क्षेत्र में अनुसंधान कार्य प्रारंभ कराने वालों में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अग्रगण्य रहे हैं और जिन्होंने सोवियत संघ में संस्कृत विद्या के विकास के लिए बहुत कुछ किया, हमारी उत्कृष्ट प्रशंसा के पात्र हैं। उनके अनुयायी और विद्यार्थी अब इस कार्य को आगे बढ़ा रहे हैं और जो कार्य वे अधूरा छोड़ गए थे उसे पूरा करने का प्रयत्न कर रहे हैं। यहां इस संदर्भ में अपने नवयुवक संस्कृत विद्या विशेषज्ञों के नामों का उल्लेख करना चाहते हैं जो मास्को और लेनिनग्राद दोनों जगहों पर कार्य कर रहे हैं वे हैं, वी० वी० वस्यल्कोव—प्राचीन युगों के संबंध में एल० एल० नेवेलेवा, पौराणिक कथाओं और युगों के संबंध में, टी० जी० ओरंस्कय वैदिक साहित्य के संबंध में, वी० एस० समेंत्सोव भगवद्गीता के संबंध में।

और एक तथ्य जो हमें इस देश के संस्कृत साहित्य के प्रति अत्यधिक रुचि दर्शाता है, वह है 'राइटर्स एंड स्कालर्स आफ द ईस्ट' नामक पुस्तकमाला, जिसका प्रारंभ वी० जी० एर्मन की कालिदास पर लिखित पुस्तक (१९७१) से हुआ। हम इस माला में १० वर्षों में लगभग ५० पुस्तकें प्रकाशित करने जा रहे हैं।

संस्कृत साहित्य में विशेषज्ञों के प्रशिक्षण के लिए पाठ्य-पुस्तकों और अन्य उपकरणों का प्रकाशन भी एक महत्वपूर्ण कदम है। यहां हम मास्को राजकीय विश्वविद्यालय के प्राच्य विद्या विशेषज्ञों का उल्लेख कर सकते हैं। उन्होंने 'लिट-रेचर आफ ऐंश्येंट ईस्ट' नामक पाठ्य-पुस्तक को १९६२ में प्रकाशित किया। यह कार्य स्व० अकादमीशियन एन० आई० कोन्राड के निर्देशन में संपन्न हुआ। पूरक सामग्री के साथ इसका १९७१ में पुनः प्रकाशन हुआ।

दूसरे देशों के, और सबसे ऊपर भारत के संस्कृत विद्या विशेषज्ञों के सहयोग के परिप्रेक्ष्य में ही हमारे देश के विद्वान अपने कार्य और उसकी उपलब्धियों को आंकते हैं। हम आशा करते हैं कि यह सहयोग उत्तरोत्तर बढ़ेगा, विकसित होगा और हमारे सम्मिलित उद्देश्य की पूर्ति के लिए नये फल लाएगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

□ प्रो० सोमनाथ वखलू

अमर महल का ऐतिहासिक संग्रहालय

भारतीय केवल अपनी वीरता के लिए ही नहीं अपितु कला, साहित्य व दर्शन के क्षेत्र में भी प्रसिद्ध हैं। डा० कर्णसिंह अपनी धरती के सच्चे सपूत होने के नाते साहित्यिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक परंपरा से पूरित हैं। एक महत्त्वपूर्ण लेखक, एक महान विद्वान, कवि, संगीतकार और एक कलापारखी हैं। और बहुत-सी धार्मिक व विद्या-संबंधित संस्थाओं से संबद्ध हैं।

हरि-तारा ट्रस्ट का निर्माण

अपनी उदात्त साहित्यिक गतिविधियों से प्रेरित हो उन्होंने एवं उनकी धर्मपत्नी ने १५ जनवरी, १९७० को 'हरि-तारा ट्रस्ट' का निर्माण किया। इस भवन का नाम-करण उनके पिता जी एवं माता जी के नामों पर किया गया। उन्होंने तीन विशाल शोभायमान महल इस ट्रस्ट को भेंट किये जिन्हें क्रमशः अमर महल, रणवीर महल और कर्ण निवास के नाम से जाना जाता है। इनके अतिरिक्त इन्होंने अपने दो और शोभायमान भवन और कुछ इमारतें दे दीं, उद्यान और फुलवारियां इत्यादि प्रस्तुत कीं। सर्वोपरि उन्होंने इस ट्रस्ट के लिए विशाल धनराशि दी। इस ट्रस्ट के लक्ष्य एवं उद्देश्य व्यापक हैं, जिनके अंतर्गत शैक्षणिक, साहित्यिक तथा उपकारी कार्यकलाप आते हैं, जिनमें से कुछ मुख्य लक्ष्य ये हैं :

१. सार्वजनिक वाचनालयों, पुस्तकालयों की स्थापना एवं संचालन।

२. हस्पताल, डिस्पेंसरी, नर्सिंग होम तथा चलते-फिरते औषधालयों का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निर्माण करना। रोगियों की औषधियों, वस्त्रों और भोजन से सहायता करना; विशेष तौर पर मानसिक व दैहिक दृष्टि से कमजोर बच्चों की सहायता करना।

३. पारितोषिक व सहयोग से सौंदर्य बोध का उद्‌बोधन करना, प्रदर्शनी तथा विचार-विमर्श की सहायता से कला की समृद्धि।

४. साहित्यिक कृतित्व, वैचारिक महत्त्व एवं पुरातन कला, संगीत, नाट्य-कला आदि से संबंधित सामग्री का संग्रह।

५. सांस्कृतिक तथा दार्शनिक अध्ययन, सामाजिक तथा नाट्य-काव्य, साहित्य से संबंधित लोककला और साहित्य का संरक्षण-प्रवर्धन।

अमर महल : चित्र-वीथि

ट्रस्ट की समस्त उपलब्धियों और गतिविधियों का ब्यौरा देना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। ट्रस्ट के उद्देश्यों के अनुसार डा० कर्णसिंह जी ने संग्रहालय और पुस्तकालय स्थापित कर दिया। जिसका उद्‌घाटन श्रीमती इंदिरा गांधी ने विस्तृत अमर महल प्रासाद में किया।

लाल रंग का विस्तृत अमर महल प्रासाद रामनगर, जम्मू की चोटी पर स्थित है। इसके पदतल पर तवी नदी शान्त और स्निग्ध रूप से वहती रहती है। उस सुंदर दृश्य को मानव आंख देखती रह जाती है। यह कवियों की काव्य प्रतिभा का स्रोत है।

अमर महल के आकार में सौंदर्य और शान का सामंजस्य है। सूर्य के उदय व अस्त होने के समय यह महल सुनहरी किरणों के ऐंद्रजालिक आवरण में स्वप्नमय-सा लगता है। ऐसा कहा जाता है कि फ्रेजर नाम के एक फ्रांसीसी वास्तुकार ने एक जादुई छड़ी इस स्थान पर फेरी जिससे यह हर्षमय महल उत्पन्न हुआ!

अमर महल संग्रहालय

डा० कर्णसिंह जी के पास पहाड़ी चित्रों का परंपरागत समृद्ध संग्रह था। इनमें पौराणिक कथा 'नल दमयंती' के चित्र भी थे। साथ ही उनके पूर्वजों के चित्र, जिन्होंने जम्मू-काश्मीर की रियासत पर लगभग सौ वर्ष तक राज्य किया था। इसके अतिरिक्त उनके पास विख्यात आधुनिक चित्रकारों के सुंदर उदाहरण भी थे। उन्होंने बड़े उत्साह से ये ४७ चित्र अमर महल के संग्रहालय को भेंट किये। ये पहाड़ी शैली के लघु चित्र हैं। डा० कर्णसिंह जी कला के पारखी हैं। इन चित्रों के विषय में वे कहते हैं ये गोआश तकनीक में चित्रित हैं। पहाड़ी शैलीगत सौंदर्य और पुनर्नवता, कोमल भावना, उदात्त भावना पहाड़ी समाज के साथ जीवन का प्रतिबिंब प्रस्तुत चित्रमाला एक आदर्श उदाहरण है। यह श्रीहर्ष के 'नैषधचरित', जो स्वयं एक महान पौराणिक कथा है, के आधार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पर बनी है। इन चित्रों में नल-दमयंती की शृंगारिक कथा वर्णित है। आज से दो शताब्दी पूर्व कुछ अनाम कलाकारों ने नल-दमयंती की कहानी को इन चित्रों द्वारा एक नया ही रूप प्रदान किया है। इन चित्रों में एक जादुई वातावरण है।

इस संग्रह में अनेक व्यक्तिक चित्र हैं। ये दीवारों पर ऐसे लगते हैं, मानो जीवित हैं अथवा तत्कालीन दरबारों के जीवंत चित्र हैं। बहुत-से पशु-पक्षियों के चित्र हैं, जैसे हाथी, मोर, हिरण और पालतू पक्षी। इन्हें बड़ी सफलता व चतुरता के साथ चित्रों में प्रस्तुत किया गया है।

डा० गोस्वामी के अनुसार नल-दमयंती के उक्त चित्र या तो विख्यात चित्रकार नयनसुख ने बनाये अथवा उसके बेटे अथवा शिष्य ने बनाये हैं। अठारहवीं शताब्दी में नयनसुख कांगड़ा से आकर और बसोहली में बस गया। ये चित्र आज भी साफ़, सुंदर और ताजे दिखाई देते हैं। इनमें जो रंग प्रयुक्त हुए हैं, जरा भी फीके नहीं पड़े हैं। यह चित्र बड़े कलात्मक, शोभायमान तथा जीवंत लगते हैं। डा० कर्णसिंह जी ने इस अमूल्य निधि को अमर महल में देकर महान उपकार किया है।

पोर्ट्रेट-गैलरी—व्यक्तिचित्र

इस हाल में कश्मीर के राजवंश के आदमकद चित्र हैं : महाराजा गुलाबसिंह, महाराजा प्रतापसिंह, राजा अमरसिंह, राजा रामसिंह। इन्हें नानालाल एन० जानी ने, जो काठियावाड़ के थे, १९१५ ई० में बनाया। महाराज हरिसिंह और महारानी तारा देवी के व्यक्तिचित्र एस० शोभासिंह ने बनाये। इनके अतिरिक्त यहां डा० कर्णसिंह जी तथा उनकी धर्मपत्नी यशोराज्यलक्ष्मी का भी एक व्यक्तिचित्र है। इस व्यक्ति-चित्रशाला में जम्मू-कश्मीर का समकालीन इतिहास जीवित लगता है। इनसे यहां के पिछले शासकों के संबंध में श्रद्धाभाव उत्पन्न होता है।

महाराजा गुलाबसिंह, जिन्होंने जम्मू-कश्मीर रियासत की नींव डाली है और भारत की सीमाओं को तिब्बत तक पहुंचा दिया, अपने व्यक्तिचित्र में अत्यंत सुंदर और सुरम्य दिखाई देते हैं। उनका दृढ़-निश्चयी व्यक्तित्व प्रकट होता है। महाराजा रणवीरसिंह का व्यक्तिचित्र उनके बड़े मस्तक को चित्रित करता है; और सफेद लंबी दाढ़ी यह स्पष्ट करती है कि महाराजा रणवीरसिंह जी बड़े विद्वान और धार्मिक प्रवृत्ति के मनुष्य थे। यह चित्र एक प्रतिभाशाली व्यक्तित्व की एक शाश्वत जीवंत यादगार है। महारानी तारादेवी अपने व्यक्तिचित्र में डोगरा वस्त्रों की छटा में विनीत, कृपालु एवं संवेदनापूर्ण लगती हैं, लेकिन साथ ही उनके चेहरे पर किशोर उदासीनता उन भयंकर दिनों की याद दिलाती है जबकि पाकिस्तानी हमलावरों ने जम्मू-कश्मीर में कत्ल, लूट और आग की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होली खेली थी।

हाल का केंद्र-विंदु महाराज हरिसिंह जी की संगमरमर की एक बड़ी मूर्ति है, जिसमें वह स्थिर, दयालु प्रज्ञ और भावनापूर्ण दीखते हैं। यहां एक अत्यंत सुंदर नटराज की भी धातुमूर्ति है। ये सब वस्तुएं डा० साहब ने बड़ी उदारता से अमर महल को प्रदान की हैं।

समकालीन चित्रशाला

समीपवर्ती दीर्घाकार कमरों में आधुनिक भारतीय कलाकारों के चित्रों का प्रदर्शन किया गया है। इनमें जो चित्र हैं, वे विभिन्न कला-शैली का प्रतिनिधित्व करते हैं। उदाहरण के तौर पर इम्प्रेशनिज्म, ऐक्सप्रेशनिज्म, क्यूबिज्म, सुर्रियलिज्म इत्यादि। उनमें से अधिकांश डा० कर्णसिंह जी ने अपने व्यक्तिगत धन से क्रय करके संग्रहालय को भेंटस्वरूप दिया है।

भारतीय कलाकार ने प्राचीन समय से उद्भूत कलाओं का सृजन किया है, जिनकी विभिन्नता, प्रचुरता, सुंदरता इत्यादि को पहचानने के लिए गहन ज्ञान की आवश्यकता है।

मकबूल फ़िदा हुसेन

इस गैलरी में एम० एफ० हुसेन के चित्र हैं। हुसेन की कला पर, पूर्व और पाश्चात्य के विभिन्न प्रभाव पड़े हैं, लेकिन उसका अनुकरण अपनाने और कुछ अस्वीकरण करने, अपनी कल्पना के ढांचे में ढालने से उसने एक उच्च स्तर की कला को विकसित किया। निःसंदेह बौद्धिकता हुसेन की कला का केंद्र है, लेकिन उसमें भावावेग भी है।

गैलरी में हुसेन के तीन चित्र हैं—पहला श्रीमती इंदिराजी का है। दूसरा वाराणसी का एक दृश्य है जिसमें हम एक शव को गंगा में देखते हैं। और पास ही एक आदमी उसको उठाने के प्रयत्न में है, लकड़ी के तीन लट्ठे हैं जो कि चिता का प्रतीक है। एक पक्षी आकाश की ओर उड़ता दिखाया गया है, यह जीवात्मा की उड़ान का प्रतीक है। तीसरा चित्र कुछ नग्न स्त्रियों का है, जिसमें स्त्रियों को नदी में नहाते दिखाया गया है, समय सूर्योदय का है। सभी तस्वीरें सफ़ेद लकीरों से काली ज़मीन पर दिखाई गयी हैं।

हुसेन की नारी संपूर्ण जीवन की झलक लिए हुए है। वह खुशी से दुःख एवं कष्ट झेलती है। उसके हृदय में दया है और सारी सृष्टि के लिए प्रेम है। अतः हुसेन को नारी-चित्रण पसंद है। विशेषतः भारतीय नारी का उसमें स्वाभाविक भोलापन है। परंतु विशेष तौर पर वह समृद्धि की भी इच्छुक है, वह एक हो या अनेक हो, सदैव उदास है। चुप है, अकेली है, और सदैव इच्छुक है। आशा के ताने-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बाने वह बुनती रहती है।

सामाजिक मूल्यों में घोर परिवर्तन आ रहा है, जिससे हुसेन अनभिज्ञ नहीं, और उसका प्रतिविंव हमें उसकी रचनात्मक चित्रकला में मिलता है। रेखा, रूप और रंगत में हुसेन आगे है। हुसेन की चित्रकला दोषरहित है। उसने रेखा और रंगत के आपसी प्रभाव का अध्ययन किया है। उसके चित्र के बोल अर्थात् रूप, रेखा और रंगत, उदाहरण मुखर हैं। उसकी रेखाएं मजबूत और संगीतमय हैं, और उसका रंग कोमल है, हालांकि वह तेज और हल्के रंगों को प्रयोग में लाता है और पारम्परिक उदाहरणों को उसने आधुनिक रूप में ढाल दिया है।

सरदार शोभासिंह

शोभासिंह के छः चित्र इस गैलरी में हैं। वह परंपरागत चित्रकार है और क्लासिकी शैली में ही चित्र बनाता है। अपनी साधना से वह एक उच्च स्तर का कलाकार है। उसकी रेखाएं सरल हैं; और व्याख्यापूर्ण अंकनों में उसे सफलता प्राप्त है। 'आयल कलर' में स्वर-समता रखने में चतुर है। उसका विश्व प्रसिद्ध चित्र 'सोहनी और महीवाल' इसी गैलरी में गर्वपूर्ण स्थान लिये हुए है। इस चित्र में उसने औरत को 'रोज़िटी' के 'ब्लैसिड डैमोज़िल' की शान व सुंदरता से निखारा है। यह हमारी कल्पना पर जादू ढाल देता है। सोहनी की सुंदर आंखें, जो कि प्यार के आनंद में अधखुली हैं, और हंस की-सी लंबी गर्दन—मानव को यह रूप स्तंभित कर देता है। उच्च धार्मिक और भारतीय दर्शन का ज्ञान प्राप्त किया हुआ शोभासिंह सिक्ख गुरुओं को भी अपने कैनवास पर उतारने में सफल रहा है। गुरुओं की सुंदरता, वीरता और साहसी भावना को उनके चेहरों पर प्रतिबिंबित करने में शोभासिंह अपना कोई जवाब नहीं रखता। गुरु नानक के व्यक्तिचित्र में, जो कि इसी चित्रशाला में विद्यमान है, शोभासिंह ने युक्ति से गुरु पर आध्यात्मिक रंग चढ़ाया है। इसके अतिरिक्त विद्या की देवी सरस्वती का चित्र एक और महान कलाकृति है। हल्का नीला और सफेद रंग देवी की पवित्रता और दिव्य-सौंदर्य के प्रतीक हैं। देवी गंभीरता से वीणा पर दृष्टिपात कर रही है, जो कि देखते ही दर्शक का मन मोह लेती है और दर्शक श्रद्धा से नत होकर वेतहाशा माता की जयकार करता है। गांधी जी का मुस्कराता हुआ चेहरा, विशाल मस्तक, निःसंदेह ही मानसिक उज्ज्वलता और उदारता की झलक प्रदान करता है, तभी तो वह अहिंसा का देवता माना जाता है।

रामकुमार

यहां पर रामकुमार का भी प्रतिनिधित्व है। वह एक नयी सौंदर्य कला को दर्शन रूप में प्रकट करते हैं। उनकी कला में किसी भी प्रकार की कोई उत्तेजना,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ओजस्विता अथवा प्रचुरता का आभास नहीं होता; जबकि उनकी कलाकृति में गंभीरता, कर्मठता और वास्तविकता का पुट सदैव ही मिलता है। वह धधकते रंगों के हामी नहीं, ऐसे रंगों को कम ही प्रयोग में लाते हैं। इनके स्वभाव और ज़िंदगी की मायूसियों का प्रचुर प्रभाव इनकी कला पर साफ झलकता है। अतएव उनमें दया तथा करुणा पाई जाती है। इनके चित्रों के विषय नाशवान मनुष्य तथा उनके खामोश व लटकते चेहरे हैं। इसके अतिरिक्त वह वीरान (उजाड़) प्राकृतिक दृश्यों के नयनगोचर चित्र बनाते हैं। उनके प्राकृतिक दृश्य प्रायः किसी रहस्यमय और अनजानी भावभूमि पर आधारित होते हैं। इस गैलरी में इनकी कैनवास पर एक 'आयल पेंटिग (३४" × २५") है। यह प्राकृतिक दृश्य पर है। इस चित्र में हल्के काले या स्टील ग्रे कलर अधिक प्रयोग में लाये गए हैं। इसमें एक गहरे नीले रंग की झील और एक विशाल उतराई वाला किनारा दिखाया गया है; इसके किनारे की पृष्ठभूमि पर सीधे वृक्षों के झुंड हैं और कुछ निद्रित और अलसाये-से ग्राम दिखते हैं। छोटे-छोटे खेत और गहरी चट्टानें जिनका हलका-सा बिंब पानी में दृष्टिगोचर होता है। संपूर्ण दृश्य भयंकर है, तिरस्कृत-सा है—यहां ज़िंदगी खामोश है।

रामकुमार ने इस चित्र में बड़े श्रम से छाया तथा प्रकाश दिखाया है, और रंगों को निखारा है। उसने इस बात को आवश्यक समझा है कि आकाश और सूर्य को न दिखाये—क्रमबद्ध चित्रांकन वास्तव में ही प्रशंसनीय है। यह चित्र मनुष्य को पहले अचंम्भित कर सकता है, और एकदम आंख को आकर्षित न कर सके लेकिन कुछ देर टकटकी लगाने पर सारी ही अस्पष्टता समाप्त होकर चित्र किसी विशेष गुण से प्रभावित करके प्रसन्नता देता है।

जी० आर० संतोष

ये एक प्रसिद्ध कश्मीरी कवि और कलाकार हैं। इस संग्रहालय में इनका भी प्रतिनिधित्व है। पहले विशेष तौर पर पश्चिमी चित्रकला से प्रभावित थे, और इन्होंने बड़े परिश्रम से ऐसी कला को दृश्यमय किया है। समकालीन चित्रशाला में इनकी एक पेंटिंग विद्यमान है। इसमें 'मोनालिजा' और नारीत्व के और भी पहलुओं व स्वरूपों का प्रभाव है, जो कि लियोनार्डो दा विंची की सृजनात्मक कल्पना में से निकलते हैं।

आगे चलकर वह तंत्र-दर्शन में अध्ययनरत हो गये हैं। और इनको ललद्यद, नुन्दऋषि जैसे कश्मीरी सूफी कवियों की कविता और शिक्षा से प्रेरणा प्राप्त हुई है; सन्तोष आध्यात्मिक धारा में गाते हैं।

इस प्रकार उन्होंने भारत की रहस्यमय विचारधारा को कल्पनात्मक धरातल पर चित्रित किया। उन्होंने अपने सिद्धांत का इन शब्दों में वर्णन किया है—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भारतीय परंपरा की बुनियाद विश्वात्मक धारणा पर आधारित है, जो ऐकांतिक वास्तविकता भी है जो अनंत रूपों एवं अंतहीन रेखाओं में और अंतहीन स्थानों पर प्रकट होता है। मैं स्वयं भी लगा हुआ हूं; इसी विश्वात्मक विचारधारा में मगन हो गया हूं—'सोहम्' 'मैं ही ब्रह्म हूं'। मेरी चित्रकला नर-नारी के अनुसार शिव और शक्ति पर ही आधारित है। इसे ही तंत्र समझा जाता है। इस प्रकार के एकात्मकता वाले चित्र प्रतीकात्मक हैं। लेकिन मेरे वास्तविक नर-नारी (शिव-शक्ति; पुरुष-प्रकृति) सिद्धांतानुसार होते हैं। इस विचार के आधार पर गैलरी में एक चित्र है जिसका विषय शिव-ज्योति है और जिसमें कि लिङ्ग और योनि शिव-शक्ति के तौर पर दिखाए गए हैं। पीले, लाल और काले रंग, जो इस चित्र में प्रयुक्त हुए हैं, बड़ी खूबी से स्थापित होते हुए दिखते हैं, भारतीय परंपरानुसार रूपांतरित होते हैं। यह उनकी तूलिका के प्रायः अनुकूल है।

दस अवतारों की चित्रशाला

निचली मंजिल पर डा० कर्णसिंह जी की धर्मपरायणता की अभिव्यक्ति दशावतार की छोटी-सी चित्रशाला के रूप में मिलती है। यहां ही डा० साहब का उनके धर्म-प्रेम का साक्षात्कार होता है। इस चित्रशाला में दस जानवरों के ११ चित्र प्रदर्शित हैं। इस चयन में विष्णु भगवान तथा उनके अन्य दस अवतारों को लिया गया है। और इस प्रकार यह दस अवतार विकास के आधार पर जीवन की आध्यात्मिकता की संज्ञा पाता है। इन चित्रों का चित्रण प्रख्यात चित्रकार सरदार जसवंतसिंह ने किया है। हिन्दुओं का विश्वास है कि युग-युग से परमात्मा भूमि पर अनेक जानवरों के रूप में आते हैं।

दस अवतारों के चित्र हैं—मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह वामन, परशुराम, राम, बलराम, कृष्ण और कल्कि।

सरदार जसवंतसिंह की नाट्याभिव्यक्ति हिन्दुओं की पौराणिक गाथाओं को नया अर्थ देती है और इन चित्रों में रहस्यमय व संगीतमय गुणों की अनुभूति होती है। चित्रशाला के सारे ही चित्र एक तरह की चित्रमय वाद्यमयता (एल्फिन आरकेस्ट्रा) है। और जसवंतसिंह ने इन चित्रों में विकास के महाकाव्य को गाया है। विशेषकर 'कृष्ण पेंटिंग' चित्र गायन विद्या को चित्रित करता है। वास्तव में कृष्ण चित्र में भगवद्गीता के दर्शन को समझाया गया है। यही चित्र कलाकार को अमर बना देता है। यह मनुष्य के चिंतन को प्रभावित करता है। इस चित्र पर विचार करने वाला पुरुष निश्चय ही भलाई की ओर बढ़ता है। इन चित्रों में सुर्रिय-लिस्टिक (Surrealistic Touch) स्पर्श है। इसका कारण यह है कि जो उसने प्रयुक्त किये हैं वे पारंपरिक हैं, रंग हलके और चित्ताकर्षक हैं। जान ड्राइडन के अनुसार "इत्र सदैव छोटी-सी शीशी में बंद रहती है" और यही कुछ दशावतार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की छोटी-सी चित्रशाला में—गागर में सागर मिलता है।

डा० कर्णसिंह युवराज के रूप में

यह सब कुछ देखने के उपरांत जब दर्शक वापस मुड़ता है उसकी दृष्टि व्यक्तिगत चित्रशाला के दरवाजे पर पड़ती है, जहां पर डा० साहब के बचपन का चित्र दिखाई देता है। उनके गुलाबी गाल और विशाल नेत्र बुद्धियुक्त प्रकाश से प्रकाशित हो रहे हैं। गंभीर मुखाकृति उनके महान बनने की आभा प्रकट करती दिखाई देती है। डा० साहब यहां पर राजकुमारों के राजसी वस्त्राभूषण में है जिनसे इनके चेहरे पर अपूर्व तेज-सा दिख रहा है।

अमर महल पुस्तकालय

राजकुमारोचित कार्यकलापों के साथ डा० कर्णसिंह ने पुस्तकों का संग्रह भी किया और उनका आनन्द लिया। इस प्रकार उन्होंने अपना निजी पुस्तकालय एक मंजिले भवन में, जो कि फलोद्यान में 'हरि निवास' के सामने है, स्थापित किया।

१९७० में डा० साहब ने अपना सम्पूर्ण पुस्तक ही 'हरि-तारा' चैरिटेबल ट्रस्ट को दे दिया और इसे अमर महल में ले जाकर संगठित कर दिया। इस समय पुस्तकालय में लगभग १६००० से भी अधिक पुस्तकें हैं, इसके अलावा रिपोर्ट मैगजीन, पैम्फलेट इत्यादि भी हैं। राजमाता के कमरे को छोड़कर बाकी निचली मंजिल के सभी कमरों में पुस्तकालय का विस्तार है।

डा० कर्णसिंह ने वेद, उपनिषद इत्यादि दर्शन पढ़कर अपने ज्ञान की वृद्धि कर ली है। और अन्त में राजनीति विज्ञान में एम०ए० करके पी-एच० डी० की डिग्री प्राप्त की है। यद्यपि पुस्तकालय में विभिन्न विषयों पर पुस्तकें उपलब्ध हैं, परन्तु इनकी अधिकतर पुस्तकें दर्शन, धर्म, सामाजिक ज्ञान, साहित्य, इतिहास और कला पर है।

इस समय पुस्तकालय के चार विभाग हैं :

१. इस विभाग में डा० साहब की आधुनिक पुस्तकें हैं।

२. दूसरे विभाग में पुरानी और कतिपय पुस्तकें हैं जो कि महाराजा हरि-सिंह व राजा अमरसिंह की विरासत है।

३. इनमें बहुत सारी १९वीं शताब्दी की हैं, और अति दुर्लभ हैं क्योंकि या तो वे छपी नहीं हैं अथवा वे विश्व-बाजार में उपलब्ध नहीं हो रही हैं।

४. इस विभाग में जम्मू-कश्मीर के विषय में नई पुस्तकें और विदेशी-पुस्तकें, विशेषकर रूसी भाषा की पुस्तकें, हैं। तीसरा और चौथा विभाग महल की दूसरी मंजिल पर है। तीसरे विभाग में संस्कृत, हिंदी, उर्दू और डोगरी भाषा की पुस्तकें हैं। संस्कृत की पुस्तकें डा० साहब की देन हैं और अधिकतर हिंदी की पुस्तकें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनकी धर्मपत्नी सुश्री यशोराज्यलक्ष्मी जी की ओर से हैं। दूसरी मंजिल पर एक कमरा है, जहां एलबमों का एक विशाल संग्रह है। पुस्तकालय नियमानुसार विषय अनुक्रमणिका के आधार पर चलता है। यहां पारंगत तथा योग्य कर्मचारी काम करते हैं, जो अनुसंधान अथवा शोध के विद्यार्थियों का भी मार्ग दर्शन करते हैं।

राजमाता का कमरा

डा० कर्णसिंह में अपने पूर्वजों के लिए असीम स्नेह है, उन्होंने माता की सेवा बड़ी श्रद्धा तथा भक्ति से की, विशेषकर उनके अंतिम दिनों में जब वे बहुत रोग-ग्रस्त थीं। इस कमरे को बिलकुल वैसे ही रहने दिया गया है जैसे यह राजमाता के जीवनकाल में था। इधर उनके अपने व्यक्तिगत पहनावे व व्यक्तिगत वस्तुएं देखी जा सकती हैं। इस कमरे में इनके दो चित्र हैं—एक में वह शिकारी कपड़ों में बंदूक हाथ में लिये हुए दिखाई देती हैं तथा दूसरे में केसरी साड़ी में प्रार्थना में लीन दिखाई गई हैं। दोनों ही कलाकृतियां जीवंत तथा कला के लिहाज से उत्कृष्ट हैं। इन चित्रों को सरदार शोभासिंह ने बनाया है।

सुन्दर कलावस्तुएं

संग्रहालय में उचित स्थानों पर कीमती कलावस्तुएं और कतिपय अमूल्य व सुदंर वस्तुएं देखने को मिल जाती हैं जो डा० साहब की परिष्कृत रुचि का परिचय देती हैं। एक सुदंर इत्रदान है जिसपर हाथी दांत से जड़ाई की गई है। जस्ता और पीतल के नटराज अपनी सुंदरता स्वयं ही वर्णन कर रहे हैं। इनके अतिरिक्त चीनी मिट्टी के फूलदान, संगीतमय सिग्रेट केस, सिंदूर व नसवार की डिबिया—इन वस्तुओं को तो देखते ही बनता है। अमर महल की निचली मंजिल के एक छोटे-से कमरे में सोने का तख्त है जो जम्मू-कश्मीर सरकार से उधार लिया हुआ है। लाखों पर्यटक ज्ञान के इस आगार में से कला व सभ्यता की प्यास बुझाने यहां आते हैं। यह संस्था अब बहुत ही महत्त्वपूर्ण बन रही है। यहां पर वर्डस्वर्थ की कुछ पंक्तियां याद आ रही हैं:

उसकी आत्मा मृत प्राय है
जो इस सुहाने दृश्य को
इस अपूर्व सौंदर्य को
नज़र अंदाज करे

• • •

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

❀ मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय ❀
आगत क्रमांक.....२६८८.....
दिनांक.....

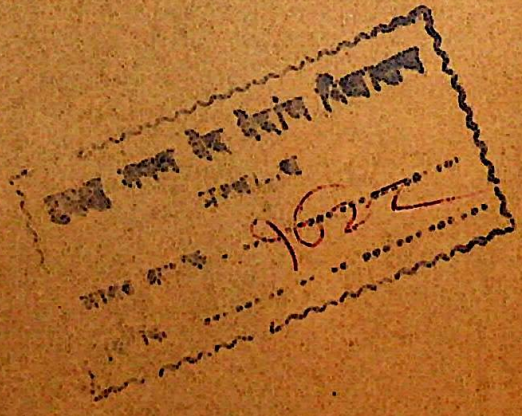

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

डा० कर्णसिंह ९ मार्च, १९८१ को अपने जीवन की अर्धशती पूरी कर रहे हैं। क्या माना जाये इसे ? मोहन राकेश के शब्दों में 'आधे-अधूरे' या फिर संतों-महर्षियों की वाणी में भरे-पूरे ? हम तो यही मानकर चलते हैं कि उनके जीवन का यह बीच का पड़ाव है जहां से उन्हें कोसों दूर जाना है।

डा० कर्णसिंह की अर्धशती-वर्षगांठ पर अभिनन्दनस्वरूप इस ग्रंथ में देश-विदेश के वरिष्ठ विद्वानों, कलाकारों, साहित्यकारों के संस्मरण, लेख आदि पाठकों को भेंट करते हुए हमें प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। आशा है यह ग्रंथ डा० साहब को निकट से जानने में सहायक होगा।

मूल्य : सौ रुपये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

collection. Digitized by eGangotri